संस्कृतललितसाहित्य का इतिहास

लेखक
कुँवरलाल व्यासशिष्य

इतिहासविद्याप्रकाशन
दिल्ली

ष्या
-14
-35
75
)6
15

©प्रकाशक :

इतिहासविद्याप्रकाशन
10-बी-पंजाबी बस्ती
नांगलोई, दिल्ली-41

प्रथम संस्करण-1979-80
मूल्य : 30-00

मूद्रक :

अरुण कम्पोजिंग एजेन्सी—द्वारा कालका प्रिंटर्स
न्यू सीलमपुर, दिल्ली-110053

विषय-सूची

प्राक्कथन

इस पुस्तक में लौकिक संस्कृत के केवल ललित साहित्य का स्पर्श किया गया है । यों तो संस्कृत साहित्य के अनेक लघु एवं बृहद् इतिहास प्रकाशित हैं, परन्नु इस ग्रन्थ की कुछ अपनी विशेषतायें हैं । प्रथम विशेषता है, कि ग्रन्थ को विशेषतः छात्रों के लिये उपयोगी बनाया गया है। इन्टरमीडिएट से एम० ए० तक के संस्कृत छात्र इससे समान रूप से लाभ उठा सकते है ।

ग्रन्थ की द्वितीय विशेपता है कि प्रसिद्ध साहित्यकारों—यथा कालिदास, भास, भवभूति, भारवि बाण जैसे मूर्धन्य कवियों की इसमें विस्तृत समालोचना की गई है, यह भी छात्रों के लिये परमोपयोगी है । विषयसूची देखकर आलोचना की दिशा-दशा जानी जा सकती है यथा उपमा कालिदासस्य बाणोच्छिष्टम् जगत् सर्वम् जैसी प्रसिद्ध उक्तियों के आधार पर पाठ्यक्रमापयौगी आलोचना की गई है ।

लेखक ने वैदिक साहित्य का इतिहास, इतिहासपुराणसाहित्य का इतिहास के क्रम में यह साहित्येतिहास सम्बन्धी तृतीय पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में भी पूर्वोक्त पुस्तकों के समान सर्वत्र सत्य भारतीय दृष्टिकोण को अपनाया गया है, अश्रद्धेय पाश्चात्य कल्पनाओं को अवहेलना की है। इस विषय का यहां थोड़ा सा संकेत करते हैं। यथा प्रथम अध्याय में लौकिक संस्कृत या मानुषीवाक् के प्रादुर्भाव का संक्षिप्त इतिहास संकेतित है। लौकिकसंस्कृतसाहित्य का प्रादुर्भाव, स्वायम्भुव मनु से हुआ। इस तथ्य के कुछ अंश यहाँ संकलित किये गये हैं। प्राचीन गाथाओं के प्रमाण से लौकिक संस्कृत की प्राचीनता सिद्ध की गई है। इसी अध्याय में भाषाविज्ञान के आधार पर योरोप में दैत्य देशों के नामकरण एवं दैत्यनिवास का संकेत किया गया है। अगले तीन अध्यायों में इतिहासपुराणकाव्यों का विस्तृत इतिहास एवं दिग्दर्शन है ।

इस पुस्तक की प्रमुख विशेषता है सत्य भारतीय प्रमाणों के आधार पर प्राचीन कवियों का कालनिर्धारण किया गया है, अन्य लेखकों की भाँति तिथि-निर्धारण में कल्पना का आश्रय नहीं लिया गया। वाल्मीकि व्यास, भास, शूद्रकविक्रम, कालिदसत्रयी, भारवि, भवभूति आदि का तिथिनिर्धारण सत्य भारतीय परम्परा एवं प्रमाणों के आधार पर किया गया है। इतिहास में तिथि निर्धारण ही महत्वपूर्ण अंश होता है, अतः लेखक ने उसी पर अधिक ध्यान दिया गया है। विद्वान् उस पर निष्पक्ष होकर विचार करके सचाई जानेंगे।

अतः पुस्तक को विद्वानों एवं छात्रों को समर्पित करते हुये मुझे महान् हर्ष हो रहा है क्योंकि वे भारतीय एवं सत्यविचारों पर अपना कुछ ध्यान केन्द्रित कर सकेंगे।

आशा है कि सभी प्रकार के व्यक्ति पुस्तक से अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

विदुषां वशंवद :
कुँवरलाल व्यासशिष्य

अध्याय प्रथम

लौकिकसंस्कृत का इतिहास

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥
(ऋ० 8/100/11)

आधुनिक प्राच्य एवं पाश्चात्य पद्धति के उभयविध विद्वानों में यह बद्धमूल दृढ़ मान्यता या धारणा है कि महर्षि वाल्मीकि ही लौकिक संस्कृत के आदिकवि या प्रथम कवि थे, इस भ्रामक धारणा के मूल का तो अग्रिम पृष्ठों पर खण्डन किया जायेगा, परन्तु यहाँ इतना अवश्य जान लेना चाहिये कि वाल्मीकि से पूर्व शतशः किंवा सहस्रशः लौकिक संस्कृत के कवि हो चुके थे, जिनमें वाल्मीकि सहित 24 राष्ट्रकवि या महाकवि थे। महर्षि वाल्मीकि से कम से कम सात सहस्र वर्ष पूर्व होने वाले देवासुरयुगीन उशना काव्य (शुक्राचार्य) महाभारतयुग में सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते थे—

'कवीनामुशना कविः' (श्रीमद्भगवद्गीता 10/37)

शुक्राचार्य के पिता भृगु या अथर्वा का नाम ही 'कवि' पड़ गया, जिससे कि उनके पुत्र शुक्राचार्य को 'काव्य' (उशना) कहते थे। यद्यपि उस समय (देवयुग में) ऋषि, कवि, विद्वान्, वैद्य, चिकित्सक आदि पद पर्यायवाची थे, परन्तु 'कवि' का सम्बन्ध विद्वत्ता आदि के साथ 'काव्य' विशेषतः 'लौकिक काव्य' या 'ललित साहित्य' से भी था। इसका स्पष्टीकरण आगे करेंगे।

वाल्मीकिपूर्व के लोककवियों का संक्षिप्त इतिहास लिखने से पूर्व लोकभाषा या लौकिक संस्कृत की उत्पत्ति और उनके विकास का संक्षिप्त इतिहास लिखते हैं।

भाषा की उत्पत्ति :—आधुनिक भाषाशास्त्रियों ने भाषोत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक भ्रामक सिद्धान्त कल्पित किये हैं, यहाँ पर उनका संकेतमात्र भी अभीष्ट नहीं है। सत्यवादी श्रेष्ठ भारतीय[1] विद्वानों ने प्राचीन भाषाशास्त्र

(1) द्रष्टव्य—यथा पं० रघुनन्दन शर्मा कृत 'वैदिक सम्पत्ति' पं० भगवद्दत्तकृत 'भाषा का इतिहास' इत्यादि तथा पं० युधिष्ठिर मीमांसककृत 'संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास', प्रथम भाग।

के अनुसार भाषा अनादि, शाश्वत या सनातन है, यह स्वयम्भू वाक् आकाश या प्रकृति से उत्पन्न हुई, इसके प्रादुर्भाव या प्राकट्य में प्राण (वायु), रश्मि, विद्युत् आदि भौतिक देवों का योग था, अत: वेद में लिखा है—

'देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपा: पशवो वदन्ति'

प्राकृतिक शक्तियों की संज्ञा ही देव या आप: थी।[1] स्वयम्भूवाक् का अर्थ है प्राकृतिक (अमानुषी) शक्तियों द्वारा भाषा स्वयं प्रकट हुई। पारसी का 'कुदरत' और अंग्रेजी का 'नेचर' शब्द 'प्रकृति' पद का ही अपभ्रंश है। अत: देवीवाक् या संस्कृत ही प्रकृति है, इससे विकृत या विकसित भाषा ही प्राकृत या लोकभाषा कहलाई। इसी वेदोक्त भाषोत्पत्तिसिद्धान्त को महाभारत में इस प्रकार कहा है—

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यत: सर्वा: प्रवृत्तय:॥

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय ग्रन्थ में शब्दतत्व को ही अक्षर (अनश्वर) और ब्रह्म कहा है। कुलपति शौनक ने बृहद्देवता में देवीवाक् को ब्राह्मी, सौरी और ससर्परी कहा है।[2] ऋग्वेद के अनुसार चतुर्विध वाक्[3] में चतुर्थी वाक् पशुओं (मनुष्यों) में प्रविष्ट हुई—

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिण:।
गुहा त्रीणि निहिता नेंगयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥[4]

इसी को ऋग्वेद में अन्यत्र शब्दान्तर से कहा है—

'चत्वारि शृंगा·········महो देवो मर्त्यां आ विवेश।'[5]

यह वाक् द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलाक में व्याप्त हो गई। प्राचीनकाल में ब्राह्मण=विद्वान् पुरुष दोनों प्रकार की भाषा बोलता था—

---

(1) आप एवेदमग्र आसु:। ता आप सत्यमसृजन्त। सत्यं ब्रह्म, ब्रह्म प्रजापतिम्। प्रजापतिर्देवान्।' (बृ० उ० 5/5/1)।

(2) तस्मै ब्राह्मीं तु सौरीं वा नाम्ना वाचं ससर्परीम्॥ (बृ० दे० 4/113)।

(3) परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी।

(4) ऋग्वेद (1/164/45)।

(5) ऋग्वेद (4/58/3)।

वैदिक और लौकिक—'तस्माद् ब्राह्मण उभे वाचौ वदति दैवीं च मानुषीं च ।'
(काठकसंहिता 14/5)

अतः मूलभाषा के ही दो रूप हुये ।

अतिभाषा :—सर्वारम्भ में अतिवाक् या अतिभाषा की उत्पत्ति हुई, जिसकी शब्दराशि विपुल थी, इस अतिभाषा का एकांश वेदवाक् में मिलता है। मूल, आदिम अतिभाषा का वैपुल्यरूप आज कोई भी नहीं जान सकता। वेद या निघण्टु उस अतिभाषा का एक निदर्शनमात्र हैं। उदाहरणार्थ निघण्टु में एक-एक शब्द के सौ-सौ से अधिक पर्यायवाची पद मिलते हैं, यथा वहाँ 'वाक्' का एक पर्याय 'गल्दा' है, जिसका योरोपीय भाषाओं या अंग्रेजी में एक मात्र लैंग्वेज (Language) शब्द मिलता है, जो इसी 'गल्दा' पद का अपभ्रंश है, भारतीय भाषाओं में 'गल्दा' या इसका अपभ्रंश नहीं मिलता। इसी प्रकार निघण्टु में 'कर्म' का पर्यायवाची 'कर्वर' शब्द अंग्रेजी में 'वर्क' (Work) रूप में मिलता है।

अतः अतिभाषा में एक-एक वस्तु या पदार्थ के अनेक पर्याय थे, उत्तर कालीन भाषाओं में उनका एक-एक ही रूप शेष रह गया, यथा अंग्रेजी में सूर्य के लिये सन (Sun) और चन्द्रमा के लिये मून (Moon) जैसे एक-एक ही पद मिलते हैं, जबकि संस्कृत में इनके कितने पर्यायवाची पद मिलते हैं, यह विज्ञ पाठक जानते ही हैं। इसी अद्वितीय ऐतिहासिक तथ्य का उल्लेख बृहदारण्यकोपनिषद् (1/1/1)में मिलता है, जिसका संकेत पं० भगवद्दत्त ने 'भाषा का इतिहास' पुस्तक में किया है—पृथिवीवासी पञ्चजनों (मनुष्यों) ने अतिभाषा का कौन-सा पर्याय ग्रहण किया—'हय इति देवान्, अर्वा इत्यसुरान्, वाजीति गन्धर्वान्, अश्व इति मनुष्यान्'। घोड़े के पर्यायवाची 'हय' पद को देवों ने, अर्वन् को असुरों ने, 'वाजी' गन्धर्वों (अरब जाति) ने और 'अश्व' मनुष्यों ने ग्रहण किया। बृहदारण्यकोल्लिखित तथ्य की पुष्टि संस्कृत और असंस्कृत भाषाओं के अनुशीलन से होती है और अधिकांश संस्कृतेतर भाषाओं में एक पदार्थ के लिये द्वितीय पदार्थ ढूढ़ने पर भी नहीं मिलता।

लोकभाषा संस्कृत या मानुषीवाक्—द्वापर, त्रेता, कृतयुग, देवयुग, पितृयुग और आदियुग में शिक्षित व्यक्ति (विद्वान्=ब्राह्मण=द्विज) अतिभाषा के दोनों रूपों—देवीवाक् (वेदवाक्) और मानुषीवाक् (संस्कृत)—को बोलता था। ब्राह्मणग्रन्थों में उल्लिखित तथ्य का उल्लेख स्वयं यास्काचार्य ने किया है—'तस्माद् ब्राह्मण उभयीं वाचं वदति या च देवानां या च मनुष्याणाम् ।' (नि० 13/8)।

अतः लौकिक संस्कृत वैदिक संस्कृत से अर्वाचीन नहीं है, दोनों की मूल शब्दराशि और प्रादुर्भावकाल या प्रयोगकाल समान प्राचीन है। लौकिक संस्कृतभाषा या साहित्य को उत्तरकालीन मानना महती भ्रान्ति है, इस तथ्य का विस्तृत विवेचन आगे किया जायेगा। इसी तथ्य को यास्क ने इस प्रकार लिखा है—

'तेषां मनुष्यवद् देवताभिधानम' (नि०)

लौकिक संस्कृत या लोकभाषा में मूलशब्दराशि वही थी, जो अतिभाषा या वेदवाक् में थी, केवल वह संकुचित थी तथा इसकी शब्दानुपूर्वी (वाक्यविन्यास) में अन्तर था। उपर्युक्त तथ्य का उल्लेख भरतमुनि ने किया है—

अतिभाषा तु देवानामार्यभाषा तु भूभुजाम्।
संस्कारपाठ्यसंयुक्ता सप्तद्वीपप्रतिष्ठिता॥[1]

इसी तथ्य का कथन पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः', इत्यादि रूप में किया है।

लोकभाषा (मानुषीवाक्) या लौकिक संस्कृत व्याकरणसम्मत या संस्कारयुक्त होने से ही 'संस्कृत' कही जाने लगी। वाल्मीकि और यास्क ने इसी आधार पर इसको 'संस्कृता मानुषीवाक्' कहा है—

वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।[2]

यास्क और पाणिनि इसी 'मानुषी संस्कृता वाक्' को 'भाषा' कहते थे। यास्क ने इसको 'व्यावहारिकी'[3] कहा है, क्योंकि मनुष्य साधारणतः इसका प्रयोग (व्यवहार=बोलचाल) करते थे। पतञ्जलि ने भी बारम्बार लोक-भाषा के लिये 'व्यवहारकाल' का प्रयोग किया है।[4]

अतः लोकभाषा संस्कृत का प्रयोग या व्यवहार आदियुग—प्रजापति कश्यप, इन्द्रादि के समय से भारतोत्तरकाल यास्क आपस्तम्बादि के समय तक समान रूप से होता रहा, इसी प्रकार वैदिक भाषा का तथाविध प्रयोग

(1) नाट्यशास्त्र (17/18/29)।
(2) वा० रा० सु० (30/17)।
(3) 'चतुर्थी व्यावहारिकी' (नि० 13/9)।
(4) 'चतुर्भिः प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति, व्यवहारकालेनेति।'
'शब्दान यथावद व्यवहारकाले।' (महाभाष्य)।

होता था। इन दोनों में पौर्वापर्य या कालादि का कोई अन्तर नही था, अन्तर था तो केवल शब्दानुपूर्वी और प्रयोग में था। वैदिकभाषा का प्रयोग केवल वेदमन्त्र, तद्व्याख्यान (ब्राह्मणादि) एवं अन्य वैदिकशास्त्रों के प्रणयन में होता था और लौकिकसंस्कृत का प्रयोग इतिहासपुराण (काव्य), धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि लौकिकशास्त्र प्रणयन में होता था। जिस प्रकार लौकिकशास्त्रों में वैदिकशास्त्रों का प्रामाण्य मान्य था। उसी प्रकार वैदिकशास्त्रों में लौकिकशास्त्रों का प्रामाण्य स्वीकृत था इस तथ्य का उल्लेख किसी अर्वाचीन छोटे मोटे विद्वान् ने नहीं, बल्कि सर्वश्रेष्ठ शास्त्र न्यायशास्त्र के भाष्यकार वात्स्यायन ने लिखा है— 'प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेनेतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते, ते वा खल्वेते अथर्वाऽऽगिरस एतदितिहास पुराणमभ्यवदन्' (न्यायभाष्य, पृ० 283)—"वास्तव में ब्राह्मणग्रन्थों में इतिहासपुराण का प्रामाण्य मान्य है—अथर्वांगिरस ऋषियों ने इतिहासपुराणों का प्रवचन किया।" क्योंकि वेदमन्त्र और ब्राह्मणों के द्रष्टा वे ही ऋषि थे, जिन्होंने इतिहासपुराण और धर्मशास्त्र रचे—'द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्चानुपपत्तिः। य एव मन्त्र ब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्म शास्त्रस्य चेति' (न्या० भा०); जब वैदिक और लौकिकग्रन्थों के रचयिता ही समान थे तो उनके समयादि में अन्तर कैसे हो सकता है। केवल विषय व्यवस्थापन के कारण भाषा में अन्तर था, काल के कारण नहीं—'विषय व्यवस्थानाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्। यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य' (न्यायभाष्य)।

इस समस्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि लौकिक संस्कृत और उनका साहित्य वैदिकभाषा और साहित्य के ही तुल्यकालीन हैं। इस सम्बन्ध में वैदिकग्रन्थों से प्रमाण और उदाहरण आगे अधिक विस्तृतरूप से लिखे जायेंगे।

असुरभाषा या म्लेच्छभाषाओं की उत्पत्ति एवं विस्तार :—यद्यपि विश्व की समस्त भाषायें एक ही पूर्वोक्त अतिभाषा से समुद्भूत हुई हैं, तथापि इस समय भारतीय और योरोपीय भाषाओं की शब्दराशि में सर्वाधिक साम्य है, इसी कारण उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में योरोपियन लेखकों ने पराधीन भारत में अनेक ऊँटपटाँग कल्पनायें कीं कि भारतीय आर्य और योरोपिय जातियाँ कभी पुरातनकाल में मध्यएशिया या योरोप के किसी स्थान में रहती थीं, तत्परिणामस्वरूप पाश्चात्यों ने एक काल्पनिक इण्डो-योरोपियन भाषा की भी कल्पना की। तन्मतानुसार योरोप या मध्यएशिया से आर्य भारतवर्ष में ईसा से लगभग 1500 वर्ष पूर्व प्रविष्ट एवं उपनिविष्ट

हुये। इसी प्रकार की अनेक विपुल कल्पनायें भाषासाम्य के आधार पर पाश्चात्यों ने कर रखी हैं। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य इसके ठीक विपरीत हैं। वस्तुत: इण्डोयोरोपियन नाम की भाषा न तो पहिले कभी थी और न आज है। अतिभाषा के अस्तित्व से इस समस्तप्रश्न का स्पष्ट उत्तर मिल जाता है।

भारत से दैत्यपलायन का समय—सप्तम त्रेतायुग (12000 वि०पू०)—पुराणों में विशेषत: वायुपुराण में भारतीय इतिहास के 28 युगों का उल्लेख है, प्रत्येक युग 360 वर्ष का होता था, ऐसे 28 युग प्रजापति दक्ष और कश्यप से युधिष्ठिर तक व्यतीत हुये। भारतीय वाङ्मय में इस ऐतिहासिक तथ्य का स्पष्टत: उल्लेख मिलता है कि आर्य और दस्यु (=असुर=दैत्य, दानव) कब तक भारतवर्ष में साथ रहे और असुर कब भारतवर्ष से निकाले गये। वास्तव में पूर्वदेवयुग में सम्पूर्ण पृथिवी पर असुरों का साम्राज्य था—'असुराणां वा इयं पृथिवी आसीत्', (काठक संहिता) 'पहिले यह पृथिवी असुरों की थी।' इसी तथ्य का उल्लेख वाल्मीकीय रामायण में मिलता है—

दितिस्त्वजनयत् पुत्रान् दैत्यांस्तात् यशस्विनः।
तेषामियं वसुमती पुरासीत् सवनार्णवा॥
(रामायण 3/14/15)

"कश्यपपत्नी दिति ने यशस्वी दैत्यसंज्ञक पुत्रों को उत्पन्न किया, प्राचीन काल में वन, पर्वत और समुद्रसहित सम्पूर्ण पृथिवी पर उनका अधिकार था।" यह घटना पृथु वैन्य से प्राय: एक सहस्रवर्ष पश्चात् और वैवस्वत मनु से कुछ शतीपूर्व की है। प्रमुख दैत्यवंशवृक्ष इस प्रकार है—
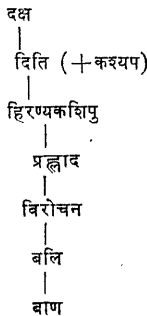
हिरण्यकशिपु दैत्यों का प्रथम सम्राट् था। उनके पुरोहित शुक्राचार्य के वंश में त्वष्टा, वरुणी, शण्ड, मर्क आदि अनेक दैत्य हुये।

देवासुरयुग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अन्तिम घटना थी—अदितिपुत्र वामन विष्णु द्वारा बलि को भारतवर्ष से निष्कासित करके पाताल (योरोप) में बसाना। इसी समय से दैत्यों का भारतवर्ष में राज्य समाप्त हो गया और यहाँ देवों (इन्द्र) का राज्य स्थापित हो गया। इसी समय से दैत्य असुरों ने योरोप (पाताल) को अपना स्थायी उपनिवेश बनाया। यह घटना सप्तम त्रेतायुग अर्थात् प्रायः 12000 वि० पू० की है[1]—

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमेयुगे।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥

(वा० पु०)

"सातवें युग में लोकों (प्रजा) के बलि के अधीन और आक्रान्त होने पर तीसरे अवतार में विष्णु ने वामन का रूप धारण किया।"

अतः योरोप में दैत्यवास कम से कम 14000 (चौदह) सहस्रवर्ष पुराना है। वर्तमान जर्मन, डच, अंग्रेज, फ्रेंच आदि योरोपियन उन्हीं प्राचीन दैत्यों की सन्तान हैं और उनकी दैत्यभाषा भी इतनी ही प्राचीन है। दैत्यभाषा की मूल अतिभाषा (संस्कृत) इससे अधिक प्राचीनतर है, यह स्वयं सिद्ध ही है। प्राचीन दैत्यभाषा के ही अनेक रूप वर्तमान योरोपियन भाषायें हैं। इसीलिये अंग्रेजी आदिभाषाओं के अनेक पद लौकिकसंस्कृत की अपेक्षा अतिभाषा (वेदवाक्) के पदों से अधिक साम्य रखते हैं, यथा, मैन (Man) = मनु, सुनु = सन (Son), सेवेन्थ = सप्तथ, फिफ्थ (Fifth) = पञ्चथः।

(1) मिश्र देश की गणना के अनुसार विष्णु का समय ईसा से 17000 (सत्रह सहस्र) वर्ष से भी पूर्व था—"Seventeen thousand years (from the birth of Hercules) before reign of Amasis, the twelve gods were, they (Egyptians) affirm." (Herodotus p. 136)।

हेरोडोट्स ने लिखा है कि भारतीयों के समान यूनानी भी विष्णु, वृत्र और बाणासुर को उत्तरकालीन मानते थे—"The greeks regard Hercules, Baccus and Pan as the youngest of the gods. कोई भी विद्वान् प्रथम दृष्टि में ही भाँप लेगा कि बेक्स वृत्र का और पान—बाण का अपभ्रंश है।

डौटर (Daughter)=दुहितृ । इत्यादि । आज भी अनेक योरोपियन देशों के नाम प्राचीन दैत्यपुरुषों के नाम पर हैं :—

दानवमर्क=डेनमार्क (Denmark)
षण्डदानव=स्केन्डेनेविया (Scandinavia)
काल (कालकेय)=केल्ट (Kelt)
दैत्य=डच (Dutch)
दैत्य=डीट्श (लैंड)=(जर्मन)
दनायु=डेन्यूब (Danub) नदी
असुर=असीरिया (सीरिया)
मद्र=मीडिया
बलि (बल)=बैबीलन; बल दैत्य=बेलजियम ।
पणि=फिनिश (Finishian)
श्वेतदानव=स्वीडन (Swedon)
श्वेत=स्विज् (स्विट्जरलैंड)
निकुम्भ=नीमिख (आस्ट्रिया)=म्यूनिख
दैत्य=टीटन=(Titon)
गाथ=गाथिक (जर्मन)

इसी प्रकार अफ्रीका का सुमालीलैंड, सूडान (श्वेतदानव) आदि नामों में प्राचीन दैत्य, राक्षसादि के नाम देखे जा सकते हैं । इसी प्रकार पाताल, सुतल, अतल आदि के अपभ्रंश अनातोलिया, तेल-अबीब आदि में दृष्टिगोचर होते हैं । अनावश्यक विस्तारभय से इस विषय को यहीं समाप्त करते हैं

उपर्युक्त विवेचन का निम्न सार है—

(1) पुराणोल्लिखित देवासुर इतिहास सत्य हैं ।
(2) पूर्वकाल में समस्त पृथिवी पर असुरसाम्राज्य था ।
(3) बलिकाल (12000 वि० पू०) में असुरों का राज्य भारत में समाप्त हो गया । तदनन्तर :
(4) बलिवंशजों ने योरोप में उपनिवेश बसाये ।
(5) असुरगण बलिनेतृत्व में भारत से निकलकर योरोप में बस गये ।
(6) असुरभाषा का ही पृथिवी पर प्रसार और संकोच हुआ ।

(7) अतिभाषा का विकृतरूप ही दैत्यभाषायें (योरोपियन भाषायें) थीं।

(8) देवों और असुरों का राज्यविभाजन बलि के समय हुआ।

लौकिकसंस्कृतकाव्य का प्रारम्भ

स्वयम्भू और स्वायम्भुव मनु से—इतिहासपुराण भारतीय इतिहास के प्रधान एवं मूलस्रोत हैं। वह बहुलांशेन ललितसाहित्य या काव्य भी हैं। इस इतिहासपुराणसाहित्य का निर्माण लौकिकसंस्कृत या मानुषीवाक् में हुआ। इतिहासपुराण के आदिप्रणेता स्वयम्भू या आत्मभू (आदम) ब्रह्मा थे—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः॥
(मत्स्यपुराण 3।3)

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
पुराणमेतद् वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिःसृताः॥
(मार्कण्डेयपुराण 45/20)

ब्रह्मा **प्रथम व्यास** थे, जिन्होंने वेदों से पूर्व इतिहासपुराणों का लौकिक संस्कृत में निर्माण किया—

प्रथमे द्वापरे ब्रह्मा व्यासो बभूव ह। (वायु पुराण)
व्यासरूपी तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे। (पद्मपुराण)

स्वयम्भू ब्रह्मा ने लौकिक संस्कृत में कम से कम 18 शास्त्रों का निर्माण किया था।[1] इनमें हैरण्यगर्भयोगशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और इतिहास पुराण प्रमुख थे। ब्रह्मकृत पुराण का नाम ब्रह्मपुराण था, उसका मूलरूप क्या था, आज उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, परन्तु उसकी रचना लौकिक भाषा में हुई थी, क्योंकि महाभारत में ब्रह्मारचित अनेक गाथायें मिलती हैं जो लौकिक संस्कृत में हैं। उपलब्ध ब्रह्मपुराण उसी मूलपुराण का सूतकृत संस्करण है।

---

(1) द्रष्टव्य—पं० भगवद्दत्तकृत भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, द्वितीय भाग, चतुर्थ अध्याय।
तथा डा० कुँवरलालकृत इतिहासपुराणसाहित्य का इतिहास—
प्रथम अध्याय।

ब्रह्मकृत धर्मशास्त्र में एक लाख श्लोक थे ।[1] ब्रह्मगीत एक गाथा मनुस्मृति (4/224) और महाभारत, शान्तिपर्व (अ० 256/9) में समान रूप से मिलती है—

अत्र गाथा ब्रह्मगीताः कीर्तयन्ति पुराविदः ।
श्रोत्रियस्य कदर्यस्य वदान्यस्य च वार्धुषेः ।
मीमांसयित्वोभयं देवाः सममन्नमकल्पयन् ।।

'ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् ।। (अ० 58/29)

हैरण्यगर्भयोगशास्त्र की रचना भी लौकिक संस्कृत में हुई थी, इसके दो श्लोक विष्णुपुराण (2/13) में उद्धृत हैं—

सम्मानना परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिं च विन्दति ।।
तस्माच्चरेद् वै योगी सतां मार्गमदूषयन् ।
जना यथावमन्येरन् गच्छेयुर्नैव संगतिम् ।।

ब्रह्मा का समय—पं० भगवद्दत्त के मतानुसार स्वयम्भू ब्रह्मा का समय 14000 वि० पू० था । वस्तुतः यह प्रजापति कश्यप और दक्ष प्रजापति का समय था । स्वयम्भू और उनके पुत्र स्वायम्भुव मनु का समय कश्यप, दक्ष और उनके पूर्वज पृथुवैन्य से भी सहस्रों वर्ष पूर्व था, वह समय कम से कम 20000 वि० पू० था ।

स्वायम्भुवमनुकृत धर्मशास्त्र—लौकिकसंस्कृत में—स्वयम्भू के पुत्र स्वायम्भुव मनु के वचन यास्क ने निरुक्त (3/1/4) में उद्धृत किये हैं, जो लौकिक संस्कृत में हैं—

अविशेषेण पुत्राणां दायो भवति धर्मतः ।
मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ।।

सप्तर्षिकृत चित्रशिखण्डीधर्मशास्त्र—चित्रशिखण्डी ऋषि प्राचेतस के सात पुत्र आदिम ऋषि थे—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु और वसिष्ठ । इन्होंने लक्ष श्लोक का एक धर्मशास्त्र लौकिक संस्कृत में रचा था । इसकी रचना पृथुवैन्य के समय और दक्ष से प्रायः एक सहस्रवर्ष पूर्व हुई थी । इसी शास्त्र का उत्तरोत्तर संक्षेप—क्रमशः उशना काव्य, बृहस्पति, प्राचेतस मनु, विशालाक्ष शिव, सहस्राक्ष महेन्द्र, भरद्वाज और गौरशिरा मुनि

(1) द्रष्टव्य—महाभारत, शान्तिपर्व—अध्याय 256 ।
'ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् ।। (अ० 58।29)

ने किया था। प्राचेतस मनु[1] के दो श्लोक महाभारत, शान्तिपर्व में मिलते हैं। ये श्लोक लौकिक संस्कृत में हैं।

अतः प्राचीन धर्मशास्त्र, इतिहासपुराण आदि सभी लौकिकसंस्कृत में रचे गये। लौकिकसंस्कृत को दो या तीन हजार वर्ष पुरानी बताना मिथ्या धारणा है, इसमें कल्पना के अतिरिक्त अन्य कोई प्रमाण नहीं है। अब क्रमशः ब्राह्मणग्रन्थों में प्राप्य गाथाश्लोक और महाभारत में उद्धृत पुरातन गाथाओं को उद्धृत करते हैं —

प्राचीन गाथायें—ब्राह्मणग्रन्थों में—अनेक अथर्वांगिरस ऋषियों और 28 व्यासों ने आदिकाल, देवयुग, कृतयुग, त्रेतायुग और द्वापर पर्यन्त इतिहास-पुराणों एवं काव्यों के रूप में विपुल लौकिकसंस्कृतसाहित्य की रचना की। इन महाकाव्यों या इतिहासों में से केवल एकमात्र श्रेष्ठकाव्य रामायण उपलब्ध है, जिसकी रचना भारतयुद्ध से 2400 वर्ष पूर्व हुई। वाल्मीकि ऋक्ष 24वें व्यास थे, जिनका परिचय रामायण सम्बन्धी अध्याय में लिखा गया है। वाल्मीकि को 'आदिकवि' और उनकी कृति को 'आदिकाव्य' मानने की परम्परा भ्रामक है और यह बहुत उत्तरकाल में प्रचलित हुई, जबकि मध्यकाल में वाल्मीकिपूर्व के उशना, बृहस्पति, इन्द्र, वरुण, विवस्वान्, यम, भरद्वाज, देवल, वशिष्ठ, गालव आदि शतशः ऋषियों के काव्य कालकवलित हो गये और विस्मृति के गर्भ में चले गये।

पाराशर्य व्यास और वाल्मीकि व्यास से पूर्वरचित इतिहासपुराणों एवं काव्यों की अनेक गाथायें जो लौकिक ललित संस्कृत में हैं वे ब्राह्मणग्रन्थों में उद्धृत की गई हैं। उनमें से कुछ गाथाओं को हम यहाँ उद्धृत करते हैं, इससे सिद्ध होगा कि लौकिकसंस्कृत वैदिक संस्कृत के तुल्यकालीन या प्राचीनतर है, क्योंकि स्वयं वैदिक ग्रन्थों में इन गाथाओं को प्राचीनतर ग्रन्थों से उद्धृत किया है।[2] ब्राह्मणग्रन्थों के सदृश महाभारत में ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता आदि राजर्षियों द्वारा लौकिकसंस्कृत में रचित शतश

(1) प्राचेतसेन मनुना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ।
राजधर्मेषु राजेन्द्र ताविहैकमनाः शृणु॥

(2) इसी दृष्टि से पुराण का यह वचन सार्थक सिद्ध होता है कि सब शास्त्रों से पूर्व पुराणों की रचना हुई, वेद बाद में रचे गये—
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः॥ (म० पु० 3।3)

गाथाश्लोक उद्धृत किये गये हैं। ब्राह्मणोद्धृत गाथायें और महाभारतोद्धृत गाथायें अनेकत्र समान हैं और उनकी भाषा तो समान है ही।

प्रथम ब्राह्मणग्रन्थों में से कुछ विशिष्ट गाथाओं को उद्धृत करते हैं। शतपथब्राह्मण में यह गाथा मरुत्त आविक्षित् के सम्बन्ध में मिलती है, जो वायुपुराण, भागवतादि पुराणों में भी समान रूप से मिलती है—

> मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे ।
> आविक्षितस्याग्निः क्षत्ता विश्वेदेवाः सभासदः ।।[1]
>
> (श० ब्रा 13 1 1 1, भागवत 19 12 28)

भरतदौष्यन्तिसम्बन्धी गाथायें ब्राह्मणग्रन्थों एवं पुराणों में समानरूप से किसी प्राचीन इतिहासपुराण से उद्धृत की गई है और अत्यन्त प्रसिद्ध हैं— कुछ गाथायें द्रष्टव्य हैं—

> अष्टासप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनायामनु ।
> गङ्गया वृत्रघ्नेऽबध्नात् पंचपंचाशतं हयान् ।
> भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ।
> सहस्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा बिभेजिरे ।
> मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान् ।
> अदात् कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ।
> भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे जनाः ।
> नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ।।

(शत० प० 13/5/4/11 ऐतरेयब्राह्मण—8/23, भागवतपुराण 9/21)

"दौष्यन्ति भरत ने यमुना तट पर 78 अश्वमेध यज्ञ किये और गंगातट पर 55 अश्वमेध यज्ञ किये। इन यज्ञों में ब्राह्मणों ने द्वन्द्वश सहस्रों गायें प्राप्त कीं। स्वर्णमण्डित श्वेतदन्त चौदह नियुत (दस सहस्र) हाथी मष्णारदेश में दान में दिये। भरत के महान् यज्ञकर्म को न तो किसी ने प्राप्त किया और न कोई भविष्य में ही प्राप्त कर सकेगा, जिस प्रकार कोई आकाश या स्वर्ग को हाथों से नहीं पकड़ सकता।"

(1) 'मरुद्गण (देवता) आविक्षित् मरुत्त के भोजन परोसने वाले थे, जो उसके घर में रहते थें। अग्निदेव क्षत्ता और विश्वदेव उसके सभासद (सदस्य सभ्य) थे।"

अन्य दो गाथा और अवलोकनीय हैं—

चतुर्दश द्वैतवतो राजा संग्रामजिद्हयान्।
इन्द्राय वृत्रघ्नेऽबध्नात्तस्माद् द्वैतवतसरः ॥
याज्ञतुरे यजमाने ब्राह्मणा ऋषभे जनाः।
अश्वमेधे धनं लब्ध्वा विभजतेस्म दक्षिणाः ॥[1]

महाभारत में उद्धृत प्राचीनगाथायें—महाभारत में इन्द्र, उशना, वायु, ययाति, पितृ, मरीचि, कश्यप, अम्बरीष आदि पुरातन ऋषियों और राजर्षियों द्वारा रचित अनेक गाथायें प्राचीन काव्यों से उद्धृत की गई हैं। इन गाथाओं की भाषा को देखने पर पूर्णतः सिद्ध होता है कि रामायण, पुराण, महाभारत और कालिदास की भाषा के सदृश ही देवयुग में इन्द्र, ययाति आदि मानुषी संस्कृत बोलते थे। आज से पन्द्रह सोलह सहस्र वर्ष पहले भी संस्कृत-जनभाषा का वही रूप था जो आज और कालिदास के समय था।

उशनागीत—

गाथाश्चाप्युशनागीता इमाः शृणु मयेरिताः।
कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम्।
कुपुत्रं च कुभार्यां च दूरतः परि वर्जयेत्।
कुमित्रे सौहृदंनास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः।
कुतः पिण्डः कुपुत्रे वै नास्ति सत्यं कुराजनि ॥

(हरिवंशपुराण 1/20/119-120)

"मेरे द्वारा कथित शुक्राचार्यगीतगाथायें सुनें—कुमित्र, कुदेश, कुराजा, दुर्मित्र, कुपुत्र और कुलटा भार्या को दूर से ही त्याग देना चाहिये। कुमित्र में सच्चा प्रेम नहीं होता, कुभार्या में सुख नहीं, कुपुत्र से पिण्ड (श्राद्ध) नहीं और कुराजा से न्याय नहीं मिल सकना।"

वायुगीत गाथायें—

अत्र गाथा वायुगीता; कीर्तयन्ति पुराविदः।
यथा बीजं न वप्तव्यं पुंसा परपरिग्रहे।
नश्यतीषुर्यथा विद्धः खे विद्धमनुविद्ध्यतः।
तथा नश्यति वै क्षिप्रं बीजं परिपरिग्रहे ॥

(मनुस्मृति 9/42-43)

"पुराणविद् आचार्य वायुऋषिगीत गाथाओं को कहते हैं—'पुरुष को दूसरे के क्षेत्र (खेत या पत्नी) में बीज नहीं बोना चाहिये। जैसे आकाश में

(1) श० ब्रा (13।5।4)।

अनुविद्ध बाण नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार परक्षेत्र में बोया बीज नष्ट हो जाता है ।"

ययाति गीत—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ।[1]

"इच्छायें इच्छाओं के उपभोग से शान्त नहीं होती, वरन् और बढ़ती हैं, जैसे अग्नि में घी डालने से वह बढ़ती है ।"

---

1. महाभारत—आदिपर्व तथा मनुस्मृति द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

रामायण

चौबीसवें व्यास वाल्मीकि का मूलनाम ऋक्ष था, वे वैदिक ऋषि थे, जिन्होंने महाभारत काल से लगभग 2000 वर्ष पूर्व आदिकाव्य रामायण की रचना की।

ऋषि वाल्मीकि के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की कथायें प्रचलित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि वाल्मीकि प्रारम्भिक जीवन में लुटेरे या डाकू थे। आध्यात्मरामायण के अनुसार उस समय वाल्मीकि का नाम रत्नाकर था। वे यात्रियों को लूटा करते थे। सप्तर्षियों या नारदमुनि के उपदेश से उन्होंने दस्युता का परित्याग किया। कुछ लोग मानते हैं कि वे जाति से चाण्डाल थे। इसी आधार पर 'हरिजन' वाल्मीकि को अपना पूर्वज मानते हैं। परन्तु ये बातें निराधार प्रतीत होती हैं। इतिहासपुराण के अनुसार वाल्मीकि प्रचेता (वरुण) के वंश में उत्पन्न हुये थे और च्यवन भार्गव के पुत्र थे—

प्रसिद्ध बौद्धकवि अश्वघोष ने लिखा है कि जिस पद्य का निर्माण च्यवन ऋषि न कर सके उसका निर्माण उनके पुत्र ने किया—

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं।
जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः।

(बुद्धचरित 1/43)

महाभारतवनपर्व (122/3) में लिखा है कि च्यवन तप करते हुये 'वाल्मीकि' हो गया—

'स वाल्मीकिरभवदृषिः'

च्यवन वल्मीकि का पुत्र वाल्मीकि कहलाया। मूलनाम उसका 'ऋक्ष' था।

महाभारत में रामायण और वाल्मीकि का स्पष्टतः अनेक बार उल्लेख हुआ है—रामायण का एक श्लोक भी द्रोणपर्व में उद्धृत है—

'अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
"न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवङ्गम।
पीडाकरणममित्राणां यच्च कर्त्तव्यमेव तत्।'

यह श्लोक रामायण युद्धकाण्ड में मिलता है जहां इन्द्रजित् (मेघनाथ) हनुमान से कहता है—हे वानर ! तुम जो यह कहते हो कि स्त्री का वध नहीं करना चाहिए, सो तुम्हारा कहना अयुक्त है। क्योंकि शत्रु को दुःख पहुंचाने वाला जो भी कार्य हो वह अवश्य करना चाहिए।"

पुनः वाल्मीकि को भार्गव नाम से स्मरण किया है—

श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेण महात्मना। (शान्तिपर्व 56/40)

महाभारत में रामोपाख्यान विस्तारपूर्वक मिलता है।, रामायण का भी नामतः उल्लेख है···

रामायणेऽतिविख्यातः श्रीमान् वानरपुङ्गवः। (वनपर्व 149/11)

विद्वानों ने अनुसंधान करके सिद्ध किया है कि महाभारतान्तर्गत नलोपाख्यान के अनेक श्लोक वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड के अनेक श्लोकों से साम्य रखते हैं। अतः रामायण महाभारत से प्राचीनतर ग्रन्थ है। कृष्ण द्वैपायन ने महाभारत में रामायण का पर्याप्त अनुकरण किया है। श्रीरामशंकर भट्टाचार्य (इतिहासपुराण अनुशीलन) के मतानुसार श्रीमद्भगवद्गीता में व्यास के नाम से वाल्मीकि का ही उल्लेख किया गया है—

'मुनीनामहं व्यासः कवीनामुशना कविः।"

उपर्युक्त श्लोक में 'मैं मुनियों में व्यास हूं' इसका तात्पर्य या तो सामान्य 'व्यास' पदवी से है अथवा वाल्मीकि से है, अन्यथा स्वयं पाराशर्यव्यास अपना उल्लेख इस प्रकार गीता में न करते।

चतुर्युगीगणना और पर्याय (परिवर्त युग) गणना से वाल्मीकि का समय निर्धारण करने में कुछ कठिनाई आती है। क्योंकि परिवर्तयुग का परिमाण 360 वर्ष निश्चित है और द्वापर युग का परिणाम 2000 वर्ष अथवा संधिकाल सहित=2400 वर्ष। परन्तु वाल्मीकि और राम को 24वें परिवर्त के प्रारम्भ में भी हुआ माना जाय तो वर्षगणना इस प्रकार निश्चित होती है—

चौबीसवें	परिवर्त में	व्यास वाल्मीकि	=	360 वर्ष
पच्चीसवें	,,	,, शक्ति	=	360 ,,
छब्बीसवें	,,	,, पराशर	=	360 ,,
सत्ताईसवें	,,	,, जातूकर्ण्य		360 ,,
अट्ठाइसवें	,,	,, कृष्णद्वैपायन		360 ,,
			कुलयोग—	1800 वर्ष

यदि द्वापर को न्यूनतम 2000 वर्ष (सन्धिकाल घटाकर) का माना जाय तो परिवर्तयुगगणना से कलि 1800 वर्ष पूर्व चतुर्युगीगणना का ऐतिहासिक अस्तित्व नहीं था, युगों के नाम धार्मिक भावना पर आश्रित थे। इनको ऐतिहासिकता महाभारतयुग में ही प्राप्त हुई। पुराणों में परिवर्तों के अनुसार ऐतिहासिक घटनाओं क्रम रखा गया है। अतः द्वापर को 2000 का मानने पर वाल्मीकि का समय तेईसवें परिवर्त में निश्चित होता है। यह थोड़ी-सी भूल है अथवा अधिक अनुसंधान करने पर इसका परिमार्जन भविष्य में सम्भव होगा। अत: वाल्मीकि कृष्णद्वैपायन से 1800 या 2000 वर्ष पूर्व हुये, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पाश्चात्यलेखक कीथ और उसके अन्धानुयायी भारतीय लेखक वाल्मीकि रामायण का रचना काल 200—400 ई० पू० मानते हैं। कुछ तो 400 ई० में वाल्मीकि रामायण की रचना मानते हैं जब कि गुप्तवंश का भारत में अन्त हो गया था और हूणों का आक्रमण हो रहा था। यह अज्ञान की घोर पराकाष्ठा है। उस समय कालिदास को दिवंगत हुये भी पांच सौ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। कालिदास के पाँच सौ वर्ष पश्चात् वाल्मीकि द्वारा रामायण का रचनाकाल मानना न जाने किस बुद्धि का काम है, यह सोचने में भी हँसी आती है, लेकिन ऐसे विद्वान् (?) हुये हैं जो ऐसा मानते थे—

"The modern work Ramayana can not be dated earlier than 450 A.D. (प्रबोधचन्द्रसेन—Ancient Indian chronology p. IX) पाश्चात्यों का एक और भक्त लिखता है—The Ramayana is therefore regarded as much later poem than the Mahabharata (prehistoric and ancient Hindu India p. 47, राखलदास बनर्जी)

इनका गुरु कीथ रामायण को 200 से 400 वि० पू० की रचना मानता था—'Valmiki and those who Improved on him, probably in the period 400—200 B.C. (History of sanskrit lit. p. 43.) गुरु गुड़ हो गये लेकिन चेला चीनी बन गये। पाश्चात्य लेखक तो 400 ई० पू० में रामायण की रचना मानते थे लेकिन उनके शिष्य 450 ई० में यानी कीथ के मत से भी 850 वर्ष पश्चात् उसका रचना काल मानते हैं। इन ऊटपटांग मतों पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन हमारे विश्व विद्यालयों में यही सब कुछ पढ़ाया जाता है यह विडम्बना की पराकाष्ठा है।

ये लेखक भाषा के आधार पर भांति-भांति की कल्पनायें करते हैं, लेकिन रामायणसदृश भाषा में गाथायें ब्राह्मणग्रन्थों में मिलती हैं, विन्टरनित्स को भी लिखना पड़ा—'Gathas, verses which both in language and

meter are entirely differrent from the vedic verses and approach the epic'' (some problems of Ind. Lit. p. 12) अर्थात् 'गाथायें छन्दोबद्ध रचनायें, जो भाषा और छन्द में वैदिक श्लोकों से सर्वथा भिन्न हैं, महाकाव्य के सदृश हैं।'

वास्तव में पाश्चात्य लेखकों ने भाषा के आधार पर वेदकाल, महाकाव्य काल इत्यादि का जो निर्धारण किया है, वह सर्वथा काल्पनिक, मनगढ़न्त और इतिहासबुद्धि से शून्य है।

रामायण की प्राचीनता महाभारत से ही नहीं, पाणिनिव्याकरण से भी सिद्ध है। पाणिनि के सूत्रों और गणपाठों में शूर्पणखा, रावणि, विभीषण, कैकसी इत्यादि पदों की सिद्धि की है। हरिवंशपुराण में रामायण के आधार पर नाटक खेलने का उल्लेख है। भास ने अनेक नाटक रामायण के कथानकों पर लिखे, इसके पश्चात् कालिदास ने रघुवंश में रामकथा लिखी हैं उसमें वाल्मीकि द्वारा लवकुश को रामायण पढ़ाये जाने का उल्लेख है—

सखा दशरथस्यापि जनकस्य च मन्त्रकृत्।
संचस्कारोभयप्रीत्या मैथिलेयौ यथाविधि॥
वृत्तं रामस्य वाल्मीकेः कृतिस्तौ किन्नरस्वरौ।

(रघुवंश)

अतः उत्तरकाण्ड की कथायें भी कालिदास को ज्ञात थीं, भवभूति ने तो उत्तरकाण्ड की कथा के आधार पर 'उत्तररामचरित' नाटक ही लिखा।

अतः कालिदास, भास, भवभूति, अश्वघोष जैसे महाकवि वाल्मीकि और उनकी रामायण की यशःप्रशस्ति का गान करें तब इन पाश्चात्यों के प्रलापों का क्या महत्व है, जो रामायण को भाटों की रचना या गीत मानते हैं।

भला व्यास जैसे ऋषि वाल्मीकि को प्रमाण मानें तब वाल्मीकि की महिमा और पूजनीयता समझी जा सकती है।

रामायण के सम्बन्ध में आधुनिक लेखकों ने अनेक शंकायें उठाई हैं और अनेक समस्यायें खड़ी कर दी गई हैं। इन लेखकों में बेवर (weber) जेकोबी (Jacobi), श्री चिन्तामणिवैद्य (The Riddle of Ramayana) प्रसिद्ध हैं। इन लेखकों द्वारा उठाई गई अधिकांश शंकायें निरर्थक और निराधार हैं। फिर भी निदर्शन के रूप में कुछ शंकाओं का समाधान करेंगे। ये शंकायें दो श्रेणियों में विभक्त की जा सकती हैं। बहिरंग और अन्तरंग।

बहिरंग शंकाओं के सम्बन्ध में प्रथम यह विचारणीय है कि इस समय रामायण के तीन पाठान्तर मिलते हैं—दाक्षिणात्य, वंगीय और पश्चिमीपाठ

इन तीनों पाठों में पर्याप्त भेद है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन तीनों पाठों का तुलनात्मक अध्ययन ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होगा।

हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं कि वाल्मीकि का मूलपाठ निश्चय ही संक्षिप्त रहा होगा। वर्तमान रामायण में 24000 श्लोक, 500 सर्ग और सात काण्ड मिलते हैं। एक प्राचीन बौद्धग्रन्थ महाविभाषा में यह उल्लिखित है कि मूल रामायण में 12000 श्लोक थे। यह सत्य हो सकता है। निश्चय-पूर्वक उत्तरकाल में रामायण का पर्याप्त उपबृंहण हुआ है।

वाल्मीकि ने सम्भवतः बारह सहस्र श्लोकों में ही अपना काव्य लिखा था। उत्तरकाल में उसका आकार ठीक द्विगुणित हो गया। ऐसा मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि रामायण की रचना वाल्मीकि ने आज से 7500 वर्ष पूर्व की थी और इसमें प्रक्षेप जोड़कर हस्तक्षेप किया गया। इसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं।

बालकाण्ड के अनेक उपाख्यान निश्चय ही उत्तरकाल में जोड़े गये। जैसे ऋष्यशृंगोपाख्यान, विश्वामित्रकथा, शुनःशेपकथा वामनावतार की कथा, कार्तिकेय उत्पत्तिकथा, गंगावतरण और समुद्रमन्थन की कथा। लेकिन बाल-काण्ड का समस्त भाग प्रक्षेप नहीं है, जैसा कि कुछ लेखक मानते हैं।

यह सत्य है जैसा कि रामायण के गम्भीर अध्ययन से सिद्ध होता है कि राम को मनुष्य के रूप में वाल्मीकि ने चित्रित किया था। राम को विष्णु का अवतार सम्भवत महाभारतयुग में माना गया, यद्यपि अवतारवाद वाल्मीकि को अज्ञात नहीं था। हनुमान को मरुत्सुत मानने की कल्पना उत्तरकाल की नहीं, वाल्मीकि को भी यह मान्य थी। अतः अवतारवाद वाल्मीकि से पूर्व भी मान्य था जैसा कि ऋग्वेद में भी विष्णु के वामनावतार का उल्लेख है।

कुछ लोग रामकथा का सम्बन्ध वेदों से जोड़ने की चेष्टा करते हैं; जैसे 'सीता' शब्द के आधार पर अथवा इन्द्र-वृत्रयुद्ध के आधार पर राम-रावण युद्ध की कल्पना सिद्ध करते हैं। ये सब निरर्थक और तथ्यहीन कल्पनायें हैं। वेदमन्त्रों से रामकथा सम्बन्ध जोड़ना निष्प्रयोजन और तर्कहीन है। रामकथा एक ऐतिहासिक वस्तु है, वेदों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

कुछ पाश्चात्य लेखक रामायण पर बौद्धप्रभाव सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। इसके समर्थन में रामजाबालिसंवाद का उदाहरण देते हैं, जहाँ पर उल्लि-खित है 'बुद्ध को चोर की तरह समझो कि तथागत नास्तिक है।'

यह वाक्य केवल दाक्षिणात्य पाठ में मिलता है और क्षेपक है।

कुछ बौद्धजातकों में रामकथा सम्बन्धी कुछ आख्यान मिलते हैं, जैसे दशरथजातक, सामजातक इत्यादि में। पाश्चात्य लेखक मानते हैं कि जातकों में रामकथा का प्राचीन रूप मिलता है। पाश्चात्यों की यह कल्पना उसी प्रकार है, जिस प्रकार कोई कहे कि सूर के गीत भागवतपुराण से प्राचीनतर है अथवा ब्रज में जो ढोला गाया जाता है जिसमें नल की कथा कहीं जाती है वह महाभारत के नलोपाख्यान से प्राचीनतर माना जाय। पाश्चात्य लेखक उल्टी गंगा बहाते हैं। क्योंकि बौद्धलेखकों का ब्राह्मणशास्त्रों और संस्कृत से सम्बन्ध छूट गया था, उन्होंने लोककथाओं के आधार पर जातकों में कहानियाँ लिखी हैं, वहाँ पर वासवत्ता को उदयन की भगिनी और सीता को रावण की पुत्री बताया गया है। उन बौद्धकथानकों की प्रामाणिकता या ऐतिहासिकता पर कौन विज्ञ पुरुष विश्वास करेगा! बुद्ध का समय 1800 वि० पू० है। बौद्धजातक अधिक से अधिक 1000 वि० पू० रचे गये। और रामायण की रचना 5200 वि० पू० हुई अतः विज्ञ पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि कौन प्राचीन, प्रामाणिक और मूल है।

कुछ पाश्चात्य लेखक (जैसे वेबर) रामायण पर होमर के काव्य इलियड और ओडेसी का प्रभाव बताते हैं। आज इस पर टिप्पणी करना पूर्णतः निरर्थक है, क्योंकि अब प्रकार की कल्पनाओं पर कोई विश्वास नहीं करता।

पाश्चात्यलेखकों की बुद्धि का वैभव :

(1) एक अद्भुत खोज से सिद्ध होता है कि जहाँ पर राम अरण्यकाण्ड में शूर्पणखा से कहते हैं कि 'लक्ष्मण अविवाहित हैं।' 'जब कि बालकाण्ड में चारों भाइयों के विवाह का वर्णन है।' अतः पाश्चात्यों का निष्कर्ष है कि बालकाण्ड जाली है और लक्ष्मण अविवाहित ही थे। पाश्चात्यों की बुद्धिहीनता इससे सिद्ध होती है। यहाँ पर राम कूटनीतिपूर्ण उपहास में शूर्पणखा से वार्तालाप कर रहे थे। राम, लक्ष्मण और शूर्पणखा तीनों ही छलपूर्वक बातचात कर रहे थे, ऐसे अवसर के प्रत्येक शब्द को सत्य मानना मूर्खता है। इसी प्रसंग से समझा जा सकता है कि पाश्चात्यों में किस प्रकार की आलोचनात्मक या अनुसंधानात्मक बुद्धि थी।

रामायण में इतिहास और भूगोल की कई समस्यायें निश्चय ही उत्तरकालीन क्षेपक हैं। परन्तु क्षेपक होते भी वह प्राचीन एवं ऐतिहासिक है। लवकुश की कथा सत्य है और वह कालिदास, अश्वघोष और भवभूति को उसी रूप में ज्ञात थी जिस प्रकार रामायण में है। रामायण का सर्वप्रथम गान लवकुश ने राम की राजसभा में किया था, इस तथ्य का वर्णन कालिदास

और भवभूति दोनों ने सम्यक् रूप से किया है। रामायण में इक्ष्वाकुवंश की वंशावली का पाठ अत्यन्त विकृत हो गया है। यह विकार सहस्रों वर्ष पूर्व आ गया था क्योंकि सभी पाठों में यह विकृत मिलती है।

रामायण में राक्षस और वानरजातियों का विस्तृत इतिहास मिलता है जो भारतीय इतिहास का एक अद्भुत और अनुपम अध्याय है।

रामायण में भूगोल का वर्णन इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। सीतान्वेषण से पूर्व किष्किन्धाकाण्ड में पृथ्वी के भूगोल का विस्तृत भूगोल अनुसंधान का एक उत्तम क्षेत्र है। सर्वप्रथम लंका की समस्या ही अत्यन्त गूढ़ है। वर्तमान सिंहल (Ceylon) प्राचीन लंका नहीं है। रामायण में राक्षसों के द्वीप का नाम कहीं भी नहीं मिलता, केवल द्वीप की राजधानी लंका का उल्लेख है। रामायण में सुन्दरकाण्ड के नामकरण का रहस्य यह प्रतीत होता है कि द्वीप का नाम 'सुन्दद्वीप' था, क्योंकि रावण से पूर्व सुन्द–उपसुन्द उस राक्षस द्वीप के अधिपति थे। ताड़का का पति सुन्द राक्षस था। अत: उस द्वीप का नाम सुन्दद्वीप था। प्राचीन काल में काण्ड का नाम भी सुन्दकाण्ड होना चाहिए, क्योंकि प्राय: शेष सभी काण्डों के नाम भौगोलिक स्थानों के नाम पर है। सुन्दरता से सुन्दरकाण्ड का कोई सम्बन्ध नहीं है। उत्तरकाल में सुन्दद्वीप की विस्मृति होने से काण्ड को सुन्दरकाण्ड कहने लग गये। वास्तव में सुन्दरकाण्ड में राक्षसद्वीप में घटित घटनाओं का वर्णन है अत: द्वीप का नाम लंका नहीं था। यह तो नगरी या राजधानी का नाम था। लंका और सिंहल का पार्थक्य भी प्राचीन वाङ्मय से सिद्ध, है। हिन्दी कवि जायसी तक यह मानते थे कि सिंहल और लंका दो पृथक्-पृथक् द्वीप थे। अत: वर्तमान सिंहल को रावण की लंका मानना महती भ्रान्ति है। अत: रामायण का भूगोल गूढ़-गम्भीर अनुसंधान का विषय है।

भारतवर्ष में ही नहीं विश्व में रामकथा का कितना प्रचार और प्रसार है, यह अब सर्वज्ञात तथ्य है। भारतीय वाङ्मय-काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य-पद्य सभी कुछ रामकथा से आपूरित है। पूर्वीद्वीप समूहों में रामकथा लोकप्रिय है, जावा और बाली द्वीप में राम और अयोध्या उसी प्रकार प्रसिद्ध हैं, जिस प्रकार भारतवर्ष में है। रामायणकाव्य उत्तर और दक्षिण भारत का ही नहीं बृहत्तर भारत का भी सेतु है। इस सेतु के आधार पर अखण्ड भारतीय–संस्कृति का निर्माण होता है। रामकथा के साथ अगस्त्य की महिमा भी सम्बद्ध है। रामावतार से पूर्व अगस्त्य ने दक्षिण भारत और पूर्वीद्वीप समूह में भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना की थी और वहां के बर्बर यक्ष, राक्षस

कुछ बौद्धजातकों में रामकथा सम्बन्धी कुछ आख्यान मिलते हैं, जैसे दशरथजातक, सामजातक इत्यादि में। पाश्चात्य लेखक मानते हैं कि जातकों में रामकथा का प्राचीन रूप मिलता है। पाश्चात्यों की यह कल्पना उसी प्रकार है, जिस प्रकार कोई कहे कि सूर के गीत भागवतपुराण से प्राचीनतर है अथवा ब्रज में जो ढोला गाया जाता है जिसमें नल की कथा कही जाती है वह महाभारत के नलोपाख्यान से प्राचीनतर माना जाय। पाश्चात्य लेखक उल्टी गंगा बहाते हैं। क्योंकि बौद्धलेखकों का ब्राह्मणशास्त्रों और संस्कृत से सम्बन्ध छूट गया था, उन्होंने लोककथाओं के आधार पर जातकों में कहानियाँ लिखी हैं, वहाँ पर वासवत्ता को उदयन की भगिनी और सीता को रावण की पुत्री बताया गया है। उन बौद्धकथानकों की प्रामाणिकता या ऐतिहासिकता पर कौन विज्ञ पुरुष विश्वास करेगा ! बुद्ध का समय 1800 वि० पू० है। बौद्धजातक अधिक से अधिक 1000 वि० पू० रचे गये। और रामायण की रचना 5200 वि० पू० हुई अतः विज्ञ पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि कौन प्राचीन, प्रामाणिक और मूल है।

कुछ पाश्चात्य लेखक (जैसे वेबर) रामायण पर होमर के काव्य इलियड और ओडेसी का प्रभाव बताते हैं। आज इस पर टिप्पणी करना पूर्णतः निरर्थक है, क्योंकि अब प्रकार की कल्पनाओं पर कोई विश्वास नहीं करता।

पाश्चात्यलेखकों की बुद्धि का वैभव :

(1) एक अद्भुत खोज से सिद्ध होता है कि जहाँ पर राम अरण्य काण्ड में शूर्पणखा से कहते हैं कि 'लक्ष्मण अविवाहित हैं।' 'जब कि बालकाण्ड में चारों भाइयों के विवाह का वर्णन है।' अतः पाश्चात्यों का निष्कर्ष है कि बालकाण्ड जाली है और लक्ष्मण अविवाहित ही थे। पाश्चात्यों की बुद्धिहीनता इससे सिद्ध होती है। यहाँ पर राम कूटनीतिपूर्ण उपहास में शूर्पणखा से वार्तालाप कर रहे थे। राम, लक्ष्मण और शूर्पणखा तीनों ही छलपूर्वक बातचात कर रहे थे, ऐसे अवसर के प्रत्येक शब्द को सत्य मानना मूर्खता है। इसी प्रसंग से समझा जा सकता है कि पाश्चात्यों में किस प्रकार की आलोचनात्मक या अनुसंधानात्मक बुद्धि थी।

रामायण में इतिहास और भूगोल की कई समस्यायें निश्चय ही उत्तर कालीन क्षेपक हैं। परन्तु क्षेपक होते भी वह प्राचीन एवं ऐतिहासिक है। लवकुश की कथा सत्य है और वह कालिदास, अश्वघोष और भवभूति को उसी रूप में ज्ञात थी जिस प्रकार रामायण में है। रामायण का सर्वप्रथम गान लवकुश ने राम की राजसभा में किया था, इस तथ्य का वर्णन कालिदास

और भवभूति दोनों ने सम्यक् रूप से किया है। रामायण में इक्ष्वाकुवंश की वंशावली का पाठ अत्यन्त विकृत हो गया है। यह विकार सहस्रों वर्ष पूर्व आ गया था क्योंकि सभी पाठों में यह विकृत मिलती है।

रामायण में राक्षस और वानरजातियों का विस्तृत इतिहास मिलता है जो भारतीय इतिहास का एक अद्भुत और अनुपम अध्याय है।

रामायण में भूगोल का वर्णन इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है। सीतान्वेषण से पूर्व किष्किन्धाकाण्ड में पृथ्वी के भूगोल का विस्तृत भूगोल अनुसंधान का एक उत्तम क्षेत्र है। सर्वप्रथम लंका की समस्या ही अत्यन्त गूढ़ है। वर्तमान सिंहल (Ceylon) प्राचीन लंका नहीं है। रामायण में राक्षसों के द्वीप का नाम कहीं भी नहीं मिलता, केवल द्वीप की राजधानी लंका का उल्लेख है। रामायण में सुन्दरकाण्ड के नामकरण का रहस्य यह प्रतीत होता है कि द्वीप का नाम 'सुन्दद्वीप' था, क्योंकि रावण से पूर्व सुन्द-उपसुन्द उस राक्षस द्वीप के अधिपति थे। ताड़का का पति सुन्द राक्षस था। अतः उस द्वीप का नाम सुन्दद्वीप था। प्राचीन काल में काण्ड का नाम भी सुन्दकाण्ड होना चाहिए, क्योंकि प्रायः शेष सभी काण्डों के नाम भौगोलिक स्थानों के नाम पर है। सुन्दरता से सुन्दरकाण्ड का कोई सम्बन्ध नहीं है। उत्तरकाल में सुन्दद्वीप की विस्मृति होने से काण्ड को सुन्दरकाण्ड कहने लग गये। वास्तव में सुन्दरकाण्ड में राक्षसद्वीप में घटित घटनाओं का वर्णन है अतः द्वीप का नाम लंका नहीं था। यह तो नगरी या राजधानी का नाम था। लंका और सिंहल का पार्थक्य भी प्राचीन वाङ्मय से सिद्ध, है। हिन्दी कवि जायसी तक यह मानते थे कि सिंहल और लंका दो पृथक्-पृथक् द्वीप थे। अतः वर्तमान सिंहल को रावण की लंका मानना महती भ्रान्ति है। अतः रामायण का भूगोल गूढ़-गम्भीर अनुसंधान का विषय है।

भारतवर्ष में ही नहीं विश्व में रामकथा का कितना प्रचार और प्रसार है, यह अब सर्वज्ञात तथ्य है। भारतीय वाङ्मय-काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य-पद्य सभी कुछ रामकथा से आपूरित है। पूर्वीद्वीप समूहों में रामकथा लोकप्रिय है, जावा और वाली द्वीप में राम और अयोध्या उसी प्रकार प्रसिद्ध हैं, जिस प्रकार भारतवर्ष में है। रामायणकाव्य उत्तर और दक्षिण भारत का ही नहीं बृहत्तर भारत का भी सेतु है। इस सेतु के आधार पर अखण्ड भारतीय-संस्कृति का निर्माण होता है। रामकथा के साथ अगस्त्य की महिमा भी सम्बद्ध है। रामावतार से पूर्व अगस्त्य ने दक्षिण भारत और पूर्वीद्वीप समूह में भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठापना की थी और वहां के बर्बर यक्ष, राक्षस

और वानरों को सुसंस्कृत करके श्रेष्ठमानव (आर्य) बनाया। पुलस्त्य और तृणबिन्दु राजर्षि के साथ अगस्त्य ने सुदूर पूर्वीद्वीपों की यात्रायें की और उपनिवेश स्थापित किये। अगस्त्य ने वातापि जैसे असुरों का संहार किया और अरण्यों और पर्वतों को समतल करके मानव बस्तियां बसाईं।

राम से पूर्व अगस्त्य के कृत्य भारतीय इतिहास के स्वर्ण पृष्ठ हैं। भट्टगुरु के नाम से आज भी पूर्वीद्वीपों में अगस्त्य ऋषि की पूजा होती है। अगस्त्य ने राक्षसविजय में राम की भी महती सहायता की। वैष्णवधनुष को अगस्त्य ने ही राम को प्रदान किया। पूर्वीद्वीपसमूहों में अगस्त्य और राम की गाथायें आज भी गाई जाती हैं। रामकथा के सम्बन्ध में ब्रह्मा की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणस्य कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।

"जबतक इस भूतल पर पर्वत और नदियाँ रहेंगे तबतक संसार में रामायण की कथा का प्रचार रहेगा।"

क्या रामायण आदिकाव्य है ?

आज ही नहीं, कम से कम दो सहस्र वर्ष पूर्व से भारतीय विद्वानों में यह धारणा बद्धमूल है कि रामायणग्रन्थ संस्कृत का आदिकाव्य अर्थात् प्रथम काव्य था। हमारी सम्मति में यह मत या धारणा शत प्रतिशत सत्य नहीं है, आंशिक रूप से ही सत्य हो सकती है जब, यह सिद्ध है कि वाल्मीकि ऋक्ष व्यास से पूर्व सैकड़ों ऋषि-मुनि इतिहास-पुराण और काव्य रच चुके थे, तो वाल्मीकि को 'आदि- कवि' क्यों माना गया, इस सत्य वा असत्य धारणा के कारण अन्वेष्टव्य हैं।

जब वाल्मीकि से पूर्व सैकड़ों अथर्वाङ्गिरस ऋषि, एवं कम से कम 23 व्यास[1] इतिहासपुराण रच चुके थे, तब वाल्मीकि की प्रसिद्धि 'आदिकवि' के नाम से क्यों हुई, यह निश्चय ही रोचक गवेषणीय विषय है।

---

(1) वाल्मीकि से पूर्व जिन 23 व्यासों ने इतिहास-पुराण काव्य रचे वे थे--स्वयम्भू, मातरिश्वा, शुक्राचार्य उशना, बृहस्पति, विवस्वान्, वैवस्वत यम, शतक्रतु इन्द्र, वशिष्ठ, अपान्तरतमा आङ्गिरस सारस्वत, त्रिधामा (मार्कण्डेय), त्रिशिख, शततेजा, नारायण, अन्तरिक्ष त्र्यारुणि, संजय, कृतञ्जय, ऋतञ्जय भरद्वाज, वाजश्रवा, वाचस्पति, शुक्लायन और तृणविन्दु। इनमें से तृतीय व्यास उशना (शुक्राचार्य) के पिता भृगु इतने प्रसिद्ध कवि थे कि उनका

महाभारत, आदिपर्व, प्रथम अध्याय में लिखा है कि मनु, इक्ष्वाकु, ययाति, शशबिन्दु, रन्तिदेव, दम्भोद्भव, उशीनर, वेन, सगर इत्यादि सैकड़ों राजाओं के चरित लोकभाषा में प्राचीन कवियों ने लिखे थे।[1]

यह सत्य है कि आज रामायण से पूर्व रचित कोई लौकिककाव्य उपलब्ध नहीं है, यही क्यों आज तो रामायण और महाभारत के मध्यकाल (दो सहस्र) में रचित अथवा भारतोत्तरकाल से अश्वघोष और कालिदास के मध्य का रचित भी कोई काव्य उपलब्ध नहीं है। महाभारत और कालिदास के मध्य में कम से कम तीन सहस्र वर्षों का अन्तर था। इसका यह तात्पर्य तो है ही नहीं कि दो सहस्र (पूर्ण द्वापरयुग) में और भारतोत्तरयुग के तीन सहस्र वर्ष पर्यन्त कोई काव्य लिखे ही नहीं गये। भारत में काव्यरचना (वैदिक और लौकिक-उभयविध) तो स्वयम्भू और स्वायम्भुव मनु के समय से ही होती आ रही है, काव्यरचना का प्रवाह कभी रुका नहीं, परन्तु दो-दो या तीन-तीन हजार वर्षों के काव्य कालगति से पूर्णतः लुप्त हो गये। हमारे समस्त विवेचन का मन्तव्य है कि वाल्मीकि से पूर्व और वाल्मीकि तथा व्यास के मध्य अनेकों कवियों ने सैकड़ों महाकाव्य और इतिहास-पुराण रचे, परन्तु उनका मूलरूप आज उपलब्ध नहीं है। तो वे प्राग्वाल्मीकि या प्राक्पाराशर्य काव्य सर्वथा ही लुप्त हो गये? नहीं ऐसा नहीं है। उन प्राचीन काव्यों का रूपान्तर पर्याप्त रूप से पञ्चाशदधिक पुराणों और महाभारत (हरिवंश सहित) में मिलता है। उन प्राचीन काव्यों के मूलरूप में लुप्त होने का एक प्रधान कारण यह भी था कि उनका सार महाभारत और पुराणों में सम्मिलित कर दिया गया। महाभारत का रामोपाख्यान इसका प्रमाण है। यह रामोपाख्यान वाल्मीकीय रामायण के मूल पाठ का सार है, इसी प्रकार ययात्युपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान, नलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान, इन्द्रोपाख्यान आदि के सम्बन्ध में समझना चाहिये। इसी प्रकार बहुत से महाकाव्यों के सार पुराणों और हरिवंशपुराण में सम्मिलित कर दिये गये। रामायण और महाभारत से पूर्व के प्राचीनकाव्यों की यह सामग्री साठ लाख श्लोकों में थी—

नाम ही 'कवि' पड़ गया और उनके पुत्र को 'उशना काव्य' कहा जाने लगा। 'उशना काव्य' महाभारतकाल में सबसे बड़े कवि माने जाते थे—

कवीनामुशना कविः (गीता 10/36)

उशना कवि वाल्मीकि से सात सहस्र वर्ष पूर्व देवासुर युग में हुये थे।

(1) येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च।
महात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यता शौचमार्जवम्।
विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणैः कविसत्तमैः॥
(1/241-42)

षष्टि शतसहस्राणि चकारान्यां च संहिताम् ।[1]

महाभारत काल में सौति आदि ने इस साठ लाख श्लोकों को एक लाख श्लोक महाभारत और चार लाख श्लोक पुराणों के रूप में संक्षिप्त कर दिया ।[1]

उपर्युक्त साठ लाख श्लोक पाराशर्य व्यास की रचना नहीं थे। बल्कि 28 व्यासों की सम्मिलित[2] रचनायें थीं ।

अतः ऐसा होने पर महाभारतकाल से पूर्व के सभी श्रेष्ठ या साधारण काव्य अश्वघोष से पूर्व, सम्भवतः महाभारतकाल के आसपास ही लुप्त हो गये थे। अपने गुणवैशिष्ट्य के कारण महाभारतकालपूर्व का एकमात्र काव्य रामायण स्वतन्त्ररूप से अवशिष्ट रहा, अतः उसको 'आदि काव्य' कहे जाने का एक कारण यह भी था कि उससे पूर्व का कोई काव्य अति प्राचीनकाल में भी प्राप्य नहीं था, अतः अश्वघोष ने लिखा—

वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं,
जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः ।[3]

"आदि पद्य वाल्मीकि ने रचा, जिसको उनके पूर्वज महर्षि च्यवन नहीं रच सके ।"

महाकवि कालिदास ने यह तो नहीं लिखा कि वाल्मीकि ने ही आदिपद्य की रचना—"श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।"[4] कुछ लोग इसका यह भाव समझते हैं कि कालिदास का यह आशय था कि वाल्मीकि ने ही आदिपद्य रचा । पूरे प्रकरण को देखने पर अश्वघोष का भी यह भाव नहीं है । अश्वघोष के पूरे प्रकरण को पढ़ने से यही भाव निकलता है कि कुछ महापुरुषों के पूर्वज वे कार्य नहीं कर सके जो उनके वंशजों ने किये । शुक्र, बृहस्पति, सारस्वत, व्यास, वाल्मीकि, आत्रेय, विश्वामित्र, सगर, जनक और कृष्ण के उदाहरण से

---

(1) महाभारत (1/1/105),

(2) एकं शत सहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम् । (महा० 1/1/107)
ब्रह्माण्डञ्च चतुर्लक्षं पुराणत्वेन पठ्यते ।
तदेव व्यस्य गदितमष्टादशधा पृथक् ।।

(3) बुद्धचरित (1/43);

(4) रघुवंश (14/70)

यही बात सिद्ध की गई है ।[1] वाल्मीकीय रामायण के केवल एक पाठ के एक श्लोक में इसे 'आदिकाव्य' कहा गया है—

आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।[2]

यह श्लोकपाठ बहुत उत्तरकाल का है क्योंकि इसी सर्ग में रामायण को 'पुरातन इतिहास' कहा गया है—

पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ।[3]

वाल्मीकि अपने ग्रन्थ को 'पुरातन' नहीं कहते, यह श्लोक उस समय जोड़ा गया जबकि रामायण अतिप्राचीन इतिहास बन गया था ।

रामायण प्राचीनकाल में आदिकाव्य नहीं माना जाता था, यह शंका केवल हमारी ही नहीं है । अष्टाध्यायी के प्रसिद्ध व्याख्याकार जयादित्य ने काशिका (2।4।21) में वाल्मीकि श्लोक के प्रत्युदाहरण देकर प्रदर्शित किया है कि रामायण 'आदिकाव्य' नहीं था । अत: जयादित्य और वामन के समय तक रामायण को आदिकाव्य मानने की प्रवृत्ति नहीं थी । ध्वन्यालोककार ने ही सर्वप्रथम वाल्मीकि को आदि कवि कहा है—

काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे: पुरा ।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ: शोक: श्लोकत्वमागत: ।।[4]

यह ध्वन्यालोक कालिदास से पश्चात् और आनन्दवर्धन से पूर्व की कृति है ।

अत: अनेक कारणों से प्राचीनकाल में यह धारणा बन चुकी थी कि 'रामायण आदिकाव्य' है । प्रथम कारण यह था कि इससे पूर्व का कोई लौकिक संस्कृत काव्य प्राप्य नहीं था, द्वितीय, कारुणिक मुनि वाल्मीकि द्वारा क्रौञ्चवध देख कर श्लोकरूपी वाक्य की रचना—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा: ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी: काममोहितम् ।।
शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गव: ।
पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वित: ।।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ।[5]

(1) द्र०, बु० च० सर्ग 1 ।
(2) युद्धकाण्ड (128/170) ।
(3) युद्धकाण्ड (128/117) ।
(4) ध्वन्यालोक (1/5) । (2) रामायण (1/2/15,17,18) ।
(5) श्लोक एवास्त्वयं बद्धोनात्र कार्या विचारणा ।

'हे निषाद ! तुम्हें अनन्तकाल तक प्रतिष्ठा नहीं मिले, क्योंकि तुमने क्रौञ्चयुगल में से एक काममोहित का वध कर डाला है।' मुनि वाल्मीकि इस वाक्य को पुनः शिष्य से बोले और कहा कि पादबद्ध, अक्षरसमस्ततन्त्रीलय-बद्ध, मुझ शोकार्त द्वारा उच्चारित वाक्य श्लोक होवे।'

अनन्तर ब्रह्मा (विद्वत्समाज) ने भी इसे श्लोक माना और सम्मति दी कि हे मुने ! आप रामचरित की रचना करें।[1]

अतः प्राचीनतम (उपलभ्य) श्रेष्ठतम और अनुपम होने के कारण रामायण को आदिकाव्य माना गया। इसके सम्बन्ध में तथाकथित ब्रह्मा की यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई है—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥[2]

रामायणविषयविस्तार—इस समय रामायण में 2400 श्लोक, 500 सर्ग और सात काण्ड हैं—चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम् ॥[3]

यह पहिले ही प्रतिपादित किया जा चुका है कि वाल्मीकि ने मूल रामायण की रचना 12000 श्लोकों में की थी और यह रचना उस समय की, जब राम ने राज्य प्राप्त कर लिया था और सम्भवतः सीतानिर्वासन हो गया था तथा लवकुश का जन्म हो चुका था। मुनि ने सर्वप्रथम लवकुश को ही रामायण का अध्ययन कराया। कुशलव के नाम से गायकों की कुशीलव संज्ञा प्रथित हुई—

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत् ॥[4]
कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
वेदोपबृंहरणार्थाय तावग्राह्यत प्रभुः ॥[5]
रामायण का नाम 'पौलस्त्यवध' या 'रावणवध' भी था।

---

(1) रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ॥ (रामायण 2/31,32)।
(2) रामायण (1/2/36),। (3) रामायण (1/4/2)।
(4) वही (1/4/1)। (5) वही (1/4/5,6)।

रामायण में सभी सात छन्दः, सभी नौ रस सभी अलङ्कारादि गुण हैं। इसका प्रधान रस करुणरस ही है[1] जैसा कि आनन्दवर्धनाचार्यादि ने माना है—'रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूचितः' (ध्वन्यालोक 4।5)। ध्वन्यमान रस ही काव्य का प्राण है। वाग्वैदग्ध्य का प्राधान्य ही रस या ध्वनि कही जाती है, अतः ध्वनिकार ने निम्नश्लोक 'अत्यन्ततिरस्कृत-वाच्यध्वनि' के उदाहरण में दिया है—

रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारारुणमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥[2]

रामायण के आदर्शपात्र और काव्यसौन्दर्य

रामायण एक सर्वोत्तम काव्य के साथ-साथ एक अनुपम इतिहास भी है। इसमें चित्रित पात्रों (राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान) के चरित्र अन्यत्र दुर्लभ किंवा अलभ्य ही हैं। इस महाकाव्य में राजा, प्रजा, पिता, पुत्र, माता, पत्नी, पति, सेवक आदि का एक आदर्शस्वरूप ज्ञात होता है।

वाल्मीकीय रामायण का आरम्भ ही आदर्शचरित्र के वर्णन से होता है, जबकि वाल्मीकि मुनि देवर्षि नारद से पूछते हैं—'हे मुने ! इस समय संसार में ऐसा कौन महापुरुष है, जो सच्चरित हो, जो सर्वाधिक बलवान् हो, सर्वप्राणियों के हित में लगा रहता हो।' नारद ने प्रत्युत्तर दिया—'हे मुने ! इस समय राम नाम के महापुरुष ऐसे हैं, जो चरित्रवान्, नीतिमान्, विद्वान् एवं महान् बलवान् हैं। उनके क्रुद्ध होने पर देवता भी उनसे डरते हैं। वे सत्य बोलने में धर्मराज के समान और सुन्दरता में चन्द्रमा के समान हैं। वे बुद्धि में देवगुरु बृहस्पति के समान और बल में इन्द्र के तुल्य हैं। वे सदा प्राणियों की भलाई में लगे रहते हैं—

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥
को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः ॥
चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः।

---

(1) रसैः शृंगारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः।
वीरादिभी रसैर्युक्तैः काव्यमेतदगायताम् ॥ वही (1/1/4/9)।

(2) रामायण (3/16/13)।

विद्वान् कः कः समर्थश्च कश्चैकः प्रियदर्शनः ।।
आत्मवान् को जितक्रोधो द्युतिमान् कोऽनसूयकः ।
कस्य बिभ्यति देवाश्च जातरोषस्य संयुगे ।।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो श्रुतिमान् धृतिमान् वशी ।।
बुद्धिमान् नीतिमान् वाग्मी श्रीमाञ्छत्रुनिबर्हणः ।
धर्मज्ञः सत्यसंधश्च प्रजानां हिते रतः ।।
यशस्वी ज्ञानसम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान् ।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः ।।
कालाग्निसदृशः क्रोधे क्षमया पृथिवीसमः ।
धनदेन समस्त्यागे सत्ये धर्म इवापरः ।।

(रामायण, प्रथमसर्ग)

कैकयी तक राम को अत्यन्त धार्मिक और गुणवान् समझती थी—

धर्मज्ञो गुणावान् दान्तः कृतज्ञः सत्यवाञ्छुचिः ।
रामो राजसुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति ।।

(रा० 2/8/14)

कैकयी कुब्जा मन्थरा से कहती है—'हे कुब्जे ! राम धर्मज्ञ, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवान् और पवित्र हैं । वे राजा के ज्येष्ठपुत्र होने के कारण यौवराज्यपद के अधिकारी हैं ।'

कुछ क्षण पश्चात् कैकेयी के विचार राम के प्रति बदल गये, परन्तु राम माता कैकयी का पूर्ववत् सम्मान करते रहे—

यस्या मदभिषेकार्थे मानसं परितप्यति ।
माता नः सा यथा न स्यात् सविशंका तथा कुरु ।।

"हे लक्ष्मण ! मेरे राज्यभिषेक के कारण जिसके चित्त में सन्ताप हो रहा है, उस हमारी माता कैकेयी को मेरे प्रति कोई शंका न हो, वही कार्य करो ।" वनवास का समाचार सुनकर राम के मुख (आकृति) पर कोई विकार प्रकट नहीं हुआ—

'नालक्षयत रामस्य कंचिदाकारमानने ।' (रा० 2/19/36)

राम ने पितृभक्ति का आदर्श उपस्थित किया, यह तो जगजाहिर ही है, वे कहते हैं—

> अहं हि वचनाद् राज्ञः पतेयमपि पावके ।
> भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे ॥
> नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम ।[1]

'मैं अपने पिता की आज्ञा से अग्नि में कूद सकता हूं, तीक्ष्ण विष का भक्षण कर सकता हूं और समुद्र में गिर सकता हूँ । मुझ में पिता के वचन का अतिक्रमण करने की शक्ति नहीं है । राम का भ्रातृप्रेम, एकपत्नीव्रत, शरणागतरक्षा, प्रतिज्ञापालन, मित्रहित, कृतज्ञताज्ञापन, प्रजारञ्जकता आदि गुण उनको मर्यादापुरुषोत्तम बनाते हैं। उनकी शरणागत के प्रति प्रतिज्ञा थी—

> सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
> अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥[2]

'जो व्यक्ति एक बार भी 'मैं आपका हूं ।' ऐसा कहता है शरण चाहता है, मैं उसे सर्वभूतों से निर्भय कर देता हूँ । यह मेरा व्रत है ।'

राम की भाँति सीता भी उनके सदृश ही आदर्श और गौरवमयी पत्नी थीं, उन्होंने वनगामी राम का अनुसरण करते हुये महान् कष्ट उठाये, यह प्रायः सर्वविदित ही है । वह कहती हैं—

> सुखं वने विवत्स्यामि यथैव भवने पितुः ।
> शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी ॥
> (रा० 2।27।12,13)

"हे राम ! मैं आपकी सेवा करती हुई सदा, नियमित और ब्रह्मचारिणी रहकर वन में पितृभवन के समान सुख से रहूंगी ।'

राम के बहुत समझाने और निवारण करने पर सीता क्रुद्ध होकर राम से कहती हैं—

> यत् परित्यक्तकामस्त्वं मामनन्यपरायणाम् ।
> सावित्रीमिव मां विद्धि त्वमात्मवर्तिनीम् ॥

---

(1) रामायण (2/18/28, 2/21/30) ।
(2) रा० (6 18/33) ।

स्वयं तु भार्यां कौमारीं चिरमध्युषितां सतीम् ।
शैलूष इव मां राम परेभ्यो दातुमिच्छसि ।।[1]

'हे राम ! आप मुझ अनन्यपरायण को छोड़ना चाहते हो। तो आप मुझे सावित्री के समान पतिव्रता और पतिगामिनी समझें। आप कौमारा-वस्था में बनाई गई, पर्याप्त समय से साथ रहने वाली मुझ धर्मपत्नी को नट कञ्जर की भाँति स्वयं दूसरों को समर्पित करना चाहते हैं।" घोर संकट और कष्ट में पड़ी हुई सीता अपने उद्धार के लिये परपुरुष परमभक्त हनुमान् तक का स्पर्श नहीं करतीं—

भर्त्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्पृष्टं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ।।
(रा० 5/37/62)

"वानरोत्तम हनुमान् ! मैं पतिभक्ति को ध्यान में रखती हुई अपनी स्वेच्छा से पुरुष का शरीरस्पर्श भी नहीं कर सकती।"

सीता की अग्निपरीक्षा के अनन्तर अग्निदेव राम से कहते हैं—

एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ।
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।।[2]

'हे राम ! वह आपकी वैदेही सीता है जिसमें कोई पाप नहीं है। इसने मनः वचः और कर्म तथा चक्षु से कोई भी पाप नहीं किया है।'

भरत की राज्यपद के लिये अनासक्ति और लक्ष्मण की भ्रातृसेवा एवं हनुमान् की स्वामिभक्ति— ये तीनों ही संसार के सर्वोच्च आदर्शचरित्र थे। भरत तो राम की पादुकाओं की राम के समान पूजा करते थे।[3]

काव्यसौन्दर्य— रामायण रस, अलंकार, चमत्कार, गुणत्रय (प्रसादादि) ध्वनि आदि का अक्षयस्रोत है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों एवं प्रकृति का मनोहारी वर्णन उपलब्ध होता है। ललितकाव्य की दृष्टि से भी रामायण सर्वोत्तम रचना है। कुछ श्रेष्ठ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

---

(1) रा० (2/30/6,8)।

(2) रा० (6/118/5)।

(3) एतद्राज्यं मम भ्रात्रा दत्तं सन्यासमुत्तमम् ।
योगक्षेमवहे चेमे पादुके हेमभूषिते ।। (रा० 2/115/1)

रामायण का प्रधानरस करुणरस है[1], अन्य रस गौण हैं। अरण्यकाण्ड और युद्धकाण्ड में वीररस का बाहुल्य है। रामायण में राम को प्रधानतः 'महावीर' के रूप में चित्रित किया गया है और हनुमान् का 'महावीरत्व' तो जगत्प्रसिद्ध ही है। अन्य रसों की भी रामायण में कोई न्यूनता नहीं है।

करुण रस के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। कैकयी से रामवनवास सम्बन्धी वरयाचन के अनन्तर राजा दशरथ पश्चाताप करते हुये विलाप करते हैं—

कृपणं बत वैदेही श्रोष्यति द्वयमप्रियम्।
मां च पञ्चत्वमापन्नं रामं च वनमाश्रितम्॥
नहि राममहं दृष्ट्वा प्रवसन्तं महावने।
चिरं जीवितमाशासे रुदन्तीं चापि मैथिलीम्॥

(2/12/72-74)

"निश्चय ही वैदेही दो करुण बातों को सुनेगी—मेरी मृत्यु और राम का वनवास। मैं राम के वन प्रवास और रोती हुई सीता को देखकर अब देर तक जीवित नहीं रह सकूंगा।"

सीता-हरण के पश्चात् राम का करुणविलाप पशुपक्षियों और वनस्पति को भी कातर कर देता है—

त्वमशोकस्य शाखाभिः पुष्पप्रियतरा प्रिये।
प्रावृणोषि शरीरं मे मम शोकविवर्धनी। (2/62/3)

"तुम अशोक की शाखाओं से हे प्रिये! पुष्प से भी अधिक प्रिय मेरे शरीर को आलिङ्गन या आवृत करती हो। इससे मेरा शोक बढ़ता है।

आदित्य भो लोककृताकृतज्ञ लोकस्य सत्यानृतकर्मसाक्षिन्।
मम प्रिया सा क्व गता हृता वा शंसस्व मे शोकहतस्य सर्वम्॥

(2-63-16)

---

(1) (क) तच्चादिकवेर्वाल्मीके निहतसहचरकातरकौञ्च्याक्रन्दजनितशोक एव श्लोकतया परिणतः शोको हि करुणस्थायिभावः।' (ध्वन्यालोक 115)।

(ख) रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविना सूचित : शोकः श्लोकत्वमागतः' इत्येवंवादिना। निर्व्यूढ़श्च स एव सीतात्यन्तवियोग. पर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।' (ध्वन्यालोक 4-5)

"हे सूर्य आप संसार में कृत और अकृत कर्म के ज्ञाता हो। सत्य और असत्य कर्म के साक्षी हो। मेरी प्रिया वह कहाँ गई, अथवा क्या हरी गयी। यह मुझ शोकपीड़ित को सब कुछ बताओ।"

वीररस का परिपाक महर्षि वाल्मीकि ने कुम्भकर्ण के अप्रतिम वर्णन में दिखाया है। कुम्भकर्ण ने जागने पर और युद्ध में जो पराक्रम दिखाया वह अतुलनीय है। कोई भी अकेला महावीर या अन्य वीर कुम्भकर्ण का सामना नहीं कर सका। राम, लक्ष्मण और सभी वानरयूथपति मिलकर ही उसको अत्यन्त कठिनाई से मार सके—

रूपमुत्तिष्ठतस्तस्य कुम्भकर्णस्य तद् बभौ।
युगान्ते सर्वभूतानि कालस्येव दिधक्षतः।
बोधनाद् विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत्।
अद्य राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम्।
दारयिष्ये महेन्द्रं वा शीतयिष्ये तथा जलम्॥
स यूपाक्षवचः श्रुत्वा भ्रातुर्युधि पराभवम्।
कुम्भकर्णो विवृताक्षो यूपाक्षमिदमब्रवीत्॥
सर्वमद्यैव यूपाक्ष हरिसैन्यं सलक्ष्मणम्।
राघवं च रणे जित्वा ततो द्रक्ष्यामि रावणम्॥[1]

'जागकर उठते हुये कुम्भकर्ण का रूप इस प्रकार चमका जैसे युगान्त (प्रलय) में सब प्राणियों को जलाने वाले अग्नि का हो जाता है। जगाने पर विस्मित वह राक्षसों से बोला—आज मैं राक्षस राज रावण का भय दूर कर दूंगा। मैं महेन्द्रपर्वत को फोड़ दूंगा, आग को ठण्डी कर दूंगा। वह यूपाक्ष से रावण की पराजय सुनकर बोला "हे यूपाक्ष! आज मैं समस्त वानरसेना को राम लक्ष्मण सहित जीत कर ही रावण के दर्शन करूँगा।"

कुम्भकर्ण रावण से कहता है—

न मे प्रतिमुखः कश्चित् स्थातुं शक्तो जिजीविषुः।
नैव शक्त्या न गदया नासिना निशितैः शरैः॥
हस्ताभ्यामेव संरभ्य हनिष्यामि सवज्रिणम्॥
यदि मे मुष्टिवेगं स राघवोऽद्य सहिष्यति।
ततः पास्यन्ति बाणौघा रुधिरं राघवस्य मे।

'मेरे सम्मुख कोई भी जिजीविषु नहीं ठहर सकता। मैं बिना शक्ति, गदा, असि (तलवार) या बाण के केवल हाथों से ही क्रुद्ध हो कर

(1) रामायण 6।60।60,66,69,79) (2) वही (6।63।46-48)

बज्रबाहु इन्द्र को मार सकता हूं। यदि आज राम मेरे एक घूंसे को सहन कर लेंगे, तभी उनके बाण मेरा खून पी सकेंगे। "

प्रकृति वर्णन—रामायण में अलङ्कृत भाषा में प्रकृतिवर्णन अत्यन्त मनोहारि है—

श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम्।
पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण।
पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः।
निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः।
हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसम्भवम्।
पुष्यमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः॥[1]

"श्यामा, कमलनयनी, मृदुभाषिणी सीता निश्चय ही वसन्त आने पर प्राण त्याग देगी। पद्मकोशपत्रों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये सीता के नेत्रकोश के सदृश हैं। पद्मकेसर से मिश्रित और वृक्षों से निकला मनोहर वायु सीता के निःश्वास के समान बहता है। हिमान्त (हेमन्त) में हे लक्ष्मण। वृक्षों से पुष्प निकल रहे हैं जैसे वसन्तसंघर्ष से ये खिले हैं।"

मारुत का यह वर्णन द्रष्टव्य है—

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडन्निव समन्ततः।
विक्षिपन् विविधाःशाखा नगानांकुसुमोत्कचाः।
मारुतश्चलितस्थानैः षट्पदैरनुगीयते।
मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तयन्निव पादपान्।
शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीत इव चानिलः॥
(रा० 4/1/13/15)

"यह वायु पतित, पतमान और पादप पर लटके हुये पुष्पों से मानों नाचता या खेलता हुआ, वृक्षों की शाखाओं को कम्पायमान करता हुआ उड्डीयमान भ्रमरों से अपना गायन करा रहा है। मत्त कोकिलध्वनि से मानो वृक्षों को नचाता हुआ वायु पर्वतकन्दरा से निकल कर मानो गाना गा रहा है।"

1. रामा० (4 । 1 । 50, 71, 72, 71),

ध्वन्यालोककार ने रामायण को ध्वनिकाव्य का सर्वोत्तम उदाहरण माना है और सोदाहरण ऐसा सिद्ध किया है।[1] ध्वनि ही काव्य का प्राण है।

उपजीव्य महाकाव्य—स्वयं रामायण में इसको अपर काव्यों का आधार बताया है—

> आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना सम्प्रकीर्तितम्।
> परं कवीनामाधरं समाप्तं च यथाक्रमम्।। (1।4।26)

"यह आख्यान आश्चर्यजनक वाल्मीकि मुनि ने रचा है जो दूसरों कवियों का परमाधार है, इसको उन्होंने यथाक्रम समाप्त किया।"

भले ही रामायण आदिकाव्य हो या न हो यह उत्तरवर्ती कवियों के लिये एक आदर्श, अनुपम और काव्यों को सर्वोत्तम कोश था। वाल्मीकि से व्यास तक आज न तो किसी कवि का नाम ज्ञात है न कोई काव्य, परन्तु व्यास ने महाकवि वाल्मीकि का महाभारत में पर्याप्त अनुकरण किया है। विद्वानों ने सुन्दरकाण्ड के अनेक श्लोकों से नलोपाख्यान के श्लोकों से साम्य दिखाया है। वनपर्व के रामोपाख्यान आदि की समानता रामायण से सिद्ध है ही।

भारतोत्तरकालीन भास, कालिदास, अश्वघोष, कुमारदास आदि शतशः ही नहीं सहस्रशः कवियों के लिये रामायण उपजीव्य महाकाव्य था। कुछ प्रसिद्ध कवियों की सूची द्रष्टव्य जिन्होंने रामायण के आधार पर अपने काव्य और नाटक रचे—

संस्कृतकवि	रचना	संस्कृतेतरकवि	रचना
भास—	प्रतिमा नाटक, अभिषेक नाटक	कम्बन	कम्बन रामायण (तमिल)
कालिदास—	रघुवंश		कृत्तिवास रामायण
प्रवरसेन—	सेतुबन्ध		(वङ्गभाषा)
कुमारदास—	जानकीहरण	तुलसीदास	रामचरित मानस
भट्टि—	रावणवध		(हिन्दी)
भवभूति -	महावीरचरित, उत्तररामचरित	इनके अतिरिक्त अनेक रामायण संस्कृत और देशी भाषाओं में प्रसिद्ध है।	
मुरारि—	अनर्घराघव	भारत से बाहर जावा सुमात्रा बालि	

1. रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुषारावृतमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।।
(रा० 3। 16। 13)

क्षेमेन्द्र—	रामायणमञ्जरी	अनेक देशों में रामायण का प्रचार था और अब भी है।
धनंजय—	राघवपाण्डवीय	
यशोवर्मा—	रामाभ्युदय	
हरिदत्तसूरि—	राघवनैषधीय	

रामायण के आधार पर महाभारतकाल में नाटक खेले जाते थे, इसका उल्लेख हरिवंशपुराण में हुआ है—

रामायणंमहाकाव्यमुद्दिश्यनाटकं कृतम् ।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥
(हरिवंशपुराण 2।93।6)

तृतीय अध्याय

महाभारत

(शतसाहस्त्रीसंहिता) इतिहासपुराणकाव्य

परमर्षि व्यासकृत शतसाहस्त्रीसंहिता (महाभारत)पुरातन इतिहास का अक्षयस्रोत एवं विश्वकोष है। विष्णुगुप्त कौटिल्य ने इतिहास का जो लक्षण बताया है कि पुराण, इतिवृत, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थ-शास्त्र मिलकर इतिहास कहलाते हैं,[1] पूर्णतः महाभारत पर घटित होता है। कभी इस देश में महाभारतसदृश अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ थे। व्यास और उनके शिष्यों को उन दिव्य इतिहासों का पूर्णज्ञान था तथा महाभारत में इन पुरातन इतिहास ग्रन्थों का पूर्ण उपयोग किया गया है। व्यासजी ने उन दिव्य इतिहासग्रन्थों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

येषां दिव्यानि कर्माणि विक्रमस्त्याग एव च।
महात्म्यमपि चास्तिक्यं सत्यता शौचमार्जवम्।
विद्वभ्दिः कथ्यते लोके पुराणे कविसत्तमैः।

(आदिपर्व 1।181)

उन कविसत्तमों—उशना, वाल्मीकि आदि का वर्णन प्रथम अध्याय में किया जा चुका है। महाभारत में जो लम्बे-लम्बे आख्यान और इतिहास लिखे हुये मिलते हैं वे व्यासजी ने अपनी कल्पना से नहीं बल्कि प्राचीन रामायण-सदृश इतिहासग्रन्थों के आधार पर लिखे थे, इन्हीं इतिहास-पुराणों का वैदिक-ग्रन्थों में पंचमवेद—'इतिहासपुराण' के नाम से बहुशः उल्लेख मिलता है। वे इतिहासपुराण उस समय भी पुस्तकाकार में उपलब्ध थे, केवल कल्पनालोक में नहीं थे, जैसा कि विन्टरनित्स उन्हें ऋषियों की कल्पनामात्र में मानता है जब वेद पुस्तकरूप में थे तो उस समय इतिहासपुराण पुस्तकरूप में क्यों नहीं हो सकते, अतः यह बुद्धिगम्य तथ्य है कि वेदों की भाँति इतिहासपुराण भी पुस्तकरूपमें सदा से रहे हैं।

---

(1) "पुराणम्-इतिवृत्तम, आख्यायिका उदाहरणं धर्मशास्त्रम् अर्थशास्त्रं चेति इतिहासः।" (अर्थशास्त्र अध्याय 5)

केवल महाभारत ग्रन्थ ही इस समय सच्चा इतिहासपुराण और पंचमवेद है, जैसा कि छान्दोग्योपनिषदादि में पंचमवेद का उल्लेख मिलता है। स्वयं महाभारत में उसको इतिहास, पुराण और पंचमवेद कहा है—

"वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान्।"

(महा 1।63।87)

'पंचमवेद महाभारतसहित चारों वेदों को व्यास जी ने अपने शिष्यों का पढ़ाया।'

'काष्ण वेदमिमं विद्वान् श्रावयित्वार्थमश्नुते।'

'इस 'कार्ष्णवेद' (कृष्णाद्वैपायनप्रोक्त)—पंचमवेद को सुनाकर विद्वान् परमार्थ को प्राप्त करता है।'

अतः महाभारत का पंचमवेदत्व सिद्ध है। पुनः महाभारत को स्थान-स्थान पर पुराण भी कहा गया है—

द्वैपायनेन यत् प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा

(आदि 1।17)

धन्यं यशस्यमामुष्यं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना।

और यह इतिहास तो है ही—

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।

(उद्योगपर्व 136।18)

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् संप्रकाशितम्।

(आदिपर्व)

महाभारत शब्द की व्युत्पत्ति—महर्षि पाणिनि ने 'महाभारत' शब्द की वैयाकरणिक व्युत्पत्ति सिद्ध की है[1]—इसके अनुसार भारत शब्द में महान् शब्द लगाने पर समास शब्द बनता है—महाभारत टीकाकारों ने इसका अर्थ किया है—'भारता योद्धारो यस्मिन् युद्धे तद् भारतम्' जिस युद्ध को भारत-वंशी योद्धा लड़े हों वह 'भारत' कहलाया। क्योंकि यह भारतों का महान्

(1) महान्व्रीहि-अपराण्हगृष्टि, इष्वासजाबाल-भारभारतहैलहिल रौरवप्रवृद्धेषु (अष्टाध्यायी 6।2।38)

युद्ध था—इसलिए यह 'महाभारत कहलाया। यह तो महाभारत शब्द की एक शाब्दिक व्युत्पत्ति हुई। स्वयं महाभारत अनुक्रमणिका अध्याय में महाभारत की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी हुई है—

चतुर्भ्यः सरहस्येभ्यो वेदेभ्यो ह्यधिकं यदा।
तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणो यतोऽधिकम्।
महत्त्वाच्च भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते।

(1।1।272-274)

"क्योंकि वह महत्व में और भार में यह उपनिषदों सहित चारों वेदों से अधिक है, इसलिए लोक में इसे महाभारत कहते हैं। महानता और भार अधिक होने से इसे महाभारत कहते हैं, जो इसकी इस निरुक्ति को जानता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है।"

जय, भारत और महाभारत—ग्रन्थ के तीन संस्करण—

महर्षि व्यास ने महाभारत का प्रथम नाम 'जय इतिहास' रखा था—

'जयोनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।

(उद्योग 0 136।18

जयनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।

(स्वर्गारोहेणपर्व 5।50)

व्यासजी ने महाभारत की रचना सदा परिश्रम करके तीन वर्षों में की—

त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम्॥

(आदिपर्व 56।32)

महाभारत के अनुसार स्वयं व्यासजी ने ग्रन्थ के दो संस्करण किये प्रथम संस्करण में उपाख्यानों सहित एक लाख श्लोक थे, इसलिए इसको 'शतसाहस्रीसंहिता' कहते हैं। बिना उपाख्यानों के 24000 श्लोकों की दूसरी संहिता बनाई जिसको केवल 'भारतासंहिता कहा गया।

इदं शतसहस्रं तुं श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम्।
उपाख्यानैर्विना तस्माद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।

(1।1।101-102)

आश्वलायनमुनि और उनके गुरुकुलपति शौनक भारतयुद्ध से लगभग 200 वर्ष पश्चात् हुये। ये शौनक वे ही हैं, जिनके दीर्घसत्र में उग्रश्रवासौति ने महाभारत का प्रवचन किया था। शौनक ने अपने गृह्यसूत्र में लिखा है—

'सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायन-पैल-सूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्याः।' (स्मृतिचन्द्रिका पृ० 519 पर उद्धृत)

आश्वलायन गृह्यसूत्र में—

सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैल-सूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्या तृप्यन्तु। (पृष्ठ 145) ये सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैलमुनि सूत्रग्रन्थ भाष्य, महाभारत भारत के आचार्य थे। स्पष्ट है अपने गुरु से चारों वेदाचार्यों ने भारतसंहिता और महाभारतसंहिता दोनों का ही अध्ययन किया था। यदि व्यासशिष्यों के समय महाभारत (शतसाहस्रीसंहिता) नहीं होती तो वे महाभारतचार्य कैसे कहला सकते थे। शौनक और आश्वलायन भी व्यास के प्रशिष्य ही थे। भला वे सत्य से क्यों अपरिचित होते। शौनक ऋषि के वाक्यों के सम्मुख कीथ या विण्टरनित्स का क्या मूल्य है यह विज्ञ स्वयं ही सोच सकते हैं।

इस महाभारत में वैशम्पायन के 'चारकश्लोक' और उग्रश्रवासौति के उपोद्घात जुड़कर ही वर्तमानमहाभारत का रूप बना, इसलिए महाभारत में दो मङ्गलाचरण मिलते हैं—सौतिकृत मङ्गलाचरण उत्तरकालीन है—

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।

"नारायण और नर को नमस्कार करके पुनः देवीसरस्वती और व्यास को नमस्कार करके जय इतिहास का पाठ करना चाहिये।"

आगे इसी प्रथमाध्याय में कृष्णद्वैपायनकृत प्राचीनमंगलाचरण मिलता है—

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्।
मंगल्यं मंगलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम्।

वेदव्यासमंगलाचरण में प्रायः सभी शब्दों में वैदिकशब्दों की झलक है—पुरुष, ईशान, पुरुहूत, पुरुष्टुत, विष्णु हृषीकेश—इत्यादि सभी पद

ईश्वर के लिए वेद में आये हैं। अतः इस मंगलाचरण की प्राचीनता स्वतः सिद्ध है।

ऋषि कृष्णद्वैपायन ने संक्षेप (भारत) और विस्तार (महाभारत)—दोनों प्रकार से ही इतिहास का निर्माण किया—

विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्।

"ऋषि ने संक्षेप और विस्तार-दोनों ही प्रकार इस ज्ञान को कहा है, क्योंकि लोक में मनीषीगण को समास और व्यास (विस्तृत) प्रवचन दोनों ही इष्ट हैं।

प्राचीनकाल में भी महाभारत का प्रारम्भ तीनप्रकार से माना जाता था—

मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथा परे।
तथोपरिचराद्यन्ये विप्राः सम्यगधीयते।

"कुछ विद्वान्, नारायणं नमस्कृत्य' से महाभारत का प्रारम्भ करते हैं, कुछ लोग आस्तीकपर्व से और कुछ विद्वान् उपरिचराख्यान से महाभारत का प्रारम्भ मानते हैं।"

ऋषि कृष्णद्वैपायनव्यास ने महाभारत की रचना उस समय की, जब धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर (और सम्भवतः पाण्डवों का भी) का देहान्त हो गया था, उसके शीघ्र पश्चात् ही ऋषि ने ग्रन्था रचा—

उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्।
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः।

(1।194)

यदि व्यासजी ने महाभारत की रचना युधिष्ठिर के राज्यकाल में ही की तो स्वर्गरोहणपर्व पाण्डवों की मृत्यु के पश्चात् ही महाभारत में जोड़ा होगा—व्यास ने या वैशम्पायन ने। उक्तप्रमाण से तो यही सिद्ध होता है कि महाभारत की रचना युधिष्ठिर के राज्यकाल में ही हुई।

महाभारत में 8800 श्लोक ऐसे कूटश्लोक बताये जाते हैं जिनका अर्थ भेदन करना अत्यन्त दुष्कर है—

अष्टौ श्लोक सहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा।

"8800 श्लोकों के अर्थ को मैं (व्यास) जानता हूँ, शुक जानते हैं, संजय जानते हैं या नहीं यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता :"

व्यासजी ने महाभारत का अध्ययन अपने पाँच शिष्यों को कराया—उन शिष्यों ने महाभारत की पृथक्-पृथक् संहितायें प्रकाशित कीं—

वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान् ।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम् ।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च ।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ।

(1।1790)

वैशंपायन का महाभारत—वर्तमान काल में महाभारत का जो संस्करण मिलता है, वह वैशम्पायनकृत है । प्राचीनकाल में महाभारतान्तर्गत वैशम्पा-के श्लोकों को 'चारकश्लोक' कहा जाता था, क्योंकि वैशम्पायन की एक चरकशाखा प्रसिद्ध थी ।

वैशम्पायन के दो प्रधानशिष्य हुए तित्तिरि और याज्ञवल्क्य । इनमें तित्तिरिमुनि ने तैत्तिरीयसंहिता (कृष्णयजुर्वेद) और याज्ञवल्क्य ने वाजस-नेयिसंहिता (शुक्लयजुर्वेद) का प्रवचन किया ।

वैशम्पायन ने व्यास की आज्ञा से जनमेजय के नागयज्ञ में महाभारत इतिहास सुनाया था—

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृष्णद्वैपायनस्तदा ।
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके ।।

(1।60।21)

"जनमेजय की बात सुनकर श्री कृष्णद्वैपायनव्यास ने पास ही बैठे हुये अपने शिष्य वैशम्पायन को महाभारत सुनाने का आदेश दिया ।"

जनमेजय ने महाभारत का श्रवण पाण्डवों की मृत्यु से लगभग 80 वर्ष पश्चात् किया था अर्थात् 3000 वि० पू० ।

उग्रश्रवा द्वारा महाभारतप्रवचन—पुनः तृतीयवार अधिसीमकृष्ण के राज्य काल में (2750 वि० पू०) पाण्डवों से लगभग ढ़ाई सौ वर्ष पश्चात् उग्र-श्रवासौति, जो व्यासजी के प्रशिष्य और व्यासशिष्य रोमहर्षण के पुत्र थे, ने महाभारत का प्रवचन शौनक के दीर्घसत्र में किया, इस दीर्घसत्र के विषय में पुराणप्रसङ्ग में पहिले ही विस्तारपूर्वक लिख चुके हैं, अतः उसकी पुनरावृत्ति निरर्थक है ।

'ऊपर भारतीय दृष्टिकोण से महाभारत के रचियता, उसके रचना-काल आदि के विषय में संक्षेप में लिखा गया है, अब इस सम्बन्ध में पाश्चात्य लेखकों के मनघढ़न्त ऊँटपटाँग, काल्पनिक एवं षड्यन्त्रपूर्ण मतों का भी दिग्दर्शन करना चाहिये, जिससे कि पाठकों की भ्रान्ति दूर होने में सहायता मिले।

पाश्चात्य लेखकों में प्रत्येक लेखक का मत प्रत्येक भारतीय ग्रन्थ के विषय में पृथक्-पृथक् हैं, स्पष्ट है ये किसी प्रमाण को न मानकर अपने मन की इच्छा को ही प्रमाण मानते थे। लेकिन भारत की बिडम्बना है कि भारतीय शिक्षणसंस्थाओं में यहाँ पर प्राध्यापक, अध्यापक एवं विद्यार्थी आँख मूँदकर पाश्चात्य लेखों पर ब्रह्मवाक्य की भाँति विश्वास करते हैं। अंग्रेजों ने मैकाले की योजना को कार्यान्वित करने के दृष्टि से भारतीय साहित्य और संस्कृति के विषय में कूटनीतिपूर्वक असत्य का प्रचार किया और भारतीय ऋषि-मुनियों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न की, लेकिन भारतीय राजनीतिज्ञ तो क्या भारतीय मनीषी भी अभी तक स्वतन्त्रता के 33 वर्ष पश्चात् भी पाश्चात्य कूटनीति को नहीं समझ सके हैं और उन्हीं के मतों को प्रमाणिक मानते हैं, केवल अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित श्रीराधाकृष्णन् जैसे भारतीय ही नहीं वासुदेवशरण अग्रवाल श्रीबलदेव उपाध्याय, मंगलदेवशास्त्री जैसे भारतीय संस्कृतज्ञ विद्वान्, भी पाश्चात्य कुशिक्षा से आक्रान्त हैं। पण्डित गिरधरशर्मा चतुर्वेदी और पण्डित भगवद्दत्त जैसे दो-चार मनीषी ही पाश्चात्यषड्यन्त्रों को समझ सके और समुचितरूप में संस्कृतग्रन्थों का तात्पर्य समझ सके।

स्थूलरूप में पाश्चात्यलेखकों के महाभारतसम्बन्धी विचारों के कुछ उद्धरण विन्टरनित्सकृत 'भारतीयसाहित्य' (Indian Literature) प्रथम भाग, द्वितीयखण्ड से उद्धृत किये जा रहे हैं—उसके अनुसार—"हम लोगों के लिये जो विश्वासी हिन्दुओं की दृष्टि से नहीं अपितु आलोचक इतिहासकार की दृष्टि में महाभारत को देखते हैं, यह—कलाकृति के अलावा बाकी सब कुछ है। जो कुछ भी हो इसे किसी एक लेखक या चतुर संग्रहकर्त्ता की कृति नहीं मान सकते। ...केवल कवित्वशून्य धर्माचार्य, टीकाकार की फूहड़ प्रतिलिपिकार ही परस्पर असम्बद्ध अंशों को जो विभिन्न शताब्दियों से आये हैं, एक अनगढ़ संग्रह इकट्ठे करने में सफल हुये हैं।" (पृष्ठ 14 रामचन्द्र पाण्डेयकृत अनुवाद)

भाषा, शैली और छन्द के बारे में महाभारत के अनेक भागों में एकरूपता बिल्कुल नहीं दिखाई देती।" (पृष्ठ 135)

विन्टरनित्स ने हाल्टज्मैन नाम के एक पाश्चात्य लेखक का मत लिखा है—"पुराणों जैसा इसका (महाभारत) दूसरा पुनः संस्करण 900-1100 ई० सन् के बीच में हुआ होगा। इसके पश्चात् कुछ शताब्दियों के अनन्तर इस ग्रन्थ को पूरा करके एक निश्चित रूप दे दिया गया होगा।" (पृष्ठ 137)

"महाभारत का वर्तमान रूप चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के पहिले तथा चौथी शताब्दी ईसा सम्बत् के पश्चात् नहीं हो सकता।" (पृष्ठ 140)

विन्टरनित्सगुट के पाश्चात्य लेखक बुद्ध और विम्बसार से पूर्व के किसी भारतीय पुरुष को ऐतिहासिक नहीं मानते। ये पाश्चात्य लेखक समझते थे कि भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में उनकी ही इच्छा सर्वोपर है, उनकी दृष्टि में वेद, पुराण, रामायण और महाभारत के कथनों का कोई मूल्य नहीं—विन्टरनीत्स लिखता है—(मानो बिम्बसार अजातशत्रु से पूर्व का इतिहास उसकी आँखों के सम्मुख प्रत्यक्ष था)—"अन्त में फिर कहना आवश्यक है, न केवल महाभारत में वर्णित घटनायें ही बल्कि राजाओं, राजकुलों में अगणित नाम चाहे इनमें कुछ घटनायें और नाम कितने ही ऐतिहासिक क्यों न मालूम पड़े—सही माने में भारतीय इतिहास नहीं हैं। यह सही है कि भारतीय लोग युधिष्ठिर के राज्यकाल तथा महाभारत के महायुद्ध का काल कलियुग के प्रारम्भ में अर्थात् 3102 ई० पू० मानते हैं। पर कलियुग के आरम्भ का समय भारतीय ज्योतिषियों की गलतगणना हर आधारित है और इस समय का कौरव-पाण्डवों के साथ सम्बन्ध बिल्कुल यादृच्छिक है। भारत का राजनैतिक इतिहास मगध के शिशुनाग राजाओं—बिम्बसार और अजातशत्रु से शुरू होता है।" (पृष्ठ 148)

विन्टरनीत्स का पूर्वाग्रह (हठ) और पक्षपात तथा घोर भ्रम स्पष्ट है। विन्टरनीत्स के मत में विम्बसार अजातशत्रु से पूर्व भारतवर्ष में कोई ऋषि मुनि या महापुरुष (राजा आदि) हुये ही नहीं।

पाश्चात्यों के अनुयायी श्री राधाकृष्णन् लिखते हैं—'We do no know the name of the author of the Gita (or Mahabharat) (Essays on Gita P. 14) श्रीराधाकृष्णन् को गीता या महाभारत के लेखक का पता ही नहीं है।

श्री बाणभट्ट से (7 वीं शती) से पूर्व शौनक ऋषि तक सभी कालों में महाभारत को व्यास की कृति और एक लाख श्लोक का ग्रन्थ मानते रहे हैं। प्राचीनकाल में सभी भारतीय विद्वान् मूर्ख या प्रमत्त नहीं थे जो सब एक जैसी बात लिखते रहे।

महाकवि बाणभट्ट ने अपने ग्रन्थों में महाभारत का उल्लेख किया है और उसका कर्त्ता व्यास को बताया है—

नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्।
(हर्षचरित श्लोक 4)

बाणभट्ट के समय में महाभारत के आख्यान उसी प्रकार थे, जैसे आज हैं—

'आस्तीकतनुरिव आनन्दितभुजङ्गलोका।' (पृष्ठ 182)

'पाण्डवसव्यासाची चीनविषयमतिक्रम्य राजसूयसम्पदे क्रुध्यद्गन्धर्वधनुष्कोटिटङ्कारकूजितकुंजंहेमकूटपर्वतंपराजैष्ट।" (हर्षचरित पृष्ठ 758)

काशिकाकार जयादित्य (550 वि० स०) महाभारत का उल्लेख करता है तथा उसने अनेक उल्लेख उद्धृत किये हैं।

उससे पूर्व होने वाले श्रीशंकराचार्य ने महाभारत से अपने वेदान्तभाष्य में अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं सावित्र्युपाख्यान का एक श्लोक उद्धृत किया है—

"अथ सत्यवतः कायात्···निश्चकर्ष यमो बलात्।"
(ब्रह्मसूत्रभाष्य 1।3।24)

अतः शंकराचार्य के समय महाभारत में सावित्र्युपाख्यान जैसे सभी उपाख्यान विद्यमान थे।

कट्टर नास्तिक बौद्धविद्वान् धर्मकीर्ति भारत की रचना में अपने समय के पुरुषों को अशक्त मानता है—'भारतादिष्वपि इदानीन्तनानां अशक्तावपि कस्यचित् शक्तिसिद्धेः (प्रमाणवार्तिक पृष्ठ 447)।

धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध नास्तिक को भी महाभारत और व्यास के अस्तित्व पर अश्रद्धा नहीं थी। ऐसी स्थिति में पाश्चात्यों के प्रलापका क्या मूल्य है।

गुप्तकालीन महाराज सर्वनाथ (संवत् 191) के ताम्रपात्र में व्यासकृत शतसाहस्री महाभारतसंहिता का उल्लेखहै—'उक्तं च महाभारतशतसाहस्र्यां

संहितायां परमर्षिणा पाराशरसुतेन वेदव्यासेन।" (गुप्तशिलालेख भाग 3 पृष्ठ 134)।

पाश्चात्य लेखक और उनके अनुयायी भारतीयलेखक यहाँ आकर रुक जाते हैं। उनके अनुसार उक्त शिलालेख पंचमीशती का है, अतः उनके अनुसार महाभारत का वर्तमान रूप (एक लाख श्लोक) गुप्तकाल में बना।

विक्रम की प्रथमशती का प्रसिद्ध मीमांसाभाष्यकार शबरस्वामी महाभारत के प्रथम अध्याय (अनुक्रमणी) से श्लोक उद्धृत करता है—

'विस्तीर्यैतन्महत् ज्ञानमृषिः संक्षिप्याब्रवीत्।' (सूत्र 8।1।2)

उसी काल का एक अन्य विद्वान् अनुक्रमणी से श्लोक उद्धृत करता है—

विभेत्यल्पश्रुताद्——।; (वररुचि निरुक्तसमुच्चय)

विक्रमपूर्व के बौद्धग्रन्थ लङ्कावतारसूत्र में व्यास और भारत का स्पष्ट उल्लेख है—

"मयि निर्वृते वर्षशते व्यासो वै भारतस्तथा।

(श्लोक 785)

पैशाची बृहत्कथा के लेखक गुणाढ्य ने वर्तमान महाभारत का अध्ययन किया था यह तथ्य बृहत्कथा के पाठों से सिद्ध है। गुणाढ्य का समय सातवाहन युग में (500 वि० पू०) के लगभग था।

इसी समय के नाटक मृच्छकटिक में शूद्रक महाभारत के पात्रों का उल्लेख करता है।

गार्गीसंहिता का अंश युगपुराण, जो आन्ध्रसातवाहनयुग की रचना है, उसमें महाभारत की घटना का इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

वधार्थं द्वापरस्यान्ते समुत्पत्स्यति केशवः।
चतुर्बाहुर्महावीर्यः शंखचक्रगदाधरः।
वासुदेव इति ख्यातः पीताम्बरधरो बली।
पाण्डवानां परो राजा भविष्यति युधिष्ठिरः।
वायव्यो भीमसेनश्च फाल्गुनश्च महातपाः।
नकुलः सहदेवश्च भ्रातरावश्विनात्मजौ।
अङ्गराजस्तथा कर्णः साश्वत्थामा च दुर्जयः।
द्रुपदस्य सुता कृष्णा देहान्तरगता मही॥

(युगपु० 58-70 पंक्ति)

युगपुराण में श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार मानना, पीताम्बर कहना, भीमसेनादि को देवताओं का अंशावतार मानना, द्रौपदी को पृथ्वी का अवतार बताना- सिद्ध करता है कि पुराणलेखक के सम्मुख वर्तमान महाभारत का ही पाठ था।

पतंजलि ने कंसवध नाटक का उल्लेख किया है, इससे सिद्ध होता है कि शुङ्गकाल में न केवल महाभारत बल्कि हरिवंशपुराण भी विद्यमान था।

आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य ने महाभारत के अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं और दुर्योधन का नामतः उल्लेख किया है—'दुर्योधनो राज्यादशं च (अप्रयच्छन्)······(ननाश)।' (अर्थशास्त्र 1।6)

कौटिल्य को पाश्चात्य लेखकों की अपेक्षा भारतीय इतिहास का अधिक ज्ञान था। वह दुर्योधन या कृष्णद्वैपायन की ऐतिहासिकता पर सन्देह नहीं करता। कौटिल्य के प्रामाण्य के सम्मुख आधुनिक इतिहासकारों की कल्पनाओं का कोई मूल्य नहीं है।

कौटिल्य से पूर्व महाकवि भास ने महाभारत और हरिवंशपुराण से अपने नाटकों के कथानक लिये थे।

आत्रेयपुनर्वसु, जो महाभारतकालीन व्यक्ति थे, उनके द्वारा रचित चरकसंहिता में विष्णुसहस्रनाम का उल्लेख है, यह विष्णुसहस्रनाम अनुशासन-पर्व का एक अध्याय है।

वायुपुराण, मत्स्यपुराणादि की रचना अधिसीमकृष्ण पाण्डव के राज्य-काल में (2750 वि०पू०) शौनक के दीर्घसत्र में हुई। उनमें सर्वत्र महाभारत को एक लाख श्लोक का बताया गया है—

भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्।
लक्षेणैकेन यत्प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम्॥

(मत्स्यपु० 53।70)

प्रकाशं जनितोलोके महाभारतचन्द्रमाः।

(वायुपु० 1।45)

शौनक ने स्वयं अपने ग्रन्थ बृहद्देवता में महाभारत के अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं, उदाहरणार्थ—

'प्राजापत्यो मरीचिर्हि मारीचः कश्यपो मुनिः।'

(बृहद्देवता 5।43)

इत्यादि श्लोक शान्तिपर्व अध्याय 207 में मिलते हैं। श्रीमद्भगवद्-गीता का एक श्लोक बृहद्देवता में मिलता है—

'सहस्रयुगपर्यन्तम् अहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।'

(8।17 गीता)

(बृहद्देवता 8।98)

शौनककृत बृहद्देवता में महाभारत के श्लोक होना स्वभाविक था, क्योंकि शौनक सर्वशास्त्रविशारद तथा महाभारत के प्रधान श्रोता थे। अतः शौनक ने वर्तमान महाभारत का ही पाठ श्रवण किया था, यह बृहद्देवता से भी सिद्ध है।

शौनक मुनि से पूर्व आचार्य बौधायन महाभारत और श्रीमद्भगवद्-गीता हो अपने धर्मसूत्र में श्लोक उद्धृत करता है—'तथा आह च भगवान्'

पत्रंपुष्पंफलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

आचार्य बौधायन ने महाभारत आदिपर्व से एक गाथा भी उद्धृत की है—'अथाप्यत्रोशनश्च वृषपर्वणश्च दुहित्रोस्संवादे गाथामुदाहरन्तिस्तुवतो दुहिता त्वं वै याचतः प्रतिगृह्णतः अथाहंस्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः।

(बौधायनधर्मसूत्र 2।2।27)

बौधायन के उद्धरणों से सिद्ध है कि उस समय (2800 वि० पू०) महाभारत अपने वर्तमानरूप में ही था।

उपरिउद्धृत अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध है कि पाश्चात्यो की काल्पनिक धारणायें, भाषाविज्ञान इत्यादि निरर्थक एवं निराधार हैं। महाभारत की भाषा शैली और छन्दों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और इसका एक ही रचयिता था कृष्णद्वैपायनव्यास जिन्होंने इस ग्रन्थ की रचना 3102 ई० पू० की थी, इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं है।

महाभारत का पर्वविभाग दो प्रकार से है—

'एतद् पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।
'यथावद् सूतपुत्रेण लौमहर्षिणा ततः।
उक्तानि नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु॥

(1।2।83-84)

श्रीव्यासजी ने इस प्रकार पूरे सौपर्वों की रचना की थी, पुनः सतपुत्र उग्रश्रवा ने उन सौपर्वों को व्यवस्थित करके अठारहपर्वों में महाभारत का प्रवचन किया।

सौ पर्वों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) अनुक्रमणी पर्व (2) पर्वसंग्रह पर्व
(3) पौष्यपर्व (4) पौलोम पर्व
(5) आस्तीकपर्व (6) अंशावतरणपर्व
(7) सम्भवपर्व (8) जतुगृहदाहपर्व
(9) हिडिम्बवधपर्व (10) वकवधपर्व
(11) चैत्ररथपर्व (12) स्वयंवरपर्व
(13) वैवाहिकपर्व (14) विदुरागमनपर्व
(15) अर्जुनवनवासपर्व (16) सुभद्राहरणपर्व
(17) हरणहारिकापर्व (18) खाण्डवदाहपर्व
(19) सभापर्व (20) मन्त्रपर्व
(21) जरासन्धवधपर्व (22) दिग्विजयपर्व
(23) राजसूयपर्व (24) अर्घाभिहरणपर्व
(25) शिशुपालवधपर्व (26) द्यूतपर्व
(27) अनुद्यूतपर्व (28) वनयात्रापर्व
(29) किर्मीरवधपर्व (30) अर्जुनाभिगमनपर्व
(31) कैरातपर्व (32) इन्द्रलोकाभिगमनपर्व
(33) नलोपाख्यानपर्व (34) तीर्थयात्रापर्व
(35) जटासुरवधपर्व (36) यक्ष-युद्धपर्व
(37) निवातकवचयुद्धपर्व (38) आजगरपर्व
(39) मार्कण्डेयसमास्यापर्व (40) द्रौपदी-सत्यभामासंवादपर्व
(41) घोपयात्रापर्व (42) द्रौपदीहरणपर्व
(43) जयद्रथविमोक्षणपर्व (44) रामोपाख्यानपर्व
(45) कुण्डलाहरणपर्व (46) आरणेयपर्व
(47) विराटपर्व (48) कीचकवधपर्व
(49) गोग्रहणपर्व (50) उत्तराविवाहपर्व
(51) उद्योगपर्व (52) संजययानपर्व
(53) प्रजागरपर्व (54) सनत्सुजातपर्व
(55) यानसंधिपर्व (56) भगवद्यानपर्व
(57) कर्णविवादपर्व (58) निर्याणपर्व
(59) रथातिरथसंख्यापर्व (60) उलूकदूतागमनपर्व
(61) अम्बोपाख्यानपर्व (62) भीष्माभिषेचनपर्व
(63) जम्बूखण्डपर्व (64) भूमिपर्व

(65) भगवद्गीतापर्व (66) भीष्मवधपर्व
(67) द्रोणाभिषेकपर्व (68) संशप्तकवधपर्व
(69) अभिमन्युवधपर्व (70) प्रतिज्ञापर्व
(71) जयद्रथवधपर्व (72) घटोत्कचवधपर्व
(73) द्रोणवधपर्व (74) नारायणमोक्षपर्व
(75) कर्णपर्व (76) शल्यपर्व
(77) ह्रदप्रवेपर्व (78) गदायुद्धपर्व
(79) सारस्वतपर्व (80) सौप्तिकपर्व
(81) ऐषीकपर्व (82) जलप्रदानिकपर्व
(83) स्त्रीविलापपर्व (84) श्राद्धपर्व
(85) चार्वाकपर्व (86) अभिषेकपर्व
(87) गृहविभागपर्व (88) शान्तिपर्व
(89) राजधर्मानुशासनपर्व (90) आपद्धर्मपर्व
(91) मोक्षपर्व (92) शुकप्रश्नाभिगमनपर्व
(93) ब्रह्मप्रश्नपर्व (94) आश्रमपर्व
(95) अनुशासनपर्व (96) आश्वमेधिकपर्व
(97) स्वर्गारोहणपर्व (98) हरिवंशपर्व
(99) विष्णुपर्व (100) भविष्यपर्व

अष्टादशपर्वविभाग में प्रत्येकपर्व में अध्यायसंख्या और श्लोकसंख्या इस प्रकार है—

(1) आदिपर्व	—	227 अध्याय	8884 श्लोक
(2) सभापर्व	—	78 अध्याय	2511 श्लोक
(3) वनपर्व	—	269 अध्याय	11664 श्लोक
(4) विराटपर्व	—	67 अध्याय	2050 श्लोक
(5) उद्योगपर्व	—	186 अध्याय	6698 श्लोक
(6) भीष्मपर्व	—	117 अध्याय	5884 श्लोक
(7) द्रोणपर्व	—	170 अध्याय	8909 श्लोक
(8) कर्णपर्व	—	69 अध्याय	4964 श्लोक
(9) शल्यपर्व	—	59 अध्याय	3220 श्लोक
(10) सौप्तिकपर्व	—	18 अध्याय	870 श्लोक
(11) स्त्रीपर्व	—	27 अध्याय	775 श्लोक
(12) शान्तिपर्व	—	339 अध्याय	14732 श्लोक

(13) अनुशासनपर्व —	146 अध्याय	8000 श्लोक
(14) आश्वमेधिकपर्व—	103 अध्याय	3320 श्लोक
(15) आश्रमवासिकपर्व—	42 अध्याय	1506 श्लोक
(16) मौसलपर्व —	8 अध्याय	320 श्लोक
(17) महाप्रस्थानिकपर्व—	3 अध्याय	123 श्लोक
(18) स्वर्गारोहणपर्व —	5 अध्याय	209 श्लोक

महाभारत का महात्म्य—विश्वसाहित्य एवं भारतीवाङ्मय में महाभारत ग्रन्थ का अतुलनीय स्थान है। आकार की दृष्टि से तो यह प्राचीन विश्व का बृहत्तम ग्रन्थ है ही, ज्ञानविज्ञान में भी इससे बढ़कर अन्य ग्रन्थ नहीं है। इसमें वेदरहस्य, वेदाङ्ग, उपनिषदों का प्रतिपादन है, इतिहासपुराण भूत, भविष्य वर्तमान का वर्णन है, धर्मों और आश्रमों का वर्णन है न्याय, शिक्षा, चिकित्सा तीर्थ, भूगोल, युद्धविज्ञान, लोकव्यवहार, धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, और मोक्षशास्त्र—सभी विषयों का विस्तार से वर्णन है।

श्रीमद्भगवद्गीता इसी महाभारत का एक अंशमात्र है, जिसके विषय में कहा है—

"गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।' पुनः महाभारत के विषय में इसी ग्रन्थ में कहा गया है—

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥

(1। 62। 53)

"हे जनमेजय! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के विषय में जो बातें इस ग्रन्थ में हैं, वही अन्यत्र भी हैं, जो इसमें नहीं, वह कहीं भी नहीं हैं।"

महाभारत परिशिष्ट-खिल
(हरिवंशपुराण)

यह महान् ग्रन्थ महाभारत का खिल या परिशिष्ट है, इस पुराण में प्रमुखरूप से कृष्णचरित का विस्तार से वर्णन है। कृष्ण का बालचरित प्राचीनतम और मूलरूप में इसी हरिवंशपुराण में मिलता है। यहां पर इस का संक्षेप में परिचय लिखते हैं।

परिमाण—इस समय हरिवंश में षोडशसहस्र से अधिक श्लोक मिलते हैं। परन्तु मूल हरिवंश में महाभारत पर्वसंग्रह (आदिपर्व द्वितीय अध्याय) के अनुसार कुल बारह हजार श्लोक थे—

दशश्लोकसहस्राणि विंशच्छ्लोकशतानि च।
खिलेषु हरिवंशे च संख्यातानि महर्षिणा॥ (श्लोक 380)

स्पष्ट है इसमें चार सहस्र से अधिक श्लोक प्रक्षिप्त है, ग्रन्थ के गहन अध्ययन से इन प्रक्षिप्तांशों का पता चलाया जा सकता है, इसका कुछ सङ्केत आगे करेंगे। इस समय इसके तीन पर्वों की अध्याय संख्या इस प्रकार है—

(1) हरिवंशपर्व	55 अध्याय।
(2) विष्णुपर्व—	128 अध्याय।
(3) भविष्यपर्व—	135 अध्याय।
कुल=	318 अध्याय।

श्लोक संख्या सोलह हजार से अधिक है।

रचियता—इसके प्रवक्ता वैशम्पायन और सौति (उग्रश्रवा) है, जिस प्रकार ये ही महाभारत के प्रवचनकर्त्ता एवं रचियता थे, उसी प्रकार हरिवंश के मूल रचियता चरकाचार्य वैशम्पायन और उग्रश्रवा सौति थे। कालान्तर में इसमें क्षेपक एवं पाठान्तर भी जुड़ते गये और मूल-ग्रन्थ का कलेवर बढ़ता गया।

हरिवंश के विष्णुपर्व की सामग्री प्राचीनतम एवं मौलिक है जो छन्द, भाषा एवं विषय के तारतम्य से भी सिद्ध है।

प्रथमपर्व हरिवंश में स्वायम्भुव मनु से यादववंश तक के वंशों और वंशानुचारतों का विस्तार से कथन है, जो कि प्राचीनतमपुराणों (वायु पुराणादि) के आधार पर ही है, अतः सामग्री भी प्रायेण प्राचीन है, अन्तिम भविष्यपर्व की सामग्री अपेक्षाकृत अवरकाल की है, परन्तु इसमें भी प्राचीन सामग्री का अभाव नहीं, बाहुल्य ही है, दो-तीन अतरङ्ग प्रमाणों से यह तथ्य पुष्ट होता है।

प्रथम प्रमाण यह है कि भविष्यपर्व के प्रथम अध्याय में ही पाण्डव-वंशीय जनमेजय की वंशपरम्परा का वर्णन अन्य पुराणोल्लिखित वंशपरम्परा से पर्याप्त भिन्न एवं प्राचीन है। हरिवंश का वंशकथन प्राचीनतर है।

हरिवंश के पाठ के अनुसार नाम।	अन्य पुराणानुसार
(1) जनमेजय	(1) जनमेजय
(2) चन्द्रापीड और सूर्यापीड	(2) शतानीक
(3) सत्यकर्ण	(3) सहस्रानीक
(4) श्वेतकर्ण	(4) अश्वमेधदत्त
(5) अजपार्श्व	(5) अधिसीमकृष्ण

हरिवंश के नाम निश्चय ही प्राचीन हैं : भविष्यपर्व के इसी प्रथम अध्याय में अजपार्श्व (जिसका ऊपर नाम अधिसीमकृष्ण था) की जन्म कथा संक्षिप्त रूप से वर्णित है। अजपार्श्व का पालन वन में वेमकमुनि ने किया था। श्रविष्ठा के दो पुत्र— पिप्पलाद और कौशिक—अजपार्श्व के सहपाठी थे और उसके मन्त्री बने। पिप्पलाद ने प्रश्नोपनिषद् का प्रवचन किया और कौशिक ने कौशिकसूत्र बनाये जिनका उल्लेख अष्टाध्यायी में है। इसी राजा के राज्यकाल में अन्तिम शौनक ने दीर्घसत्र किया और ऋक्प्रातिशाख्य, बृहद्देवता जैसे ग्रन्थों की रचना की अतः हरिवंशपुराण का मूलवाचन अजपार्श्व और शौनक से पूर्वकाल में (कलिसंवत् 200 या 2900 वि० पू०) हुआ।

हरिवंशपुराण और उसके भविष्यपर्व के प्राचीन होने का एक और प्रमाण उल्लेख्य है। विष्णुपुराण एवं भागवतादिपुराणों में विष्णु के नृसिंहावतार और प्रह्लाद की भक्ति का जिस प्रकार से वर्णन है, वैसा हरिवंश में उल्लेख नहीं है। उनके विपरीत हरिवंश में नृसिंह न तो खम्भा फोड़कर निकलते हैं और प्रह्लाद के भक्तरूप का सङ्केत तक नहीं है। हरिवंश के अनुसार नृसिंह हिमालय के पार्श्व से हिरण्यकशिपु की सभा में आये और उनका दैत्य सेना-पतियों से घोर एवं निरन्तर युद्ध हुआ। प्रह्लाद यहां पर न तो नृसिंह की स्तुति करता है, न अन्य कोई चेष्टा, नमस्कार तक नहीं किया, भक्ति की तो बात ही क्या, सम्भवतः प्रह्लाद ने नृसिंह के प्रति तटस्थभाव दिखाया। प्रह्लाद को अपने दिव्यज्ञान से नरसिंह का आभास मात्र हुआ—

हिरण्यकशिपोः पुत्र प्रह्लादो नाम वीर्यमान्।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद् देवमागतम्॥ (हरि० 3।43।5)

यहां प्रह्लाद केवल नारसिंह वपुः की विचित्रता का अपने पिता से वर्णन करता है, यहाँ भक्तिभाव का रंचमात्र भी प्रदर्शन नहीं है, यहां पर वह

स्तुति के स्थान पर नीचे मुंह करके बैठ जाता है—

दध्यौ च दैत्येश्वरपुत्र उग्रं महामतिः
किञ्चिदधोमुखः प्राक् । (हरि० 3।43 17)

हरिवंश के उपर्युक्त प्रकाश में प्रह्लाद का भक्तचरित्र आकाशपुष्प और कल्पना की वस्तु ही सिद्ध होती है। कृष्णावतार (द्वापरान्त) से पूर्व ऐतिहासिक दृष्टि से वैष्णवभक्ति का अभाव ही सिद्ध होता है, यथा वाल्मीकीय रामायण में रामभक्ति का पूर्णतः अभाव है।

हरिवंश की प्राचीनता के अन्य इसी प्रकार अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं, केवल उक्त दो उदाहरणों से ही हमारे मत की पुष्टि होती है, अतः विषय विस्तार अनावश्यक है।

क्षेपक—ग्रन्थ का कौन-सा भाग क्षेपक है, इसका निर्णय करना सरल कार्य नहीं, परन्तु सूक्ष्मअध्येता अनेक स्थलों की प्रक्षिप्तता को शीघ्र पहिचान सकता है, यथा व्रज में प्राकृतिक भेड़ियों की वृद्धि को कृष्ण के शरीर से उत्पन्न कहना, निश्चय ही प्रक्षिप्तांश है—

घोराश्चिन्तयतस्तस्य स्वतनूरुहजास्तथा।
विनिष्पेतुर्भयंकराः सर्वतः शतशो वृकाः ।। (हरि० 2।8।31)

हरिवंश, विष्णुपर्व के 34 से 36 अध्याय निश्चितरूप से क्षेपक हैं क्योंकि वही कथानक शब्दान्तर के साथ 37वें अध्याय में कथित है और 34वें तथा 37वें अध्यायों के प्रारम्भ में ये तीन श्लोक समान रूप से मिलते हैं—

स कृष्णस्तत्र सहितो रौहिणेयेन संगतः।
मथुरां यादवाकीर्णां पुरीं तां सुखमावसत् ।।

प्राप्तयौवनदेहस्तु युक्तो राजश्रिया विभुः।
चचार मथुरां प्रीतः स वनाकरभूषणाम् ।।

कस्यचित्त्वथ कालस्य राजा राजगृहेश्वरः।
शुश्राव निहतं कंसं दुहितृभ्यां महीपतिः ।।

कोई मूललेखक इसकी दुरुक्ति नहीं कर सकता।

इसी प्रकार अन्य विधियों से क्षेपकों का आभास हो जाता है।

हरिवंश में वर्णित विषयों की सूची—हरिवंश का ऐतिहासिक महत्व रामायण और महाभारत से कम नहीं है। इसमें इतिहाससामग्री किसी भी

अन्य पुराण की अपेक्षा अधिक ही है, विशेषतः कृष्णसम्बन्धी विपुल इतिहासों का मूल स्रोत यही है। इसके अतिरिक्त दार्शनिक, धार्मिक आदि विषयों का इसमें पर्याप्त वर्णन है, इसमें उत्तमकोटि का काव्य भी है, निदर्शन आगे उद्धृत किया जायेगा।

हरिवंश के अन्त में (हरि० 3।134) इसके कथानकों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार दी गई है—हरिवंश का प्रारम्भ में आदिसर्ग और भूतसर्ग का कथन है, तदनन्तर निम्नलिखित कथानक हैं—मनुओं का वर्णन, वैवस्वतमनुवंशोत्पत्ति, धुन्धुमारकथा, गालवकथा, इक्ष्वाकुवंशवर्णन, श्राद्धकल्प, बुधजन्म, चन्द्रवंशवर्णन, त्रिशंकुकथा, ययातिचरित, पुरुवंश, अवतारकथन, कृष्णजन्म, व्रजगमन, शकटभंजन, पूतनावध, यमलार्जुनोद्धार, वृकसंदर्शन, वृन्दावननिवेशन वर्षावर्णन, कालियदमन, धेनुक और प्रलम्बवध, शरद्वर्णन, गिरियज्ञ, गोवर्धनधारण, गोविन्दाभिषेक, रासलीला, अरिष्टवध, अक्रूरदौत्यकर्म, धनुर्भङ्ग, कुवलयापीडवध, चाणूरान्धकवध, उग्रसेनाभिषेक, गुरुकुलवास जरासन्धाक्रमण, गोमन्तपर्वतदाह, करवीपुरगमन, शृगालवध, कालयवनवध, द्वारावतीनिर्माण रुक्मिणीहरण, बलदेवमहात्म्य, नरकवध, पारिजातहरण, वृष्णिवंश, षट्पुरध्वंस शम्बरवध, बाणयुद्ध, भविष्यकथन, दशावतारवर्णन, कैलाशयात्रा, पौण्ड्रकवध, हंसडिम्भकवध त्रिपरसंहार।

धार्मिकदृष्टि से हरिवंशपुराण का बड़ा भारी महात्म्य माना गया है, इसके श्रवण का बड़ा पुण्यफल होता है विशेषतः सन्तानकामना से श्रद्धालु इसका श्रवण करते थे, कहा गया है—

हरिवंशस्य प्रारम्भे समाप्तो चैव तैः सह।
सर्वान् कामानवाप्नोति विपाप्मा जायते नरः॥

नामकरणकारण—'हरि' कृष्ण की संज्ञा है, हरिवंशपुराण में उनके ही वंश और कृष्ण का चरित्र (वंशानुचरित) वर्णित है, अतः इसका 'हरिवंश' नाम लोक में प्रथित हुआ, इस ग्रन्थ का प्रधानविषय कृष्णचरित है ही जैसा कहा गया है—

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्।
विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा॥

(आदि० 2।82)

विषयनिदर्शन—पूजनीयासंज्ञक चिड़िया ने शक्रनीति का जो वर्णन किया है, वह देखने में साधारण होते हुये भी आज भी महत्वपूर्ण है—

'गाथाश्चाप्युशनोगीता इमाः शृणु मयेरिताः।
कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम्।
कुपुत्रं च कुभार्यां च दूरतः परिवर्जयेत्।
कुमित्रे सौहृदं नास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः।
कुतः पिण्डः कुपुत्रे वै नास्ति सत्यं कुराजनि॥
(हरि० 1।20।119-120)

बृहदुपाख्यान—महाभारत इस समय भी संसार का विशालतम ग्रन्थ है। यह रामायण से लगभग चौगुना बड़ा है। प्राचीन प्राग्भारत काल में सम्पूर्ण इतिहासपुराणकाव्य साठ लाख श्लोकों में थे। जिसका सार व्यासजी ने एक लाख श्लोकों में संक्षिप्त कर दिया—

षष्टि शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्।
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम्॥[1]

महाभारत को पुराण, इतिहास, काव्य, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, मोक्षशास्त्र आदि सब कुछ कहा गया है, क्योंकि इसमें इन सभी प्राचीन शास्त्रों का सार सङ्कलित किया गया था—

द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।[2]

'यह परमर्षि व्यास कृत पुराण है।' यह आख्यानों में महदुपाख्यान या वरिष्ठ उपाख्यान है—

तस्याख्यानवरिष्ठस्य विचित्रपदपर्वणः।[3]

इसमें चारों वेदों का सार है—'वेदैश्चतुर्भिः संयुक्ताम्'[4]

इस इतिहास को पूर्वकाल में कवियों ने वर्णित किया और अब भी वर्णन करते हैं और आगे भी करते रहेंगे।[5] यह संसार में महान् ज्ञानकोश या ज्ञानसागर की भाँति प्रतिष्ठित है। यह अलङ्कृत, लौकिक और वैदिक शब्दों और छन्दों से समन्वित है—

इदं तु त्रिषु लोकेषु महज्ज्ञानं प्रतिष्ठितम्।
अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः।[6]

---

(1) आदिपर्व (1।105, 107), (2) आदि० (1।17), (3) आदि (1।18),
(4) आदि (1।21),
(5) आचख्युः कवयः के चित् सम्प्रत्याचक्षेपरे। आख्यास्यन्ति तथैवान्ये इतिहासमिमं भुवि (1।1।26),
(6) आदि (1।27,28),

विषयविस्तार—महाभारत में व्यास जी पाण्डवों का इतिहास तो विस्तार से लिखा ही है, साथ ही यह ग्रन्थ समस्त श्रुतियों और शास्त्रों का सार है। इसमें वेदरहस्य, वेदाङ्ग, उपनिषद्, वेदविस्तार, इतिहासपुराण, भूत भव्य, भविष्य, विविध धर्म, चातुराश्रम्य, ज्योतिष, अध्यात्म, न्यायशिक्षा, चिकित्सा, दान, पाशुपतदर्शन, तीर्थों, युद्धविद्या आदि समस्त विषयों का विस्तार से वर्णन है।[1] सबसे बढ़कर इसमें प्राचीन उपाख्यानों और इतिहासों का सविस्तर वर्णन है।

उपजीव्यकाव्य—महाभारत, रामायण से भी बढ़कर काव्यों का उपजीव्य काव्य (मूलस्रोत) है। इसके अनेक कथानकों और उपाख्यानों के आधार पर अनेक महाकवियों ने अनेक श्रेष्ठतम काव्यों, नाटकों और गद्य काव्यों का निर्माण किया, जिनका आगे उल्लेख किया जायेगा। इसको परम श्रेष्ठकाव्य भी कहा गया है—'कृत मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।[2]

इस उत्तम काव्य या इतिहास से कवि बुद्धियाँ (प्रतिभायें) उत्पन्न होती हैं, जिस प्रकार पञ्चभूतों से लोकत्रय की उत्पत्ति—

इतिहासोत्तमादस्माज्जायन्ते कविबुद्धयः।
पञ्चभ्य इव भूतेभ्यो लोकसंविधस्त्रयः॥[3]

यह महदुपाख्यान सभी महाकवियों का उपजीव्य काव्य होगा, जिस प्रकार उदीयमान भृत्य का आश्रय अभिजात राजा आश्रय होता है—

इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भृत्यैरभिजात इवेश्वरः॥[4]

इस महाभारताख्यान के बिना कोई भी कथा संसार में नहीं है—

अनाश्रित्यैतदाख्यानं कथा भुवि न विद्यते।[5]

जो विद्वान् साङ्गोपनिषद् वेदों को जानता है परन्तु महाभारत को नहीं जानता, वह विचक्षण विद्वान् नहीं है। यह ग्रन्थ अर्थशास्त्र, धर्म शास्त्र, कामशास्त्र आदि सब कुछ है। इस काव्य को सुनकर अन्य श्रोतव्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, जिस प्रकार कोयल की ध्वनि सुनकर कौये की ध्वनि अच्छी नहीं लगती—

श्रुत्वा त्विदमुपाख्यानं श्राव्यमन्यन्न रोचते।
पुंस्कोकिलरुतं श्रुत्वा रूक्षा ध्वाङ्क्षस्य वागिव॥[6]

---

(1) आदि० (1162-69),
(2) आदि (1161), (3) आदि (21385), (4) आदि (21389),
(5) आदि (21388), (6) आदि (21384),

महाभारत न केवल प्राचीन भारतीय इतिहास का विश्वकोश है बल्कि धर्म, दर्शन, नीति, राजनीति आदि का भी विश्वकोष है। अनेक प्राचीन लुप्तशास्त्रों और काव्यों का ज्ञान केवल एकमात्र महाभारत से ही होता है, यथा कापिलसांख्यदर्शन या वैष्णवधर्म इत्यादि। इसमें केवल महाभारतकाल की भाषा का ही नहीं, बल्कि प्राचीनतम लोकभाषा का संग्रह है[1], क्योंकि इसमें अनेक प्राचीनतम इतिहासपुराणों का इस सार संक्षेप है।

भास के नाटकों के अधिकांश कथानक महाभारतग्रन्थ से ग्रहीत किये गये हैं, यथा पञ्चरात्र, दूतवाक्य, माध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार और उरुभंग नाटक। इस सम्बन्ध में महाराज समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित में लिखा है—व्यासस्य भारतमभारतया सुदर्श

कृत्वा च तत्र विविधाः स्वकथा युयोज ॥ (श्लोक 25)

"भास ने व्यास के भारत की कथा में अपनी सुन्दर कथायें जोड़कर सरलता से नाटक रचे।"

जगत का ललामभूत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल का मूल कथानक आदिपर्व के शाकुन्तलोपाख्यान से लिया गया है, इसमें भी महाकवि कालिदास ने अपनी कल्पना से काव्य में कुछ परिवर्तन किया, यह सुविज्ञ विद्वानों एवं पाठकों को ज्ञात ही है।

इनके अतिरिक्त महाकवि भारविकृत किरातार्जुनीयमहाकाव्य, भट्टनारायण कृत वेणीसंहार नाटक, श्रेष्ठ महाकवि माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य श्रीहर्षकृत नैषधचरित महाकाव्य का मूल महाभारत में ही है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक शतशः कवियों न महाभारत के आधार पर काव्य, नाटक और चम्पूकाव्य लिखे, यथा राजशेखर, वत्सराज इत्यादि। न केवल संस्कृत बल्कि देशी भाषाओं के साहित्य पर महाभारत का प्रभाव सुविदित हैं।

साहित्य या काव्य के अतिरिक्त महाभारत और तदंश गीता का प्रभाव धर्म दर्शन, राजनीति और इतिहास पर अतिरोहित नहीं है। धर्म शास्त्रों और अर्थशास्त्रों पर महाभारत का प्रभाव देखा जा सकता है कौटिल्य

---

(1) अलङ्कृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्यमानुषैः (आदि० 1।28),

अर्थशास्त्र पर महाभारत का पर्याप्त प्रभाव है। महाभारत से प्रेरणा लेकर अनेक भारतीय वीरों ने भारतराष्ट्र की रक्षा में अपने प्राण न्यौछावर कर दिये।

भारतोत्तरकालीन धर्म और दर्शन पर सर्वाधिक प्रभाव श्रीमद्भगवद्-गीता का है। वैष्णवसम्प्रदाय या धर्म का मूल गीता ही है। गीता पर जितने भाष्य और टीकायें लिखी गईं, शायद संसार के अन्य ग्रन्थ पर नहीं लिखी गईं। आद्य शंकराचार्य, रामानुज, निम्बार्क, माध्व, वल्लभाचार्य आदि के सम्प्रदायों या दर्शनों का मूल स्रोत गीता ही थी अतः अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत आदि वेदान्तदर्शन के सिद्धान्तों पर गीता का भारी प्रभाव है। आधुनिकयुग में लोकमान्यतिलक ने 'गीतारहस्य' नामक युगप्रवर्तक ग्रन्थ लिखा। अतः गीता का प्रभाव सुविदित है।

महाभारत में उत्तमकाव्य—इसको दिव्य और मानुष शब्दों से अलंकृत परमपूज्य काव्य कहा गया है, वह सत्य ही है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव शूकरः।

प्राज्ञस्तु जल्पतां पुंसां श्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।
गुणवद् वाक्यमादत्ते हंसः क्षीरमिवाम्भसः॥ (आदि 74।90-91)

शकुन्तला दुष्यन्त पर आक्षेप करती हुई कहती है—"मूर्ख पुरुष बातचीत करते हुये पुरुषों की शुभाशुभ बातों में से केवल गन्दी बातों को ही ग्रहण करता है जैसे शुकर (संसार के श्रेष्ठ भोज्यों को छोड़कर) केवल विष्ठा को ही ग्रहण करता है।

प्राज्ञ पुरुष लोगों की बातचीत में से श्रेष्ठ बातों को ग्रहण करता है जैसे हंस जल में से केवल दूध को ग्रहण करता है।" इसमें उत्तम नीति और अलंकृत शब्दों के साथ उपमादि का प्रयोग किया गया है। लक्षणग्रन्थों में यह श्लोक शृङ्गाररस के अङ्ग करुणरस का उदाहरण है—

अयं स रसनोत्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्रंसनः करः॥ (स्त्रीपर्व)

मृत भूरिश्रवा की पत्नी युद्धभूमि में भूरिश्रवा के हाथ को लेकर कहती है—'यह वही हाथ है जो कामक्रीडा के समय का काञ्चीदाम को पकड़कर खींचने में तत्पर रहता था और नाभि, ऊरु (जंघा) और पीन (मांसल=उन्नत)

स्तनों का मर्दन करता था और नीवि (नाड़े) की गाँठ झट खोल देता था।"

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में 'गृध्रगोमायुसंवाद' के कुछ श्लोक स्वतःसंभवी वस्तुरूपव्यञ्जकार्थमूलक वस्तुध्वनि के उदाहरणरूप में उद्धृत किये हैं—

अलं स्थित्वा श्मशानेऽस्मिन् गृध्रगोमायुसंकुले।

आदित्योऽयं स्थितो मूढाः स्नेहं कुरुत साम्प्रतम्। इत्यादि।

गिद्ध और गीदड़ अपने स्वार्थ के लिये जो कथन कर रहे हैं उससे ध्वनि (अर्थ) निकलती है वह स्वतःसंभवीवस्तुध्वनि है। साहित्याचार्यों ने महाभारत में शान्तरस प्रधान माना है—

"महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्यरूपच्छायान्वयिनि.........महामुनिना...... मोक्षलक्षणः पुरुषार्थः शान्तो रसश्च मुख्यतया सूचितः (ध्वन्यालोक, उद्योत 4) तथा—'प्रबन्धे यथा—महाभारते शान्तः' (साहित्यदर्पण, चतुर्थपरिच्छेद)।

गीता में काव्य—वैसे तो सम्पूर्ण महाभारत ही उत्तमकाव्य का निदर्शन है, परन्तु गीता जैसे दार्शनिकग्रन्थ में भी उत्तमकाव्य है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे, स शान्तिमाप्नोति कामकामी ॥[1]

"जिस प्रकार सर्वतः परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठित समुद्र के प्रति अनेकविध नदी जल समा जाते हैं, उसी प्रकार जिस स्थिरबुद्धि पुरुष के प्रति अनेक विध कामनायें उसके मन में ही समा जाती हैं, वह पुरुष शान्ति को प्राप्त करता है न कि कामनायुक्त पुरुष।" यह उपमा अलंकार का उत्तम उदाहरण है। साथ ही यमकादि भी प्रयुक्त हैं।

रूपकअलंकार का श्रेष्ठ उदाहरण है—

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसियस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मुलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥[2]

---

(1) गी० (2।70)
(2) गी० (15।1-2)

"ब्रह्मरूप मूल और ब्रह्माण्डरूप अध.शाखायुक्त अश्वत्थ वृक्ष अविनाशी है। उसके वेद पर्णरूप हैं और जो इसको जानता है वही वेदवेत्ता है। इस संसाररूपी अश्वत्थवृक्ष की शाखायें नीचे फैली हुई हैं। त्रिगुणरूप से विषयरूप प्रवाल (कोपलें) बढ़ती हैं, ऊपर और नीचे इसकी जड़ें सर्वत्र विस्तृत हैं। मनुष्यलोक (योनि) में कर्मरूपी बन्धन (वासनादि) है।"

उपमादि के अन्य उदाहरण ध्यातव्य हैं—

यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा, विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः।
तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥[1]

'जैसे पतंग कीट मोहवश नाश के लिये प्रज्वलित अग्नि में वेगपूर्वक प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार समस्त वीरगण नाश के लिये आपके मुख में अतिवेग से प्रवेश करना चाहते हैं।

इसी प्रकार 'सर्वतः पाणिपादं......(13।13), सर्वेन्द्रियगुणाभासं' (गी० 13।14) इत्यादि में काव्य का दर्शन किया जा सकता है। अतः श्रीमद्भगवद्गीता काव्य का भी श्रेष्ठ निदर्शन है।[2]

रामायण और महाभारत की तुलना—यहाँ पहले संकेत किया जा चुका है कि प्राचीन भारत में रामायण और महाभारत सदृश सैकड़ों इतिहासकाव्य ग्रन्थ थे, वे शतशः काव्य अनेक कारणों से लुप्त हो गये, परन्तु अपने विशिष्ट गुणों के कारण केवल ये दो ही काव्यग्रन्थ अवशिष्ट रहे। इनमें से प्रथम ग्रन्थ आदिकाव्य के नाम से प्रसिद्ध है और द्वितीय विश्वकोश रूप में प्रथित है।

प्राचीनवाङ्मयभेदलक्षण के अनुसार इतिहासकाव्य दो प्रकार का होता था, परक्रिया और पुराकल्प—इसमें एकनायक का इतिहास परक्रिया कहलाता था और बहुनायकयुक्तकाव्य पुराकल्प कहा जाता था। यथा, पूर्व का उदाहरण रामायण और द्वितीय का उदाहरण है महाभारत। यह राजशेखर[3] का

(1) गीता (11।29)
(2) महाभारत में गीता जैसे अनेक काव्य एवं ग्रन्थरत्न समाविष्ट हैं, यह तो निदर्शनमात्र है।
(3) परक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा। स्योदकनायका पूर्व द्वितीया बहुनायका। तत्र रामायणं भारतं चोदाहरणे। (काव्यमीमांसा, राजशेखर)

मत है। इससे पूर्व कुमारिल भट्ट् ने तन्त्रवार्तिक (अ. 2. पा 1, सूत्र 33) में लिखा है—"एक पुरुषकर्त्तृकम् उपाख्यानं परकृतिः। बहुकर्त्तृकं पुराकल्पः।" राजशेखर के लक्षण में नायक को प्रधान माना गया है और कुमारिलभट्ट् के लक्षण में रचयिता (कवि) को प्रधान माना है। दोनों ही दृष्टियों से रामायण एकनायक और एककर्त्तृक काव्य होने से परक्रिया है और महाभारत बहुनायका और बहुकर्त्तृक (व्यास, चरक और सौतिकृत) होने से पूराकल्प है। वायुपुराण में परक्रिया को ही परकृति कहा गया है।[1] प्राचीन काल में पुराकल्प नाम के इतिहास विपुलमात्रा में थे, इसके प्रमाण स्वयं महाभारतादि में मिलते हैं—

यथा —'अश्वमेधे महायज्ञे पुराकल्पे स्वयम्भुवा।' (रामायण 1।10।35)
'अत्र गाथा कीर्तयन्ति पुराकल्पविदो जनाः। (महा अश्व० 32।4)
'श्रूयते पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः (11 अनु० पर्व)

'पुराकल्प एतदासीत्—संस्कारोत्तरकालं ब्रह्मणा व्याकरणं स्माधीयते।[2] अतः रामायण परक्रिया या परकृति संज्ञक इतिहासकाव्य है और महाभारत पुराकल्पसंज्ञक इतिहास है। अतः प्राचीन लक्षण के अनुसार दोनों ही ग्रन्थ इतिहास हैं परन्तु एक परकृति हैं तो दूसरा पुराकल्प।

मूल में रामायण ऋक्ष वाल्मीकि व्यास की रचना है और एक हाथ की रचना मानी जाती है, परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। वाल्मीकि का मूल ग्रन्थ 12000 श्लोकों में था। इस समय रामायण में 24000 श्लोक हैं, स्पष्ट है कि 12000 श्लोक रामायण में जोड़े गये (प्रक्षिप्त) हैं और दूसरों हाथों की रचनायें हैं। ये अतिरिक्त 12000 श्लोक चोरी छिपे उत्तरकालीन अज्ञात कवियों ने जोड़े थे। परन्तु महाभारत के जय, भारत और महाभारत ये तीनों संस्करण क्रमशः पाराशर्य व्यास, चरक वैशम्पायन और उग्रश्रवा सौति ने बनाये। यह कथन महाभारत में ही अनेकत्र मिलता है, अतः महाभारत का कलेवर प्रायः एक ही काल में घोषणापूर्वक बढ़ाया गया, परन्तु रामायण का आकार सुदीर्घकाल में गुप्तरूप से बढ़ाया गया। अतः रामायण आकार में लघुतर होते हुये भी प्रक्षिप्तांशबहुल है, परन्तु महाभारत बृहदाकार होते हुये भी प्रक्षिप्तांशन्यून है। इस समय दोनों ही ग्रन्थों के पाठान्तर मिलते हैं—इनमें महाभारत के दो संस्करण प्रख्यात हैं—

---

(1) अन्यस्यान्यस्य चोक्तत्वाद् बुधैः परकृतिः स्मृता (वा० पु. 59।136)
(2) महाभाष्य, भाग 1, (2.5)

उत्तरीय और दाक्षिणात्य। समस्त पाठों से समन्वित पूना संस्करण अनुसंधान के लिये श्रेष्ठपाठ है। रामायण के प्रधान चार पाठ प्रकाशित हो चुके हैं—उदीच्य, पश्चिमोत्तरीय, बंगीय और दाक्षिणात्य। इन चारों पाठों में लगभग दस सहस्रश्लोक ही समान हैं, इनमें दाक्षिणात्य पाठ बृहत्तम और प्रक्षिप्तांशबहुल है।

दोनों ही महाकाव्यों की भाषा लौकिक संस्कृत है। उपलब्ध रामायण काव्य महाभारत की अपेक्षा अधिक अलंकृत है और इसकी भाषा भी अर्वाचीन प्रतीत होती है। इस आधार पर कुछ विद्वान् रामायण को महाभारत से उत्तरकालीन काव्य मानते हैं।[1] कुछ लोग तो रामायण को चौथी, पाँचवीं यहाँ तक कि आठवीं शती की रचना मानते हैं जैसा कि पूर्व पृष्ठों पर प्रदर्शित किया जा चुका है। इस भ्रामक प्रतीति के अनेक कारण हैं, इसका प्रमुख कारण है रामायण में अलंकृत भाषा का प्रयोग और इसमें कुछ सीमा तक सचाई है कि इसमें महाभारत की अपेक्षा उत्तरकाल में अधिक हस्तक्षेप हुआ है। सर्वाधिक हस्तक्षेप बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में हुआ है। महाभारत की उपलब्ध भाषा निश्चय ही प्राचीनतर है और कहीं कहीं तो इसमें वैदिक भाषा या तत्सदृश भाषा का प्रयोग मिलता है। इसका कारण है कि महाभारत के उपाख्यान मूल प्राचीन काव्यों के संक्षेप हैं, रामोपाख्यान रामायण का संक्षेप है, ययात्युपाख्यान, शाकुन्तलोपाख्यान सावित्र्युपाख्यान, नलोपाख्यान आदि किन्हीं प्राचीन इतिहास काव्यों के तत्सम संक्षेप हैं। ये मूलकाव्य महाभारत से सहस्रों वर्ष पूर्व रचे गये थे और कुछ तो रामायण (मूल, से भी सहस्रों वर्ष प्राचीनतर थे, यथा ययात्युपाख्यान अथवा मार्कण्डेय-सामस्यापर्व। यह मार्कण्डेयपुराण मूल में देवासुरयुग में लिखा गया था, जिसका संक्षेप सामस्यापर्व है, अतः महाभारत की भाषा उपलब्ध रामायण के उपाख्यानों की भाषा से निश्चय ही प्राचीनतर और मौलिक है। रामायणोल्लिखित विश्वामित्रकथा, गङ्गावतरण कथा, पुरुरवोपाख्यान,

1. विण्टरनित्ज ने लिखा—'In more than one respect the Ramayana, as compared with Mahabharat, indicates progress in the art of epic poetry (Ind. Ltd. Vol. I. p. 506)

"The Ramayana appears to represent a later stage of development than of the Buddhistic Pali poetry.

(तदेव पृ. 510)

रावणजन्मकथादि बहुत उत्तरकालीन हैं, भले ही ये मूल रामायण में महाभारतकाल से पूर्व जोड़ें गये हों, परन्तु अत्युत्तरकालीन हस्तक्षेप से उन्होंने अत्यर्वाचीन रूप ले लिया। वाल्मीकि की मूल रामायण (12000 श्लोक) ही महाभारत से 2400 वर्ष पूर्व रची गई थी, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि रामायण का उपलब्ध सम्पूर्ण पाठ ही इतना प्राचीन है। रामायण का लगभग आधा भाग ही इतना प्राचीन है, इसमें अर्वाचीन श्लोक भी हैं, अतः विरोधाभास स्वाभाविक और सत्य है।

रामायण और महाभारत दोनों ही ऐतिहासिक वीरकाव्य हैं। प्राचीनकाल में रामायण के गायक कुशीलव कहे जाते थे और महाभारत के गायक सूत कहे जाते थे। ये दोनों ही काव्य सूतों और कुशीलवों के जीविका या वृत्ति के साधन थे।

रामायण में धर्म, दर्शन, नीति और राजनीति के प्रसङ्ग स्वल्प एवं संक्षिप्त हैं। यह एक रमणीक महाकाव्य है। परन्तु महाभारत में धर्म, दर्शन, नीति और राजनीति के विस्तृत प्रसङ्ग हैं, यथा आदिपर्व में कणिक भारद्वाज का धृतराष्ट्र को कूटनीति का उपदेश, इसी प्रकार शान्तिपर्व में राजनीतिशास्त्र का विस्तृत वर्णन है। महाभारत में कपिलसांख्य और भागवतदर्शन का विस्तृत वर्णन है, श्रीमद्भगवद्गीता वैष्णवदर्शन और भक्ति का प्रस्थानग्रन्थरत्न महाभारत का ही अंशमात्र है। रामायण में दर्शन और राजनीति के ऐसे विस्तृत प्रसङ्ग नहीं हैं। राजनीति का यत्र तत्र संवादात्मक स्वल्प वर्णन ही अयोध्याकाण्ड और युद्धकाण्ड में मिलता है। व्यास ने वाल्मीकि का अनुगमन किया है। वाल्मीकि के अभिमत धर्मशास्त्रकारों के तुल्य भारतकाल में माने जाते थे। महाभारतद्रोणपर्व (143।67-68) में रामायण (6।81।28) का एक श्लोक धर्मप्रमाणस्वरूप उद्धृत किया गया है—अपि 'चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि। न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति...।"[1] अतः रामायण के श्लोक महाभारतकाल में आर्षवाक्य थे, जो अत्यन्त प्रामाणिक माने जाते थे। इसी प्रकार महाभारत तो धर्मशास्त्र के रूप में प्रारम्भ से ही प्रतिष्ठित है, इसको पंचमवेद माना जाता है और बौधायनादि सूत्रकारों, शंकरादि धर्माचार्यों के द्वारा आजतक प्रमाणस्वरूप गीतादि के श्लोक उद्धृत किये जाते हैं।

कुछ लोग रामायण, भारत को चारण और भाटों की मूल रचना मानते

(1) महाभारत में अनेकत्र रामरावणयुद्ध की तुलना उद्धृत की गई है—'यादृशं हि पुरावृत्तं रामरावणयोर्मृधे (द्रोणपर्व 69।28)।

हैं।[1] यह मत प्रमाणशून्य और उल्टा है। रामायण, भारत और पुराण वाल्मीकि और व्यास जैसे महर्षियों की रचनायें थीं। पहले रामायण वाल्मीकि ने रची, कुशीलवों ने उसको बहुत बाद में गाया। इसी प्रकार महाभारत और पुराण के सम्बन्ध में समझना चाहिये। अतः पाश्चात्य वाकरनागल, रैप्सन, हापकिन्स, विण्टरनित्ज आदि के मत भ्रामक एवं पूर्णतः असत्य हैं।

दोनों ही महाकाव्य अनेक उत्तरकालीन काव्यों, नाटकों, चम्पूओं और और श्रेष्ठ गद्यकाव्यों के मूलस्रोत या उपजीव्य ग्रन्थ रहे हैं, इसके उदाहरण पूर्व ही दिये जा चुके हैं। इनमें रामायण उच्चकोटि का ललित काव्य है। रामायण में ध्वनि, अलंकार, प्रकृतिचित्रण, शिल्पनैपुण्य की उत्तम योजना है।

दोनों ही ग्रन्थरत्न राष्ट्रिय महाकाव्य हैं इनमें भारतराष्ट्र की आदर्श धर्मसंस्कृति का प्रतिनिधिभूत वर्णन मिलता है। रामायण के राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं एवं अन्य पात्र, भरत, सीता, हनुमदादि भी आदर्श पात्र हैं। तद्यपि दोनों में ही युद्ध एवं स्त्रीहरण के कथानक हैं, फिर भी रामायण में ही सीताहरणप्रधान घटना है, महाभारत में युद्ध का प्रधान कारण दुर्योधन द्वारा राज्यांश न देना है। रामायण में युद्ध भारतराष्ट्र से बाहर राक्षससुन्दद्वीप में होता है और महाभारतयुद्ध भारत में ही कुरुक्षेत्र में हुआ।

रामायण के मूल पाठ में वैष्णवभक्ति का सर्वथा अभाव है, परन्तु महाभारत का अंश गीता, भागवत या वैष्णवभक्ति का उद्गम ही है। रामायण धर्मयुग (कृतयुग) या सत्ययुग का काव्य है और महाभारत कलियुग या कलहयुग का ग्रन्थ है, अतः रामराज्य का उदाहरण आज भी प्रसिद्ध है।

पाराशर्यकृष्णद्वैपायनव्यास अट्ठाईसवाँयुग (3200वि० पू०)— पाश्चात्य लेखक मैक्समूलर, मैकडानल, कीथ, हापकिन्स, विन्टरनित्स इत्यादि व्यासजी को काल्पनिक व्यक्ति समझते थे और कहते थे कि पुराणों का साक्ष्य प्रामाणिक नहीं है। कृष्णद्वैपायन पाराशर्य जो अन्तिम और अट्ठाइसवें व्यास थे, का उल्लेख गोपथब्राह्मण, तैत्तिरीयारण्यक, बृहदारण्यकोपनिषद्, बोधायनगृ-ह्य सूत्र, और आग्निवेश्यगृह्यसूत्र जैसे प्रसिद्ध वैदिकग्रन्थों में मिलता है।

(1) Their source is to be traced to the traditional recitations of bards who were neither priests nor scholars (Atlind grammar by wakeranagel, p. XIX).

तैत्तिरीयारण्यक में लिखा है—'स होवाच व्यासः पाराशर्यः (1935)। गोपथब्राह्मणमें—'एतस्माद् व्यासः पुरोवाच।'' अतः व्यास की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है।

महाभारत में लिखा है कि पाराशर्यव्यास ने एक अभूतपूर्व वाङ्मययज्ञ किया, जिसकी तुलना विश्वइतिहास में कहीं भी नहीं है। वर्तमानकाल में उपलब्ध वैदिकावाङ्मय व इतिहासपुराणवाङ्मय व्यासजी और उनकी शिष्य-परम्परा की कृपा का फल है। लिखा है—

'सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः। (शान्तिपर्व 2।1)

व्यासजी त्रिकाल में होनेवाले सभी वेदज्ञों में सवश्रेष्ठ थे। जिस प्रकार विष्णु के अवतारों में श्रीकृष्ण वासुदेव सर्वश्रेष्ठ थे, उसी प्रकार 28 व्यासों में कृष्णद्वैपायन अप्रतिम थे। इनकी महिमा अतुलनीय है।

वशिष्ठ के वंश में शक्ति पच्चीसवें व्यास थे। शक्ति के पुत्र या वंशज पराशर छब्बीसवें व्यास थे और कृष्णद्वैपायन पराशरपुत्र अट्ठाइसवें व्यास थे। दाशराज की कन्या मत्स्यगन्धा अथवा सत्यवती व्यासजी की माता थी। वास्तव में मत्स्यगन्धा राजा उपरिचरवसुचैद्य की पुत्री थी। उसका पालन दाशराज ने किया था। नाव चलाते हुये पराशरऋषि और सत्यवती का संगम हुआ जिससे यमुना के द्वीप (कालपी) में व्यास का जन्म हुआ। द्वीप में उत्पन्न होने के कारण 'द्वैपायन' कहे जाते हैं। 'कृष्णवर्ण के होने से कृष्णद्वैपायन और पराशरपुत्र होने से पाराशर्य नाम से अभिहित किये जाते हैं। जातूकर्ण्य ऋषि से कृष्णद्वैपायन ने विद्याध्ययन किया। अतः जातूकर्ण्य इनके गुरु थे। व्यासजी शीघ्र ही वेदों के महान् विद्वान् बन गये—

जातमात्रं च यं वेद उपतस्थेससंग्रहः।
धर्ममेव पुरस्कृत्य जातुकर्ण्यादिवाप तम्।
मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात्।
प्रकाशं जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः।
वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत॥

(वायुपुराण 1।43-45)

"व्यास के उत्पन्न होते ही वेद संग्रहसहित उनके पास उपस्थित हो गये। लेकिन धर्म को आगे करके व्यास ने गुरु जातूकर्ण्य से वेदों का अध्ययन किया। श्रुतिसागर को मतिरूपी मथनी से मथकर महाभारतरूपी चन्द्रमा

उन्होंने लोक में प्रकाशित किया और वेदवृक्ष भी उनका आश्रय पाकर शाखाओं वाला बन गया।"

पाराशर्यव्यास का वेदशाखाप्रवर्तन भारतयुद्ध से लगभग 150 या 200 वर्ष पूर्व, शन्तनु के राज्यकाल में सम्पन्न हो गया था। आदिपर्व (99-14-22) में इसका स्पष्ट संकेत है। वेदशाखाप्रवर्तन के पश्चात् व्यासजी ने तीन वर्षों में शतसाहस्रीसंहिता का निर्माण किया। इससे पूर्व व्यास ने एकपुराणसंहिता बनाई थी, जिसमें 4000 श्लोकमात्र थे। वेदव्यास ने यह पुराणसंहिता पंचलक्षणोंसहित वायुऋषि इत्यादि के पुरातनपुराणों और रामायणजैसे इतिहासग्रन्थों का सार संग्रहीत करके रची थी।

व्यासशिष्यपरम्परा

पाराशर्यव्यास का वाङ्मययज्ञ—श्री कृष्णद्वैपायन पाराशर्यव्यास ने राजराजेश्वर कौरव्य शन्तनु के राज्यकाल (3220 वि. पू.) में एक महान् वाङ्मययज्ञ सम्पन्न किया, जिसका उल्लेख महाभारत में इस प्रकार है—आस्तीक मुनि जनमेजय के यज्ञ में राजा की स्तुति करता हुआ उसकी प्रशंसा करता है-

कृष्णस्य यज्ञः सत्यवत्याः सुतस्य ।
स्वयं च कर्म प्रचकार यत्र ॥
तथा यज्ञोऽयं तव भारताग्र्य ।
पारिक्षित स्वस्ति नोऽस्तु प्रियेभ्यः ॥

(115517)

'सरस्वतीनन्दन श्रीव्यासजी का यज्ञ महान् था, जिसमें उन्होंने सभी कर्म स्वयं सम्पन्न किये ।" यहाँ निश्चय ही व्यासजी के वाङ्मययज्ञ का संकेत है । व्यास से तीन शताब्दी पश्चात् कुलपति शौनक का द्वादशवर्षीय दीर्घसत्र हुआ, उसी प्रकार का महान् सत्र श्रीपाराशर्यव्यास ने किया, वरन् व्यास का वाङ्मययज्ञ और भी महान् था, उसमें उन्होंने सम्पूर्ण वैदिकवाङ्मय का सम्पादन, संकलन संरक्षण एवं संस्कार किया । श्रीव्यास के वाङ्मय यज्ञ को परम्परा पतंजलिमुनि के समय तक चलती रही ।

पुनः आस्तीक कहता है—

ऋत्विक् समो नास्ति लोकेषु चैव ।
द्वैपायनेनेति विनिश्चितं मे ॥
एतस्य शिष्याः क्षितिमाचरन्ति ।
सर्वर्त्विजः कर्मसु स्वेषु दक्षाः ॥

"संसार में श्रीकृष्णद्वैपायन के समान यज्ञकर्त्ता और कोई भी नहीं है, यह मेरा विनिश्चित मत हैं । इसके शिष्य पृथिवी पर विचरण करते रहते हैं और समस्त यज्ञकर्मों में पूर्ण दक्ष हैं ।"

उग्रश्रवा सौति ने कहा—

"पादापसारिणं धर्मं स तु विद्वान् युगे-युगे ।
आयुः शक्तिं च मर्त्यानां युगावस्थामवेक्ष्य च ।
बिव्यास वेदान् यस्माद् स तस्माद् व्यास इति स्मृतः ।

"श्रीव्यासपाराशर्य ने युग-युग में धर्म को एक पादक्रम से क्षीण होते हुये देखा और मनुष्यों की आयु-शक्ति तथा हीनयुगावस्था को देखकर वेदों का विभाग किया, इसलिये वे 'व्यास' कहलाये।"

व्यास जी अपने पुत्रों सहित पांच शिष्यों को पंचमवेद महाभारत (इतिहासपुराण) सहित वेद पढ़ाये—

वेदानध्यापयामास महाभारतपंचमान्।
समन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम्।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः।

(महा॰ 63 । 87 । 90

"व्यासजी ने महाभारतसहित वेदों का अध्ययन सुमन्तु, जैमिनि पैल वैशम्पायन और शुकदेव को करवाया। इन शिष्यों ने महाभारत की पृथक्-पृथक् संहितायें प्रकाशित कीं।

वेदशाखाप्रवर्तन के पश्चात् परन्तु भारतीसंहिता लिखने से पूर्व व्यास जी ने एक पुराणसंहिता बनाई—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः।

"पुराणार्थविशारद मुनिव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धिसहित एक पुराणसंहिता की रचना की।"

श्रीव्यास की पुराणसंहिता में चारसहस्रश्लोक थे—

सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थे वाचिकाः।
चतुः साहस्रिकाः सर्वाः।।"

(वायुपुराणे)

"व्यासपुराणसंहिता में चार पाद और 4000 श्लोक मात्र थे।"
उन पदों के नाम थे—

(1) प्रक्रियापाद (2) उपोद्घातपाद (3) अनुषङ्गपाद (4) उपसंहारपाद।

इस समय वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण का विभाग भी इसी प्रकार का है।

आजकल अष्टादश महापुराणों में लगभग चार लाख श्लोक उपलब्ध हैं। इसका बड़ा रहस्य है यद्यपि पुराणों में तो पुरातनपुराणों की श्लोक संख्या सौ करोड़ श्लोक बतलाई गई हैं—

पुराणमेकमेवासीदस्मिन् कल्पान्तरे नृप।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥

(पद्मपुराण)

'कल्पान्तर में एक ही पुराण था जिसमें शतकोटि (सौ करोड़) श्लोक थे।'

तथ्य यह है कि पराशर्य व्यास से पूर्व इतिहासपुराणों का विशाल वाङ्-मय विद्यमान था, जिसमें निश्चयपूर्वक करोड़ों श्लोक थे। व्यासजी ने पुरातनवाङ्मय का मन्थन करके एकपुराण और एक इतिहास (महाभारत) लिखा। पुरातन शतशः इतिहासपुराणों की विपुलसामग्री का उपयोग करके व्यासजी के शिष्यप्रशिष्यों ने पुराणवाङ्मय का उपबृंहण किया। यह तथ्य है। इसका ऐतिहासिक स्पष्टीकरण आगे होगा।

इतिहासपुराणविद्या में व्यास जी के प्रधानशिष्य श्रीरोमहर्षण थे—

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै रोमहर्षणः।
पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः।

"व्यास जी के प्रख्यातशिष्य रोमहर्षणसूत हुये, जिनको व्यास ने पुराण संहिता का अध्ययन कराया।"

वेदव्यास ने पुराणनिर्माण महाभारतरचना से पूर्व; वेदविभाग करने के अनन्तर किया था। इस तथ्य का समर्थन बलदेव द्वारा रोमहर्षण के वधकाण्ड से भी होता है। बलदेवतीर्थयात्रा उस समय कर रहे थे जबकि महाभारत युद्ध कुरुक्षेत्र में हो रहा था, तब रोमहर्षण नैमिषारण्य में ऋषियों का पुराण सुना रहे थे। शौनक कहते हैं—

पुराणमखिलं तात पिता तेऽधीतवान् पुरा।
क्वचित् त्वमपि तत् सर्वमधीषे लौमहर्षणे।
पुराणे हि कथाः दिव्या आदिवंशाश्च धीमताम्।
कथ्यन्ते ये पुरास्माभिः श्रुतपूर्वाः पितुस्तव॥

(आदिपर्व 512-3)

"हे उग्रश्रवा जी! आपके पिता रोमहर्षण ने समस्त पुराणों का अध्ययन किया था, क्या आपने उन सब पुराणों का अध्ययन किया है। पुराणों में

आदिवंशों की और ऋषियों की दिव्यकथायें वर्णित हैं जो पहिले आपके पिता ने हमको सुनाई थीं ।

पद्मपुराण में व्यासशिष्य रोमहर्षण का वृतान्त इस प्रकार मिलता है—

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च कौर्मं मात्स्यं च वामनम् ।
वाराहं ब्रह्मवैवर्तं नारदीयं भविष्यकम् ।
आग्नेयमर्धं वै सुताच्छुश्रुवुर्लोमहर्षणात् ।
एतानि तु पुराणानि द्वापरान्ते श्रुतानि हि ।
शौनकाद्यैर्मुनिवरैः यज्ञारम्भात् पुरैव हि ।
यदा तु तीर्थयात्रायां बलदेवः समागतः ।
नैमिषं मिश्रिकं नाम समाहूतो मुनीश्वरैः ।
तत्र सूतं समासीनं दृष्ट्वा त्वध्यासनोपरि ।
चुक्षुभे भगवान् रामः पर्वणीव महोदधिः ।
मूढ़ो दर्भकरो रामः प्राहरल्लोमहर्षणम् ।

"शौनकादि मुनियों ने नैमिषारण्य में रोमहर्षण से ब्रह्मपुराण, विष्णु पु० कूर्मपुराण, मत्स्यपु०, वामनपु०, वाराह पु०, ब्रह्मवैवपु०, नारदपु०, भविष्य पुराण आधा अग्निपु० सुना। जब मुनियों द्वारा समाहूत बलदेव नैमिषारण्य में आये तो उन्होंने उच्चासन पर विराजमान सूतजी को पुराण सुनाते हुए देखा। तब मूर्ख बनकर दर्भ से क्रुद्ध बलराम ने सूत का वध कर डाला।"

इस कृत्य को देखकर शौनक को घोर दुःख हुआ। उन्होंने कहा बलभद्र ! तुमने हमारे गुरु का वध करके घोर अनर्थ किया है। बलराम ने कहा यह शूद्रजातीय सूत ब्राह्मणों को पढ़ाये यह उचित नहीं है, इसलिए इस पापकार्य के कारण मैंने इसका वध किया हैं। शौनक ऋषि ने कहा बलराम ! नीचजातीय पुरुष से भी उत्तमविद्या का अध्ययन कर लेना चाहिए, यह धर्मशास्त्रकारों ने कहा है। पुनः रोमहर्षण तो—ब्राह्मणतुल्य ऋषि और हमारे गुरु थे।"

यह सुनकर बलराम को अपने कुकर्म पर पश्चात् हुआ और उन्होंने शौनक ऋषि से निवेदन किया भगवन् ! इस रोमहर्षण का पुत्र उग्रश्रवा इससे भी अधिक पुराणविशेषज्ञ है, मैं उसको आपके पास लाये देता हूं। उससे आप पुराणविद्या का अध्ययन कीजिये।

शेषपुराणों का प्रवचन रोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवासौति ने किया।

वायुपराण के अनुसार रोमहर्षण सूत के छः पौराणिक शिष्य थे, जिन्होंने पृथक-पृथक पुराणसंहितायें प्रकाशित कीं। इस शिष्यपरम्परा का विवरण इस प्रकार है—

षट्शः कृत्वा मयाप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः ।
आत्रेयः सुमतिर्धीमान् काश्यपो ह्यकृतव्रणः ।
भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वशिष्ठो मित्रयुश्चयः ।
सावर्णिः सौमदत्तिस्तु सुशर्मा शांशपायनः ।
एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रताः ।
त्रिभिस्तत्र कृतास्तिस्रः संहिताः पुनरेव हि ।
काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः ।
मामिका च चतुर्थी स्यात् सा चैषा पूर्वसंहिता ।
सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः ।
पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा ।
चतुःसाहस्रिकाः सर्वाः शांशपायनिकामृते ।
लोमहर्षणिका मूलास्ताः काश्यपिकाः पराः ।
सर्वाणिकास्तृतीयास्ततः यजुर्वाक्यार्थमण्डिताः ।
शांशपयानिकाश्चान्या नोदनार्थविभूषिताः ।

(वायुपुराण 61।55-61)

"ऋषिसत्तमों ! मैंने भी पुराणप्रवचन छः प्रकार से अर्थात् मेरे छः शिष्यों ने प्रवचन किया है वे छः शिष्य हैं—

(1) आत्रेय सुमति
(2) काश्यप अकृतव्रण
(3) भारद्वाज अग्निवर्चा
(4) वाशिष्ठ मित्रयु
(5) सौमदत्ति सावर्णि
(6) शांशपायन सुशर्मा

उपर्युक्त तीन शिष्यों ने तीन संहितायें बनाई...काश्यपसंहिता, सावर्णि संहिता और शांशपायनसंहिता, चतुर्थी मूलभूता लोमहर्षणकृत पुराणसंहिता। ये सभी पुराणसंहितायें चारपादों वाली और एक ही अर्थ का वर्णन करने वाली थी। केवल इनके पाठान्तर पृथग्भूत थे, जिस प्रकार वेदों की शाखा हैं। सभी पुराणसंहिताओं में चारसहस्रश्लोक थे, केवल शांशपायनसंहिता को छोड़कर।

(द्रष्टव्यः पुराणावतरणं श्रीमधुसूदनओझाकृत)

काश्यपीयपुराणसंहिता का निर्देश चान्द्रव्याकरण तथा सरस्वतीकंठाभरण की हृदयहारिणीवृत्ति में मिलता है। अतः भोजराज (12 शती) के समय तक उक्त संहिता प्राप्य थी।

उग्रश्रवासौति—रोमहर्षणसूत का पुत्र उग्रश्रवासौति अपने पिता से भी अधिक इतिहासपुराणों का ज्ञाता था। श्रीउग्रश्रवासौति ने कुलपतिशौनक को उनके द्वादशवर्षीय दर्घसत्र में महाभारत की कथा और हरिवंशपुराण सुनाये। लिखा है—

"लोमहर्षण पुत्रः उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये शौनकस्य कुलपतेर्द्वादशवार्षिके सत्रे सुखासीनानभ्यगच्छत् ब्रह्मर्षीन् संशितव्रतान्।

विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः।

(आदिपर्व 1-1-2)

'श्रीलोमहर्षण का पुत्र उग्रश्रवासौति पौराणिकविद्वान् नैमिषारण्य में कुलपतिशौनक के द्वादशवर्षीयर्दीघसत्र में आया। वह विनयावनत होकर सूतनन्दन सुखपूर्वक आसीन कठोरव्रत वाले ऋषियों के पास गया।'

वहाँ पर कुलपतिशौनक की प्रेरणा पर उग्रश्रवासौति ने महापुराणों और महाभारत की कथा ऋषियों को सुनाई—

यत्तु शौनक सत्रे ते भारतमाख्यानमुत्तमम्
कथितं विस्तारार्थं च यशो वीर्यं महीक्षिताम्॥

(आदिपर्व)

नैमिषारण्ये कुलपतिः शौनकस्तु महामुनिः।
सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः।

(1।1।4)

कुलपतिशौनक का दीर्घसत्र और पुराणश्रवणकाल—कुलपति शौनक नामक या तो अनेक ऋषि हुए अथवा शौनकऋषि दीर्घजीवी थे, जिन्होंने अनेक सत्र किये। यदि शौनकऋषि एक ही थे तो इनकी आयु या वयः 300 वर्ष से अधिक होना चाहिए। तपस्वी ऋषियों के आयु 300 वर्ष या अधिक होना असम्भव नहीं है। पण्डित गिरधरशर्माचतुर्वेदी कलियुग में 300 वर्ष की आयु असम्भव मानते हैं। ऐसा मानना अयुक्त है प्रथम, युगावस्था या काल गति का प्रधानकारण राजा होता है। चतुर्युगों की व्यवस्था धर्म के ऊपर आश्रित थी, इसीलिये प्रथमयुग को सत्ययुग, कृतयुग अथवा धर्मयुग कहा जाता था। अतः युगों में धर्म के अतिरिक्त और कोई विशेष बात नहीं थी। योगबल अथवा रसायनसेवन से मनुष्य त्रिकाल में दीर्घजीवी हो सकता है।

देवयुग में देवगण रसायनसेवन से ही दीर्घजीवी हुये थे और ऋषि योग या तपोबल से। इतिहास में प्रसिद्ध है कि रसायनसेवन से कलियुग में नागार्जुन सिद्ध योगी 600 वर्ष तक जीवित रहा।

श्रीगिरधरचतुर्वेदीजी पूर्वयुगों में ऋषियों की आयु लाखों करोड़ों वर्ष की मानते हैं फिर शौनक जो द्वापर के अन्त में हुये, उनकी आयु 300 वर्ष क्यों नहीं हो सकती (द्रष्टव्य पातंजलमहाभाष्य में गिरधरशर्मा की भूमिका और युधिष्ठिरमीमांसक का संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास प्रथम-भाग)

कुलपतिशौनक का अन्तिम दीर्घसत्र, जिसमें उग्रश्रवासौति ने पुराणों का संकलन किया, भारतयुद्ध के लगभग 300 वर्ष पश्चात् हुआ। यह समय पुराणों के प्रमाणों से ही इस प्रकार निकलता है...पुराणों के मगध, कुरुवंश और अयोध्या के राजाओं की वंशावली और राज्यकाल दिया गया है वह इस प्रकार है

मागध वंश	राज्यकाल	कौरव वंश	ऐक्ष्वाक वंश
(1) सोमाधि	=58 वर्ष,	शतानीक	बृहत्क्षत्र
(2) श्रुतश्रवा	=64 वर्ष,	सहस्रानीक	उरुक्षय
(3) अयुतायु	=36 वर्ष,	अश्वमेध दत्त	वत्सव्यूह
(4) निरमित्र	=40 वर्ष		प्रतिव्योम
(5) सुक्षत्र	=56 वर्ष		
(6) बृहत्कर्मा	=23 वर्ष		
(7) सेनाजित	=23 वर्ष	अधिसीमकृष्ण	दिवाकर
	कुल=300 वर्ष		

वायुपुराण, मत्स्यपुराण इत्यादि प्रधानपुराणों में लिखा हुआ है कि जब मगध में राजा सेनाजित् के राज्यकाल का 53 वां वर्ष चल रहा था तब कुलपतिशौनक का दीर्घसत्र प्रारम्भ हुआ, उसी समय हस्तिनापुर में अधिसीमकृष्ण और अयोध्या में दिवाकर शासन कर रहे थे। प्रमाण द्रष्टव्य है...

अधिसीमकृष्णो धर्मात्मा सांप्रतोऽयं महायशाः।
यस्मिन् प्रशासति महीं युष्माभिरिदिमाहृतम्॥
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम्।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥

वायु पु० 99/258-59

अतः कलिसम्वत् 300 अथवा विक्रम से 2700 वर्ष पूर्व शौनक ऋषि दीर्घसत्र कर रहे थे और उसी समय वर्तमान पुराणों का आदिसंस्करण उग्रश्रवासौति ने लोक में प्रकाशित किया, जैसा कि पुराणों में दृढ़शब्दों में प्रतिपादित किया है, अतः आधुनिक लेखकों की इन कल्पनाओं में कोई सार नहीं कि पुराण विक्रम की तीसरी या चौथी शताब्दी में संकलित किये गये। यह सत्य है कि पुराणों में उत्तरकाल में बहुत प्रक्षेप होता रहा और उनके अनेक पाठान्तर निर्मित किये गये, लेकिन मूल महापुराण और हरिवंशपुराण अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल 2700 वि. पू. में ही संकलित हुये, यद्यपि उनकी सामग्री रोमहर्षण, उनके शांशपायनादि शिष्यों ने बहुत पूर्व प्रस्तुत कर दी थी, तथा इन महापुराणों और महाभारत की मूलसामग्री प्राचीन व्यासों के इतिहासपुराणों (मार्कण्डेय, वाल्मीकि इत्यादि) से संग्रहीत की गई थी। इतिहासपुराणविद्या की प्राचीनता पर पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं।

श्री चिन्तामणि वैद्य ने उग्रश्रवासौति का महाभारत संस्करण 2000 वि. पू. में होना लिखा है, वह इतिहासक्रम को बिना समझे लिखा गया है।

शौनकदीर्घसत्र का ऐतिहासिकमहत्व—पाराशर्यव्यासकृत वाङ्मय यज्ञ के अनन्तर कुलपतिशौनक के दीर्घसत्र का सर्वाधिक्य ऐतिहासिक महत्व है। आजकल की भारतीय इतिहास की पुस्तकों में बौद्ध संगीतियों का बड़े जोर-शोर से वर्णन किया जाता है। ये बौद्ध संगीतियां अजातशत्रु के राज्यकाल में, अशोक के राज्यकाल में, और कनिष्क के राज्यकाल में हुई। इन संगीतियों में प्रायः 500 या 700 बौद्ध भिक्षु एकत्रित होते थे और बौद्धसाहित्य का संकलन होता था। शौनक के वाङ्मययज्ञ के सम्मुख ये बौद्ध संगीतियां उसी प्रकार हैं जिस प्रकार सूर्य के सम्मुख दीपक। परन्तु व्यास या शौनक के वाङ्मययज्ञ का आधुनिक लेखकों की पुस्तकों में कहीं भी वर्णन नहीं मिलेगा, यह घोर विडम्बना है।

कहा जा सकता है कि शौनक अन्तिम महान् मुनि थे, इनकी अध्यक्षता में समस्त वैदिकवाङ्मय ओर धर्मशास्त्र, और इतिहासपुराण का संकलन हुआ।

शौनकऋषि वेदों के स्वयं प्रकाण्डपण्डित थे। उनके विषय में लिखा है—

> योऽसौ दिव्याः कथा वेद देवतासुरसंश्रिताः।
> मनुष्योरगगन्धर्वकथा वेद च सर्वशः।
> स चाप्यस्मिन् मखे सौते विद्वान् कुलपतिर्द्विजः।
> दक्षो धृतव्रतो धीमान् शास्त्रे चारण्यके गुरुः॥
>
> (महाभारत 14/5-6)

"कुलपतिशौनकऋषि देवता, असुर, मनुष्य, नागों और गन्धर्वों की दिव्य कथायें जानते हैं। हे सौते ! वे कुलपति ब्राह्मण इस यज्ञ में दक्ष, धृतव्रत विद्वान्, शास्त्रविद्, और आरण्यक में तो गुरु ही हैं।"

महाभारत में शौनक को 'सर्वशास्त्रविशारद' कहा गया है। वे सभी शास्त्रों में निष्णात पण्डित थे। शौनक ऋषि के निम्नलिखित वैदिकग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—

(1) बृहद्देवता।
(2) ऐतरेयारण्यक।
(3) कल्पसूत्र।
(4) ऋक्प्रातिशाख्य।
(5) ऋक्सर्वानुक्रमणी।
(6) आथर्वणचतुरध्यायी।
(7) ऋग्विधान।
(8) चरणव्यूह।

चतुर्थ अध्याय

अष्टादशपुराण

पुराणसंख्याविवेचन—पुराणों या महापुराणों की संख्या 18 प्रसिद्ध है। म० म० मधुसूदन ओझा ने 'पुराणोत्पत्तिप्रसंङ्ग' नामक लघुपुस्तक में पुराणों की संख्या 18 होने के अनेक कारणों की ऊहापोह की है। सर्वप्रथम, ओझाजी के मत में आत्मा के अष्टादशभेद के आधार पर पुराणों के अठारह भेद हैं—परात्पर (पुरुष), अव्यय, अक्षर, क्षर, शान्तात्मा, महानात्मा, विज्ञानात्मा, प्रज्ञानात्मा, प्राणात्मा, शरीरात्मा, हंसात्मा (वायु), दिव्यात्मा (इन्द्र=अग्नि), तैजसात्मा, कर्मात्मा, चिदात्मा, विभूतिलक्षण, श्रीलक्षण और ऊर्क्‌लक्षण आत्मा।

प्राचीनभारत विशेषतः संस्कृतवाङ्मय में अठारह की संख्या अत्यन्त पुण्य एवं महिमामयी मानी गई है, यथा महाभारत में अठारह पर्व हैं, गीता के अध्यायों की संख्या अठारह है, महाभारतयुद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना अठारह दिन तक लड़ी। इसी प्रकार प्राचीन भुवनकोश में पृथिवी के 18 द्वीप माने गये थे। इसी प्रकार 18 संख्या के और भी उदाहरण मृग्य हैं।

पुराणों का क्रम—इन अठारह पुराणों का प्रायेण निश्चित क्रम है सर्वप्रथम ब्रह्मपुराण का स्थान है और अन्तिम ब्रह्माण्डपुराण है। इस पुराण-क्रम के रहस्य का उद्घाटन म० म० मधुसूदन ओझा ने पूर्वोक्त 'पुराणोत्पत्ति-प्रसंग' में किया है। तदनुसार ब्रह्म, ईश्वर, प्रकृति या ब्रह्माण्ड का ही अपर नामधेय है। कहा गया है—

'ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव' (मुण्डक० III)

यही स्वयम्भू या आत्मभू—स्वयं अपने आप बनने वाला ब्रह्माण्ड (जगत्) ही ब्रह्म है। ब्रह्माण्ड का अर्थ है—बड़ा अण्डा

"महदण्डमभूदेकं प्रजानां बीजमव्ययम्' (आदिपर्व) सब प्रकार की सृष्टियों का मूल ब्रह्म ही है—उसी से वाङ्मय, लोक, प्रजा और धर्म की सृष्टि हुई। वैसे तो सभी पुराणों का प्रधानविषय—सांख्यानुसार—सृष्टि का प्रतिपादन और प्राचीन इतिहास का वर्णन है। अतः सर्वसृष्टि का कारण और उत्पादन ब्रह्म ही है अतः सर्वप्रथम गणना में ब्रह्मपुराण का नाम है।

द्वितीय स्थान पद्मपुराण का है। यह भूमि या भू ही ब्रह्म या स्वयम्भू (जीवसृष्टि) का आधार है, इसी भूपद्म (पृथिवीकमल) से लोकसृष्टि हुई इसलिये पद्मपुराण का द्वितीय स्थान है।

हिरण्याण्ड के दो शकल (खण्ड) हुये पृथिवीलोक और द्युलोक (सूर्य) सूर्य सर्वत्र व्याप्त है, अतः उसी को विष्णु कहते हैं। प्राचीन और आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी पृथिवी की उत्पत्ति सूर्य (विष्णु) से हुई, अतः तृतीय स्थान विष्णुपुराण का है।

तैत्तिरायारण्यक में कहा है—'वाताद् विष्णोर्बलमाहुरिति वत्सस्य वेदना' वत्स ऋषि का विज्ञान है कि विष्णु का बल वात (वायु) है—अथवा आकर्षण शक्ति से सूर्य और पृथिवी दृढ़ है, अतः सृष्टि में वायु का चतुर्थ स्थान है अतः यही वायुपुराण का स्थान है।

इस वायु का आधार या स्थान सरस्वान् समुद्र (अन्तरिक्ष) है अतः सारस्वतकल्प की व्याख्या करने वाला पञ्चम भागवतपुराण है। नारद मेघ या आप (जलों) की संज्ञा है—

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।

इतिहास में नारदऋषि नारायण (सरस्वान्) के शिष्य हैं। अतः नारद-पुराण का षष्ठ स्थान है।

ओझाजी के मत में अगले चार पुराणों का क्रम-प्रकृतिकारणतावाद, अग्निकारणतावाद, सूर्यकारणतावाद और विवर्तकारणतावाद के कारण क्रमशः मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण है।

अगले छः पुराणों में क्रमश छः अवतारों का कथन है अतः अवतारों के क्रम के कारण उनका क्रम है—लिङ्गपुराण, वराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामन-पुराण, कुर्मपुराण और मत्स्यपुराण।

सत्रहवाँ गरुडपुराण प्रतिसृष्टि या निर्वाण या प्रेतविद्या का निरूपण करता है, अतः उसका यह क्रम और नाम है।

जिसमें सृष्टि और प्रतिसृष्टि (संहार) होता है वह ब्रह्माण्ड है, अतः अन्तिम ब्रह्माण्डपुराण है।

पुराणक्रम का ऐतिहासिक कारण—पुराणक्रम के सम्बन्ध में ओझाजी के मत दार्शनिक या धार्मिक या वैज्ञानिक दृष्टि से ही कल्पित किये गये हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने पुराणों का ऐतिहासिकदृष्टि से मन्थन किया है, तदनुसार उक्त अठारह पुराणों के नामकरण और क्रम के ऐतिहासिक कारणों का सार इस प्रकार है।

ओझाजी द्वारा पुराणों के नाम और क्रम का कल्पित कारण इस भ्रामक धारणा में है कि श्रीकृष्णद्वैपायन पाराशर्य पुराणविद्या के मूल या आदि प्रवर्तक थे। परन्तु सत्य यह है कि कृष्णद्वैपायनव्यास, 28 व्यासों में अन्तिम

और पुराणों के अन्तिम प्रवक्ता थे, जिस प्रकार कि वे वेदों के अन्तिम व्यास (सम्पादक) थे। इन 28 व्यासों का संक्षिप्त इतिवृत पूर्वपृष्ठों पर लिखा जा चुका है। इन 28 व्यासों के अतिरिक्त अन्य अनेक ऋषियों विशेषत: अथर्वाङ्गि-रस ऋषियों ने महाभारतयुग (पाराशर्यव्यास) से शताब्दियों ही नहीं सहस्राब्दियों पूर्व इतिहासपुराणों का प्रवचन किया था, जैसा कि ब्राह्मणों और उपनिषदों में उल्लिखित है—'ते वा एतेऽथर्वाङ्गरस एतदितिहासपुराणम-भ्यतपन्' (छा० उ० 3/4/2)।' यह उल्लेख अनेकश मिलता है और न्याय-भाष्यकार वात्स्यायन (न्यायभाष्य 41/1/62) ने इसकी पुष्टि की है।

महाभारत से पूर्व इतिहासपुराण को पञ्चमवेद और वेदों का वेद कहा जाता था। पुराणों में इसी बात को अनेकविध कहा है कि पुराण शतकोटि प्रविस्तर था (इसमें व्यास से पूर्व करोड़ों श्लोक थे), ब्रह्माजी के मुख से सर्वप्रथम पुराण की सृष्टि हुई, इत्यादि कथनों का तात्पर्य यही है कि व्यास से पूर्व पुराणविद्या का बड़ा भारी विस्तार था, उनसे पूर्व कम से कम सैकड़ों इतिहासपुराण ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। पाराशर्यव्यास ने प्राचीन पुराणों में से सार ग्रहण करके मात्र चार हजार श्लोकों का एक पुराण रचा, परन्तु प्राचीनतम पुराणसामग्री सर्वथा लुप्त नहीं हुई, उसके अवशेष किसी न किसी रूप में बचे रहे। प्राचीन इतिहासों की पर्याप्त सामग्री महाभारत में साररूप में संग्रहीत कर दी गई और युगानुसार 18 महापुराण एवं 18 उपपुराणों में उस प्राचीन सामग्री का पल्लवन हुआ।

इस प्रकार अनेक प्राचीन संहिताओं यथा चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, मनुस्मृति, शुक्रनीति के नवीन संस्करण ही इस समय उपलभ्य हैं, आज यह कोई दावा नहीं कर सकता कि मनुस्मृति, शुक्रनीति, चरकसंहिता या भरत-नाट्यशास्त्र अपने मूल रूप में उपलब्ध हैं, परन्तु जो कोई यह मानता है कि कृतयुग या त्रेतायुग या द्वापर में मनु, शुक्राचार्य (असुरगुरु) या भरत ने कोई ग्रन्थ नहीं लिखे थे, तो ऐसा मानना मूर्खता है। युग युग में इन ग्रन्थों का रूप परिवर्तित होता रहा, सम्भवतः मूलसामग्री तो पूर्णत: या अधिकांश बदल दी गई भाषा तो बदल दी ही गई, केवल ग्रन्थ का नाम ही मूलरूप में रह गया।

हमारे उक्त विस्तृत कथन का मुख्य तात्पर्य यह है कि अठारह महा-पुराण और अठारह उपपुराण—पाराशर्य व्यास से पूर्व रचे गये थे, इनके अतिरिक्त और भी इतिहासपुराण व्यासपूर्व रचे जा चुके थे। हमारे इस मत का आधार हमारी निजी कल्पना नहीं बल्कि ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत पुराणों एवं अन्य प्रचीनग्रन्थों में इसके प्रमाण मिलते हैं। अब आगे इन प्रमाणों के निदर्शनमात्र उद्धृत करते हैं।

वायु और वायुपुराण—मातरिश्वा या वायुऋषि द्वितीय वेदव्यास थे, इसने पुरूरवा के यज्ञ में पुराणप्रवचन किया था। वायुप्रोक्त पुराण और गाथाओं का उल्लेख महाभारत में अनेकत्र मिलता है, यथा

एतत्ते सर्वमाख्यातमतीतानागतं तथा।
वायुप्रोक्तमनुस्मृत्य पुराणमृषिसंस्तुतम्।

(वनपर्व 1891 14)

स्पष्ट ही उक्त श्लोक में वायुपुराण का उल्लेख है। हरिवंशपुराण में वायुपुराण का स्मरण इस प्रकार है—

वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चमं तदनन्तरम्' (हरि० 1 7 25)

मनुस्मृति (9142) में वायुगीत गाथाओं का उल्लेख है—

अत्र गाथा वायुगीताः

भविष्यपुराण—दाशरथि राम और वाल्मीकि से पूर्व कोई भविष्यपुराण था, जिसका उल्लेख रामायण में हुआ है—

पुराणे हि सुमहत्कार्यं भविष्यं हि मया श्रुतम्।
दृष्टं मे तपसा चैव श्रुत्वा च विदितं मम।

(रा० 4।63।3)

इस भविष्यपुराण में वाल्मीकि रामायण से पूर्व रामावतार का संक्षिप्त इतिहास उल्लिखित था। उपलब्ध भविष्यपुराण से इसका कोई सम्बन्ध नहीं।

नारद और नारदपुराण—इस समय उपलब्ध नारदपुराणका स्वरूप कुछ भी हो, परन्तु नारद ने एक या अनेक पुराणग्रन्थ लिखे थे। छान्दोग्योपनिषद् से स्पष्ट है कि देवयुगीन देवर्षिनारद ने इतिहासपुराण विद्या का अध्ययन किया था और पाराशर्यव्यास से पूर्व कोई पुराण रचा था[1] जिसकी स्मृति वर्तमान नारदपुराण के नाममें अवशिष्ट है। महाभारत (2।5।1) में स्पष्ट ही नारद को इतिहासपुराणज्ञ कहा गया है—

'इतिहासपुराणज्ञः पुराकल्पविशेषवित्

ज्ञाता और विशेषज्ञता का स्पष्ट अर्थ है उन्होंने इतिहासपुराण लिखे थे।

मार्कण्डेय ऋषि और मार्कण्डेयपुराण—पुरातन मार्कण्डेयपुराण (अनुपलब्ध) के मूल प्रवक्ता शुक्राचार्य के वंशज (मृकण्ड के पुत्र) मार्कण्डेय ऋषि थे। महाभारत वनपर्वान्तर्गत 'मार्कण्डेयसामस्यापर्व' से सिद्ध होता है कि

1. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि...इतिहासपुराणं पञ्चमम्' (छा० 6।1 2)

दीर्घजीवी मार्कण्डेय प्राचीनइतिहासपुराणविद्या के विशेषज्ञ थे और उन्होंने पुराण की रचना की थी, जिसकी स्मृति उपलब्ध मार्कण्डेयपुराण में उपलब्ध है—तथा महाभारत में—

भवान् दैवतदैत्यानामृषीणां च महात्मनाम्।
राजर्षीणां च सर्वेषां चरितज्ञः पुरातनः॥

(वन० 183।54)

मूलमार्कण्डेयपुराण में देव, दैत्य, ऋषि और राजर्षियों के चरितों का वर्णन था, जिसकी छाया अर्वाचीन मार्कण्डेयपुराण में भी मिलती है।

उशना और बृहस्पति— इन दोनों पुरातन व्यासों ने अनेक लौकिक-शास्त्रों के साथ पुराण भी रचे थे। अग्निपुराण का सम्बन्ध अग्नि या अङ्गिरा से हो सकता है, ये अङिगरा आङ्गिरस वंश के मूल प्रवर्तक थे। उपपुराणों में एक औशनसपुराणस्मृत है, जो पुरातन औशनसपुराण की स्मृति कराता है। उशना की गाथायें महाभारत में बहुधा स्मृत हैं।

पुराणनामकरण की परम्परा—उक्त पुराणनामों से स्पस्ट है कि पुरातन युग में पुराणों का नाम उसके मूलप्रवक्ता के नाम से प्रथित होता था। लेकिन इस समय कुछ पुराणों का नाम देवताओं या अवतारों या आख्यान या घटना-विशेष के नाम से प्रचलित है। इस प्रकार की पुराणनामकरण की प्रथा भी प्राचीनकाल में थी, इसकी पुष्टि ब्राह्मणग्रन्थों से होती है, यथा, शतपथब्राह्मण (13।4।3) के पारिप्लवोपाख्यान में मत्स्यों के इतिहास और सुपर्णों के प्राचीनपुराण (सम्भवतः मत्स्यपुराण और गरुड़पुराण) का उल्लेख है। उप-लब्ध मत्स्य और गरुड़पुराण उन्हीं पुरातनों के अनुकरण पर बनाये गये, कम से कम उनके नामकरण का तो यही प्राचीन कारण था।

प्राचीन ब्राह्मणग्रन्थों में शौनःशेपाख्यान और सौपर्णाख्यान का उल्लेख मिलता है। अश्वमेधयज्ञ के अन्त में सम्पूर्ण अश्वमेधयज्ञ में 360 दिन यह पारिप्लवोपाख्यान होता था अतः प्राचीनयुगों में ये पुराण नहीं होते तो आख्यान कैसे सुनाये जाते, भरतदौष्यन्ति, दशरथि राम आदि ने शतशः अश्व-मेध किये थे, अतः मानना पड़ेगा, इस सम्राटों के समय पुराण अवश्य विद्यमान थे, उपलब्ध पुराण उन्हीं पुरातन पुराणों के विकृत या परिवर्तित रूप हैं।

इस समय इन पुराणों का नाम देवता या महापुरुष (अवतार के नाम पर प्रचलित है—अग्निपुराण, मत्स्यपुराण गरुडपुराण भागवतपुराण और विष्णुपुराण। ब्रह्मवैवर्त के नाम का आधार दार्शनिक है ब्रह्माण्ड के नाम पर

ब्र ह्माण्डपुराण है तथा भविष्यपुराण का नाम प्राचीन भविष्यकालिक परम्परा के आधार पर है, यद्यपि इसमें सूर्यदेवता की मान्यता और पूजा का विधान है।

इन सभी पुराणों के मूलप्रवक्ता और मूलरूप पाराशर्य व्यास से प्राचीन-तर थे, परन्तु इनका वर्तमान रूप अत्यन्त आधुनिक है, इसका संकेत आगे किया जायेगा।

सभी पुराणों के मूलप्रवक्ता प्राक्पाराशर्य थे, इसकी पुष्टि पुराणोल्लिखित व्यासपरम्परा से तो होती ही है विष्णुपुराण का यह कथन भी इस मत को पुष्ट करता है, उसमें विष्णुपुराण के प्रवचन की एक पृथक् परम्परा ही मिलती है जो अन्य पुराणोक्त व्यासपरम्पराओं से भिन्न है—

विष्णुपुराण के प्रवचनकर्त्ता

(1) ब्रह्मा
(2) ऋभु (या ऋषभ) और प्रियव्रत
(3) भागुरि
(4) स्तम्भमित्र
(5) दधीचि
(6) सारस्वत (अपान्तरतमा, नवमव्यास)
(7) भृगु (या कोई भार्गवऋषि)
(8) पुरुकुत्स
(9) नर्मदा (पुरुकुत्स की पत्नी)
(10) धृतराष्ट्र नागराज और आपूरण
(11) वासुकि
(12) वत्स
(13) अश्वतर
(14) कम्बल
(15) ऐलापुत्र
(16) वेदशिरा

(17) प्रमिति (वासिष्ठ)
(18) जातूकर्ण (पाराशरगोत्रीय)
(19) पराशर (व्यासपिता)
(20) मैत्रेय (बकदाल्भ्य)
(21) शिनीक

अतः प्राचीन विष्णुपुराण के प्रमुख प्रवक्ता कृष्णद्वैपायन के पिता पराशर मुनि थे—सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिपृच्छते ।

पुराणसंहितां सम्यक् तां निबोधयथातथम् ।। (विष्णुपु० 1।1।30)

उपलब्ध विष्णुपुराण पाराशर की कृति नहीं है, इसको उसकी छायानुकृति कह सकते हैं। उपलब्ध विष्णुपुराण का रचना काल आगे कथित होगा।

उपर्युक्त विवेचन से सिद्ध हुआ है कि पाराशर्य व्यास से पूर्व अनेक पुराणों की रचना हुई, उनके अनुकरण पर ही उपलब्ध महापुराण और उपपुराण हो गये। उपलब्ध पुराणों में पर्याप्त साम्प्रदायिक तत्त्व होते हुये भी प्राचीन इतिहास सामग्री बहुलांशेन सुरक्षित है।

पुराणविषयविवेचन—पुराणों के पञ्चलक्षणों का विवेचन आगे के प्रकरण में किया जायेगा। पुराण के पाँच विषयों के अतिरिक्त चार प्रधान विषय और थे—आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ।।

व्यासजी ने अपनी पुराणसंहिता में आख्यानादि चार विषयों पर विशेष हस्तक्षेप किया। क्योंकि प्राचीनपुराणों में विस्तृत आख्यान और उपाख्यान थे, उन्होंने इन आख्यानादि को बहुत संक्षिप्त कर दिया और बहुत से उपाख्यान निकाल ही दिये, इसी प्रकार व्यासपुराणसंहिता में स्वल्प गाथायें ही समाविष्ट थीं क्योंकि चतुःसाहस्रीसंहिता में विषय का अधिक विस्तार नहीं हो सकता था। इसीलिए वायुपुराणादि उपलब्ध पुराणों में बहुत कम और लघु आख्यान एवं उपाख्यान मिलते हैं।

'कल्प' शब्द के व्याख्यान में विद्वानों में मतभेद है। पं० गिरधर शर्मा आदि इसका अर्थ प्रचलित एवं प्रसिद्ध कल्पसूत्रादि से ही ग्रहण करते हैं।

न्यायसूत्र (2।1।64) में पुराकल्प को अर्थवाद बताया है। पुरानी घटना भी पुराकल्प कही जाती थी, यथा—

श्रूयते पुराकल्पे नृणां व्रीहिमयः पशुः ।'
'पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते ।'
श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः

(पुराणपञ्चलक्षण)

पुराण के प्राचीन सर्वमान्य पाँच विषय थे—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

सर्ग—पुराणों में सांख्यमतानुसार जगत्सृष्टि का वर्णन किया गया। इस सृष्टि को सर्ग कहते हैं—

अव्याकृतगुणक्षोभात् महतस्त्रिवृतोऽहमः ।
भूतेमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते ॥

"मूल प्रकृति में गुणों के सक्रिय होने पर महान् (बुद्धि) उत्पन्न होने से तीन प्रकार (तामस, राजस और सात्विक) के अहंकार की सष्टि होती है। त्रिविध अहंकार से भूततन्मात्रा, इन्द्रिय और पञ्चभूत उत्पत्ति को सर्ग कहते हैं।"

प्रतिसर्ग— लय, प्रलय, प्रतिसंचर, संस्था आदि इसी के पर्याय हैं। सृष्टि के संहार को ही प्रतिसर्ग कहा जाता है, यह प्रलय चार प्रकार की कही गई है—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। निमित्तकारण से प्रलय नैमित्तिक, स्वयंलय प्राकृतिक, सनातन या सतत विनाश नित्य और सर्वथा नाश आत्यन्तिकप्रलय कहलाता है।

वंश—पाँच प्रकार के वंशों का वर्णन पुराणों का प्रधानविषय है—

ऋषिवंशः पितृवंशः सूर्यचन्द्राग्निवंशकाः ।
इत्थं वंशविभागेऽपि पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

ऋषिवंश, पितृवंश, सूर्यवंश, चन्द्रवंश और अग्निवंश का वर्णन भी पुराणों के पाँच विषय हैं।"

वंशानुचरित—उक्त वंशों के प्रधानवंशप्रवर्तक एवं श्रेष्ठ महापुरुषों क चरित ही वंशानुचरित का विषय है—

ऋषीणां देवयोनीनां राज्ञां सूर्यादिवंशिनाम् ।
देवासुराणामन्येषां चेहानुचरितं स्तुतम् ॥

मन्वन्तर—पुराणों में चौदह मनुओं का वर्णन, कालविभाग—आदि मन्वन्तर कहा जाता है।

दशलक्षण—भागवतपुराण, जो एक अर्वाचीन और साम्प्रदायिकग्रन्थ है, उसमें पुराण के दशलक्षण (विषय) बताये गये हैं—सर्ग, विसर्ग, वृत्ति रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय।

पुराणपरिचय

पुराणों के क्रमिक नाम पहिले लिखे जा चुके हैं, अब उनका संक्षेप में परिचय लिखते हैं।

ब्रह्मपुराण—इसमें 245 अध्याय और 14000 श्लोक हैं। इसकी विषयानुक्रमणिका इस प्रकार है—पूर्वभाग में—दक्षादि प्रजापति वर्णन, दैत्य-दानव, उत्पत्ति, सूर्यवंश और सोमवंश का संक्षिप्तवर्णन, रामावतारकथा, कृष्णचरित, पार्वती आख्यान; उत्तरभाग में पुरुषोत्तमवर्णन, तीर्थयात्रावर्णन, पितृश्राद्धविधि-वर्णन, वर्णाश्रम, धर्मवर्णन, युगवर्णन, सांख्ययोगवर्णन।

इस पुराण की कुछ विशेषतायें हैं—अध्याय 30 से 40 तक पार्वती-आख्यान, अध्याय 70 से 175 तक तीर्थमहात्म्यवर्णन, कृष्णचरित का वर्णन 180 से 212 तक, सांख्ययोग का प्राचीन वर्णन—इस पुराण की कुछ अपनी विशेषतायें हैं। इस पुराण में उड़ीसा के भुवनेश्वर क्षेत्र में स्थित कोणादित्य के मन्दिर के उल्लेख के आधार पर कुछ आधुनिक विद्वान् इस पुराण को 11वीं ईस्वी शती की रचना मानते हैं। इस प्रकरण में (पु० 28 से 33) छः अध्यायों में सूर्यपूजा का विशिष्ट वर्णन है। ब्रह्मपुराण और महाभारत (शान्तिपर्व) के अनेक प्रकरण, अध्याय और श्लोक समानप्रायः हैं, उदाहरणार्थ दोनों में वसिष्ठ और कराल जनक का सांख्यसम्बन्धी संवाद पर्याप्त मिलता जुलता है। अतः इस पुराण को अर्वाचीन मानना महती भ्रान्ति है, हाँ अन्य सभी पुराणों के समान इसमें भी हस्तक्षेप अवश्य हुआ है।

पद्मपुराण—यह एक विशालकाय ग्रन्थ है। इसके दो संस्करण प्रकाशित हैं, वे इस प्रकार हैं—

(1) सृष्टिखण्ड (2) भूमिखण्ड (3) स्वर्गखण्ड (4) पातालखण्ड और पञ्चम (5) उत्तरखण्ड। सम्पूर्ण पुराण में लगभग 55000 श्लोक हैं।

सृष्टिखण्ड में 82 अध्याय हैं, इस खण्ड में पुलस्त्य ने भीष्म के प्रति पुष्करमहात्म्य, समुद्रमन्थन, वृत्रवध, वामनावतार कार्तिकेयजन्म, रामचरित आदि विस्तार से कथित हैं।

भूमिखण्ड में शिवशर्माकथाप्रसङ्ग में सुव्रतकथा, वृत्रवध पृथूपाख्यान, धर्माख्यान, ययातिचरित, जैमिनिसंवाद, हुण्डदैत्यवध, विहुण्डवध, सिद्धाख्यानादि वृतान्त हैं।

स्वर्गखण्ड में ब्रह्माण्डोत्पत्ति, भुवनकोश, तीर्थमहात्म्य, कर्मयोगनिरूपण, समुद्रमन्थनकथा, आदि वर्णित हैं। इसी खण्ड में शाकुन्तलोपाख्यान मिलता है जो कालिदासकृत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तल से मिलता जुलता है. इसी प्रकार इसमें विक्रमोर्वशीनाटक के कथानक से साम्य है।

चतुर्थ, पातालखण्ड में रामायणकथा विस्तार से कथित है। रामाश्वमेध प्रसङ्ग में नागलोक का विस्तार से वर्णन है, प्रसङ्गतः अनेक तीर्थों का उल्लेख हुआ है। रामचरित भवभूति के उत्तररामचरित से समता रखता है, इसमें भागवतपुराण का उल्लेख है। कालिदास और भवभूति के काव्यों से समानता पद्मपुराण के वर्तमानपाठ को अत्यन्त उत्तरकालीन, सम्भवतः सातवीं शती का सिद्ध करती है।

पञ्चम, उत्तरखण्ड में पर्वताख्यान, जालन्धरकथा, तीर्थवर्णन और व्रतों का विस्तार से कथन है, वस्तुतः यह पुराण वैष्णवसम्प्रदाय का है और मध्यकाल, गुप्तकाल के अनन्तर इसको यह साम्प्रदायिकरूप दिया गया है।

विष्णुपुराण—पहिले बताया जा चुका है कि इस पुराण की प्रवक्तृ-परम्परा अन्यपुराणों से कुछ भिन्न है, इसका मूल प्राग्महाभारतकालीन होने पर भी वर्तमान पाठ गुप्तकालीन (200 विक्रमसम्वत्) ही है, इसमें भी वैष्णव-भक्ति का प्राबल्य है, विशेषत प्रह्लादकृत विष्णुभक्ति का विस्तार से वर्णन है जब हरिंशपुराण में प्रह्लाद के भक्तरूप का सर्वथा अभाव है, अतः विष्णुपुराण जब पुनः संस्कृत हुआ तब वैष्णवभक्ति का प्राबल्य हो गया था।

बृहन्नारदीयपुराण में इसके 23000 श्लोक बताये गये हैं। परन्तु इस समय यह पुराण दो पृथक् पृथक् खण्डों में मिलता है। इसका प्रथम खण्ड या भाग ही विष्णुपुराण कहा जाता है, जिसमें 6 अंश (खण्ड) और 126 अध्याय तथा श्लोक लगभग छः हजार हैं। इसका द्वितीय भाग विष्णुधर्मोत्तर के नाम से पृथक् प्रकाशित है, जिसमें सोलह हजार से अधिक श्लोक हैं।

इस पुराण के छः अंशों की विस्तृत विषयसूची इस प्रकार है—
प्रथम अंश में— सर्गवर्णन, देवदैत्यादिसम्भवकथा समुद्रमन्थनाख्यान, प्रजापतिवर्णन, ध्रुवचरित, पृथुचरित, प्राचेतसाख्यान, प्रह्लादचरित।

द्वितीयअंश में—पाताल और नरकवर्णन, सप्तस्वर्गनिरूपण, भुवनकोश, ऋषभभरतादिचरित, निदाघऋभसंवाद।

तृतीय अंश में—मन्वन्तरकथा, वेदव्यासपरम्परा, सर्वधर्मनिरूपण, श्राद्धकल्प वर्णाश्रमधर्म, महामोहकथा।

चतुर्थ अंश में विस्तार से सूर्यवंश और चंद्रवंश की वंशावली और इतिहास वर्णित है।

पञ्चम अंश में—साररूप में कृष्णचरित वर्णित है।

षष्ठ अंश में—कलिवर्णन, खाण्डिक्य और केशिध्वज का ब्रह्मविद्या सम्बन्धि संवाद वर्णित है।

वायुपुराण--प्राचीनता और प्रामाणिकता की दृष्टि से वायुपुराण अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसका वर्णन पूर्वपृष्ठों पर किया जा चुका है, कुछ लोग इसके स्थान पर शिवपुराण को प्रस्थापित करते हैं जो सर्वथा अलीक एवं साम्प्रदायिक पक्षपात से परिपूर्ण मत है।

वायुपुराण के मूल और प्राचीनता का पहिले प्रतिपादन हो चुका है। अधिसीमकृष्ण के राज्यकाल (2800 वि० पू०) में जब वर्तमान वायुपुराण का संस्करण बनाया गया, तब उसमें 12000 श्लोक और चार पाद थे—

एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः।
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं यथा युगम्।
चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहितं पुरा। (वायु पु०)

"जिस प्रकार वेद में चार पाद (चारभाग ऋग्वेदादि) और युग के चार पाद (कृतयुगादि) है, इसी प्रकार इस पुराण में चारपाद हैं, जिस प्रकार इस पुराण में 12000 श्लोक हैं, उसी प्रकार चार युगों में 12000 वर्ष होते हैं।"

लोमहर्षण के जिन सुमति आत्रेय आदि छः शिष्यों ने पुराण संहितायें रची उनमें शांशपायन पुराणसंहिता को छोड़कर चार-चार सहस्रश्लोक थे।

वायुपुराण के चार पाद इस प्रकार हैं—

(1) प्रक्रियापाद (2) उपोद्घातपाद (3) अनुषंगपाद और (4) उपसंहारपाद।

इस समय मुद्रित वायुपुराण में प्रायः 11000 श्लोक और 112 अध्याय मिलते हैं। इस समय भी इसके लगभग एक सहस्र श्लोक लुप्त या अस्तव्यस्त हैं।

वायुपुराण का सर्वाधिक महत्त्व है कि यह पञ्चलक्षणों से समन्वित पूर्णपुराण है, इसके ऐतिहासिकवर्णन अत्यन्त प्रामाणिक हैं, जिनका अन्य पुराणों यहाँ तक कि हरिवंश जैसे प्राचीन पुराणों ने अनुकरण किया है। विशेषतः मन्वन्तरवर्णन, युगवर्णन और वंशानुचरित एवं भूगोल वर्णन अत्यन्त प्रामाणिक तथा प्राचीन हैं, इसके कुछ निदर्शन आगे उद्धृत किये जायेंगे।

इस पुराण पर शैवसम्प्रदाय विशेषत: पाशुपत मत का प्रभाव है, इतना होते हुए भी इसमें साम्प्रदायिक दोष नहीं है, पाशुपतयोग का वर्णन अध्याय 11 से 15 तक सविस्तर मिलता है जो अन्यत्र अलभ्य है।

मत्स्यादिपुराणों में वायुपुराण की श्लोक संख्या 24000 बताई गई है, परन्तु वह इसकी न होकर आधुनिक शैवपुराण की है। इसका परिचय अन्यत्र लिखा जायेगा।

भागवतपुराण—पुराणक्रम में इसका पाँचवां स्थान निर्दिष्ट है। इसमें पुराण के पांच के स्थान पर दशलक्षण बताये गये हैं—

सर्गश्चाथ विसर्गश्च वृती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥
(भागवत पु० 12। 7। 9)

इस पुराण के पाँच अतिरिक्त लक्षण—वृत्ति, रक्षा, विसर्ग, हेतु और अपाश्रय का सम्बन्ध प्राय: विष्णु के अवतार और वैष्णवभक्ति से है, स्पष्ट है कि जब यह पुराण लिखा गया उस समय पुराणपञ्चलक्षण का प्राबल्य नहीं था, तथा पुराणविद्या ने पूर्णतः साम्प्रदायिकरूप धारण कर लिया था।

यहाँ पर विविध सृष्टि (विशेषत: जीवसृष्टि) को 'विसर्ग' कहा गया है। 'वृत्ति' जीवन यापन (रोजी-रोटी) को कहते हैं। 'रक्षा' का सम्बन्ध पूर्णत: वैष्णव अवतारों द्वारा जगद्रक्षा से है। हेतु 'विष्णु' रूपी कारण और ईश्वरशरण ही 'अपाश्रय' है।

अष्टादश पुराणों में भागवतपुराण का बड़ा समादार है, परन्तु उसकी ऐतिहासिक सामग्री अधिक प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि एक अर्वाचीन और साम्प्रदायिक रचना है जिसका मुख्य उद्देश्य वैष्णवभक्ति का निरूपण करना है, जो सामग्री प्राचीनपुराणों से ग्रहण की है, उसको छोड़कर इसकी निजी सामग्री ऐतिहासिक दृष्टि से हीनकोटि की है, यद्यपि भाषा, भाव और काव्य सौष्ठव की दृष्टि से न केवल पुराणों में बल्कि श्रेष्ठतम काव्यों से भी श्रेष्ठतर है, परन्तु इसका ऐतिहासिक आधार प्राय: निर्मूल है। उदाहरणार्थ, भागवत-पुराण का प्रारम्भ ही इस कथानक से होता है कि तक्षकनाग के भय से आसन्नमृत्यु राजा परीक्षित् को व्यासपुत्र शुकदेव ने भागवतपुराण सुनाया। महाभारत के प्रमाण्य से कथानक का मिथ्यात्व सिद्ध होता है। प्रथम, महाभारत आदिपर्व में जनमेजय के नागयज्ञ से पूर्व परीक्षित् का आख्यान विस्तार से कथित है, परन्तु वहाँ इस बात का रञ्चमात्र भी संकेत नहीं है कि परीक्षित् का वैयासिक शुक से सम्पर्क हुआ था, बल्कि इसके विपरीत शान्तिपर्व में

पितामह भीष्म युधिष्ठिर को व्यासपुत्र शुकदेव के ब्रह्मलोकगमन की कथा विस्तार से सुनाते हैं, अतः युधिष्ठिर के राज्याभिषेक से पूर्व ही शुकदेव इस धराधाम से ऊर्ध्वलोक में चले गये थे, तब उनका परिक्षित से साक्षात्कार होने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, अतः भागवत का यह कथानक इतिहासविरुद्ध है और वेदव्यास द्वारा इसे रचे जाने की बात तो पूर्णतः कपोलकल्पना है, इसका रचनाकाल पुराणरचनाकाल-प्रकरण में लिखेंगे।

भगवतपुराण का प्रतिद्वन्द्वी, देवीभागवतपुराण है, क्योंकि दोनों ही पुराण साम्प्रदायिक है, प्रथम वैष्णव तो दूसरा शाक्त, अतः परस्पर यह विवाद है कि दोनों में कौन सा महापुराण है। इस सम्बन्ध में भागवतपुराण का पक्ष ही अधिक प्रबल है। उदाहरणार्थ मत्स्यपुराण में लिखा है कि जिस भागवत का समारम्भ गायत्री से होता है, वही असली महापुराण भागवत है।[1] इसी प्रकार वामनपुराण में उल्लेख है जिसमें वृत्रवधादि वर्णन है, वही भागवत है।[2]

बल्लालसेन[3] (दानसागर ग्रन्थ में) और अलबेरूनी ने भी अठारह पुराणों में भागवत की गणना की है, न कि देवीभागवत की। इन दोनों ग्रन्थकारों का समय ग्याहरवीं शती के लगभग था।

भागवत के विषयगाम्भीर्य और वैशिष्ट्य का वर्णन अन्य प्रकरण में किया जायेगा, यहाँ पर इसका केवल श्लोकविस्तार आदि लिखते हैं। श्लोकसंख्या के सम्बन्ध में श्लोक प्रसिद्ध है—

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम्।
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम्॥

इसके अठारह स्कन्धों के प्रधान विषय इस प्रकार हैं—सूतऋषिसंवाद, व्यासचरित, पाण्डवकथा और पारीक्षितोपाख्यान। पारीक्षित्शुकसंवाद, ब्रह्मनारदसंवाद, अवतारकथा, पुराणलक्षण, सृष्टिकथन, विदुर-चरित, मैत्रेय विदुरसंवाद कपिलसांख्यवर्णन, ध्रुवचरित, पृथूपाख्यान प्राचीनबर्हिश्चरित, प्रियव्रतचरित, तद्वंशवर्णन, भुवनकोश, अजामिलचरित, दक्षकथा, वृत्रवधाख्यान, मरुज्जन्म, प्रह्लादचरित, गजेन्द्रमोक्ष, मन्वन्तरवर्णन, समुद्रमथन, वामनावतार,

---

1. यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यतेधर्मविस्तरः, वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते।
2. हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा, गायत्र्या च समारम्भस्तद्वैभागवतं विदुः।
3. भागवतं च पुराणं ब्रह्माण्डं चैवं नारदीयं च।
   दानविधिशून्यमेतत् त्रयमिह न निबद्धममवधार्य॥ (दानसागर)

मत्स्यावतार, सूर्यवंश, सोमवंश, वंशवर्णन, कृष्णचरित, वेदान्तवर्णन, कलिवर्णन वेदशाखाविस्तार, मार्कण्डेयाख्यान ।

नारदपुराण—इस नाम से एकाधिक पुराण मिलते हैं, देवर्षिनारदकृत मूलपुराण के नाम के अतिरिक्त इसमें मूलसामग्री का कितना अवशेष बचा है, यह कहना कठिन है । छान्दोग्योपनिशद्[1] के प्रमाण से ज्ञात होता है कि देवर्षि नारद ने वेद और वेदांग सहित अनेक प्राचीन विद्याओं का अध्ययन किया था, यह सम्भव है कि मूल नारदपुराण में इन विद्याओं का समास या व्यासरूप से वर्णन हो, उसी के अनुकरण पर अर्वाचीन नारदपुराण में प्राचीन विद्याओं का वर्णन किया गया हो ।

नारदपुराण में 25000 श्लोक हैं और यह दो भागों में विभक्त है—पूर्व भाग और उत्तरभाग । पूर्वभाग में 125 अध्याय तथा उत्तरभाग में 82 अध्याय हैं ।

पूर्व भाग में चातुराश्रम्य और चातुर्वर्ण्य वर्णित है । तदन्तर मोक्षवर्णन, वेदांगनिरूपण, शुककथा, गणेश सूर्यादिस्त्रोत, पुराणलक्षण, दानविधि, व्रत आदि वर्णित हैं । उत्तर भाग में एकादशीव्रत, वशिष्ठमान्धातासंवाद, रुक्मांगदकथा, गंगावतरण, काशिमहात्म्य, तीर्थमहात्म्य, मोहिनीचरितादि कथित हैं ।

मार्कण्डेयपुराण—इसमें पुरातन मार्कण्डेयपुराण की छाया अवश्य ही विद्यमान है । इसमें विशेषतः वंशवर्णन और वंशानुचरित प्रमुख लक्षण हैं । मन्वन्तरवर्णन और भुवनकोश इसमें प्रामाणिकरूप से कथित है । कुछ प्राचीन राजाओं यथा खनित्र, अविक्षित् नरिष्यन्त आदि का चरित्र इसी पुराण में मिलता है । मदालसाचरित और दुर्गासप्तशती इस पुराण की अन्य दो महत्व-पूर्ण कृतियाँ हैं ।

मार्कण्डेयपुराण में 9000 श्लोक और 137 अध्याय हैं ।

अग्निपुराण—इसमें 15400 श्लोक और 283 अध्याय हैं । यह एक प्रकार से प्राचीन विद्याओं का विश्वकोश है । इसके कुछ विषय हैं—अवतार, पूजा-विधि, मुद्रादिलक्षण, यज्ञविधि, ब्रह्माण्डवर्णन, तीर्थवर्णन, युद्धनीति, ब्रह्मचर्यधर्म, श्राद्धकल्प, श्रौतयज्ञ, तिथि, व्रत, दान, नाडीचक्र, राजाभिषेक, राजनीति, शकुन-शास्त्र, रत्नपरीक्षा, धनुर्विद्या, आचारधर्म, आयुर्वेद, गजायुर्वेद, छन्दशास्त्र, साहित्य, साहित्यशास्त्र, शरीरविज्ञान, योग और ब्रह्मविद्या ।

---

1. ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि........ (छा० उ०)

भविष्यपुराण—इसकी परम्परा अत्यन्त पुरातन है, एक भविष्यपुराण वाल्मीकि से पूर्व भी विद्यमान था, जिसका संकेत हम पूर्व कर आये हैं, एक भविष्यपुराण का उल्लेख आपस्तम्बधर्मसूत्र में है। प्राचीनकाल में, सम्भवतः इस नाम के अनेक पुराण थे, और उनके प्रतिनिधि अब भी चार भविष्यपुराण मिलते हैं। व्यासशिष्यों द्वारा प्रणीत भविष्यपुराण में 14000 श्लोक और पाँच पर्व हैं—(1) ब्राह्म (2) विष्णु (3) शिव (4) सूर्य और (5) प्रतिसर्ग। भविष्यपुराण का मूल विषय भविष्यकालिक ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन करना था, परन्तु इस समय यह एक साम्प्रदायिक ग्रन्थ बन गया, जिसमें मुख्यतः सौर सम्प्रदाय का वर्णन है।

भविष्यपुराण की संक्षिप्त विषयसूची इस प्रकार है—सूतशौनकसंवाद, आदित्यचरित, पुस्तकलेखनलक्षण, संस्कारलक्षण, शैव और वैष्णव धर्मों का निरूपण इत्यादि। इस पुराण का एक प्रसिद्ध और प्रमुख विषय है सूर्यपूजा का वर्णन और तत् प्रसंग में कृष्णपुत्र साम्ब के कुष्ठरोगनिवारणार्थ शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का भारतवर्ष में आगमन। इसके अतिरिक्त इस पुराण में अर्वाचीनतम राजवंशों और महापुरुषों का उल्लेख किया गया है, यह समस्त विषय निश्चय ही आधुनिक और भविष्यपुराण की परम्परा की आड़ में समाविष्ट किया गया है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण—यह सम्भवतः प्राग्महाभारत पुराणों (यथा वायु० मार्क०) की श्रेणी में नहीं आता। यह नामकरण दार्शनिक भावभूमि पर आधारित है जैसा कि स्वयं इसी पुराण में उल्लिखित है—

विवृत्तं ब्रह्मकात्स्र्येन कृष्णेन यत्र शौनक।
ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः ॥
(ब्र० वै० 1।1।10)

"कृष्ण द्वारा ब्रह्म या ईश्वर को प्रकाशित करने के कारण इसका ब्रह्मवैवर्त नाम पुराणज्ञों में प्रसिद्ध है।"

इस पुराण में 18000 श्लोक, 133 अध्याय और चार खण्ड हैं—(1) ब्रह्म (2) प्रकृति (3) गणेश और (4) कृष्णजन्मखण्ड। इसके प्रवक्ता श्रीकृष्ण बताये गये हैं, इससे भी इस पुराण की अर्वाचीनता स्पष्ट होती है। इसमें कृष्णचरित का विस्तृत वर्णन है तथा राधा का उल्लेख इस पुराण की अपनी विशेषता है।

लिंगपुराण—इसका नाम भी प्रायः दार्शनिक या साम्प्रदायिक वर्णन होने के कारण रखा गया। शैवदर्शन या शैवतन्त्रानुसार इस पुराण में पशु, पाश और पशुपति का व्याख्यान है।

इस पुराण में 11000 श्लोक, 163 अध्याय और दो भाग हैं—(1) पूर्व तथा (2) उत्तरभाग। इसके प्रमुख वर्णन हैं—योगाख्यान, कल्पाख्यान, लिङ्गोत्पत्ति और उसकी उपासना, सनत्कुमार-पर्वत संवाद, दधीचिचरित, युगधर्म, और शैव अवतारों, व्रतों और तीर्थों का विस्तृत वर्णन है। यह ग्रन्थ शिवमहात्म्य से समन्वित शैवसम्प्रदाय का ग्रन्थ है।

वराहपुराण—यह वैष्णव सम्प्रदाय का पुराण है, इसमें विष्णु के वराहावतार का विशिष्ट वर्णन होने से यह नाम पड़ा।

नारदपुराण की पुराणविषयानुक्रमणिका के अनुसार इसमें 24000 श्लोक होने चाहिए, परन्तु प्रकाशित ग्रन्थ में केवल 10700 श्लोक ही हैं। इसके मुख्य विषय हैं—भूमि-वराहसंवाद, रैभ्यचरित, महातप कथा, गौरीचरित, विनायकचरित, अगस्त्यगीता, रुद्रगीता, महिषासुरवध, श्वेतोपाख्यःन, मथुरामहात्म्य गोकर्णमहात्म्य इत्यादि।

स्कन्दपुराण—इस पुराण का मूल अतिप्राचीन हो सकता है, क्योंकि इसका सम्बन्ध देवर्षि नारद के गुरु सनत्कुमार ऋषि से है, सनत्कुमार के ही अपर नाम थे—स्कन्दकुमार और कार्त्तिकेय। यह एक पुराणर्षि थे जिनका पुराण विद्या से घनिष्ठ सम्बन्ध था। लेकिन उपलब्ध स्कन्दपुराण की विषयसामग्री, भाषा आदि सब कुछ अत्यन्त आधुनिक और अर्वाचीन है। विशालता की दृष्टि से यह अनन्य पुराण है परन्तु ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से हीनकोटि का है।

स्कन्दपुराण में 81000 श्लोक और सप्त खण्ड हैं (1) माहेश्वर (2) वैष्णव (3) ब्रह्म (4) काशी (5) रेखा और प्रभासखण्ड। इस पुराण का अन्य विभाग संहिता के रूपों में मिलता है—(1) सनत्कुमारसंहिता (36000 श्लोक), (2) सूतसंहिता (6000 श्लोक), (3) शंकरसंहिता (30000 श्लोक), (4) वैष्णवसंहिता (5000 श्लोक), (5) ब्राह्मसंहिता (30000 श्लोक), और (6) सौरसंहिता (1000 श्लोक)।

इस विशाल ग्रन्थ के अनेक अंश स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हैं, यथा रेखाखण्ड में सत्यनारायणव्रतकथा सम्पूर्ण भारत में अत्यन्त लोकप्रिय और प्रचलित है।

इस समय इस पुराण का खण्डरूप ही उपलब्ध है। इस पुराण में व्रतों और तीर्थों का बड़े विस्तार से वर्णन है। मध्यकालीनभारतीयसामाजिक इतिहास के लिए स्कन्दपुराण का अनुसंधान अत्यंत उपभोगी रहेगा। इस

पुराण में अनेक उपाख्यानों का वर्णन भी है तथा मन्दिरों का इतिहास उल्लिखित है। भूगोलज्ञान के लिए भी यह अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है।

वामनपुराण— इसका नाम विष्णु के वामनावतार पर आधारित है।

इसमें 10000 श्लोक और 95 अध्याय हैं। इसके दो भाग हैं—(1) पूर्व भाग और (2) उत्तरभाग।

इसके कुछ प्रमुख वर्णन हैं—दक्षयज्ञविध्वंस, कामदहन, प्रह्लादनारायणयुद्ध, भुवनकोश, तपतीचरित, धुन्धुचरित, सूर्यमहिमा, गणेशचरित, इत्यादि। इस वैष्णवपुराण में शैवकथानकों का विशिष्ट वर्णन इस पुराण को साम्प्रदायिकता से पृथक् करता है।

कूर्मपुराण—विष्णु का कूर्मावतार (कच्छपरूप) प्रसिद्ध है। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों के द्रष्टा कूर्म गार्त्समद ऋषि थे, यह सम्भव है कि कूर्मऋषि ने अतिप्राचीनकाल में कूर्मपुराण का प्रवचन किया हो, परन्तु इस समय तो कूर्मपुराण का सम्बन्ध कूर्मावतार से ही माना जाता है।

कूर्मपुराण में 18000 श्लोक निर्दिष्ट है और इसकी चार संहिताएँ थीं— (1) ब्राह्मी (2) भागवती (3) सौरी और (4) वैष्णवी। परन्तु इस समय ब्राह्मीसंहिता के ही 6000 श्लोक मिलते हैं जो कर्मपुराण कहे जाते हैं। इस संहिता के दो भाग हैं=पूर्व और उत्तर जिनमें क्रमशः 52 और 44 अध्याय हैं। पूर्वभाग में लक्ष्मीप्रद्युम्नसंवाद, सर्गवर्णन, योगवर्णन, ऋषिवंश, युगधर्मवर्णनादि। उत्तरभाग में ईश्वरगीता और व्यासगीता प्रमुख प्रकरण हैं।

मत्स्यपुराण—इस पुराण का मूल पहिले बताया ज चुका है। इस पुराण की प्रमाणिक श्लोकसंख्या 14000 और 291 अध्याय हैं। यह पुराण प्रायः पुराणपञ्चलक्षण से समन्वित है। वंशों और वंशानुचरितो का विस्तृत वर्णन किया गया है। इस पुराण के कुछ विशिष्ट वर्णन हैं=मत्स्यमनुसंवाद, ब्रह्माण्डोत्पत्ति देवादिसृष्टि, मन्वन्तरकथन, सूर्यवंश, चन्द्रवंश, पितृवंश, श्राद्धकल्प, व्रतवर्णन, तीर्थमहात्म्यकथन, पार्वतीचरित, कुमारसम्भव, तारकवध, वाराणसीमहात्म्य, प्रवरवर्णन और भविष्यराजवंशवर्णन।

मत्स्यपुराण में समस्त पुराणों की विषयानुक्रमणिका (53 अध्याय)मिलती है। ऋषिवंशों का विशेषतः प्रवरों का वर्णन तथा भविष्य राजाओं में विशेषतः आन्ध्रसातवाहनवंशवर्णन उपादेय है।

गरुड़पुराण— इसमें 18000 श्लोक और 564 अध्याय हैं। यह पुराण दो खण्डों में विभक्त है— (1) पूर्वखंड और (2) उत्तरखंड। उत्तरखंड को प्रेत-कल्प भी कहते हैं।

पूर्वखंड के प्रमुख विषय हैं—योग, विष्णुसहस्रनाम विविध विद्याओं का वर्णन तथा रत्नपरीक्षा, राजनीति, आयुर्वेद, छन्दःशास्त्र, सांख्ययोग इत्यादि। प्रेतकल्प में प्रेतविद्या का विस्तार से प्रतिपादन है, इसमें शरीरविज्ञान और परलोकविद्या का एकत्र विस्तृत आख्यान है। विशेषतः किसी के मरने पर अथवा श्राद्ध के समय 'प्रेतकल्प' का पाठ किया जाता है।

ब्रह्माण्डपुराण—यह मूल में प्राचीन वायुपुराण का पाठान्तर मात्र है, तदनुसार इसमें वायुपुराण के समान ही 12000 श्लोक और चार पद हैं— (1) प्रक्रिया (2) अनुषङ्ग (3) उपोद्घातः और (4) उपसंहार। इस पुराण को 'वायवीयब्रह्माण्डपुराण' भी कहा जाता है। वायुपुराण की प्राचीनता और मूल के विषय में पहिले ही लिखा जा चुका है।

प्रथम पाद में नैमिषारण्याख्यान, हिरण्यगर्भोत्पत्ति, लोकवर्णन, विशेषतः भुवनकोश (भूगोल) का विस्तृत वर्णन है।

द्वितीय पाद में मन्वन्तरवर्णन, रुद्रोत्पत्तिकथा, ऋषिसर्ग, युगवर्णन, वेद शाखा, पृथिवीदोहनादि।

तृतीय पाद में सप्तऋषिवंश, देवदानवोत्पत्ति, सूर्यवंश और चन्द्रवंश वर्णन विस्तार से कथित हैं।

चतुर्थपाद में भविष्य मन्वन्तरों एवं राजवंशों का कथन है ब्रह्माण्ड या वायु सभी पुराणों के मूल थे, एक ही मूल पुराण के अष्टादशधा पाठान्तर ही अठारह पुराण हुये जिस प्रकार एक ही वेद की सहस्राधिक शाखायें हुईं, इस लिए कहा गया है—

> ब्रह्माण्डञ्च चतुर्लक्षं पुराणत्वेन पठ्यते।
> तदेव व्यस्य गदितमत्राष्टादशधा पृथक्॥

ब्रह्माण्डपुराण ही चार लाख श्लोक के रूप में पढ़ा जाता है। इसी का विस्तार करके अठारह पुराण बनाये गये।" व्यासजी ने पुराणविद्या 28 व्यासों की परम्परा में अपने गुरु जातूकर्ण्य से सीखी, इसके मूल प्रवक्ता वायु, नारद मार्कण्डेय, कुमारादि थे।

उपपुराण

शिवपुराण—कुछ लोग शिवपुराण को वायुपुराण के स्थान पर महापुराण मानते हैं, परन्तु भाषा और विषय की दृष्टि से शिवपुराण सर्वथा आधुनिक रचना सिद्ध होती है, कुछ विद्वान् इसको दशवीं या ग्यारहवीं शती की रचना मानते हैं। कुछ भी हो एक अर्वाचीन उपपुराण है।

शिवपुराण में 24000 श्लोक और द्वादश संहिताएँ हैं—(1)विद्येश (2) रौद्र (3) रौद्र (4) वैनायक (5) उमा (6) मातृ (7) रुद्र (8) कैलाश (9) शतरुद्र (10) कोटिरुद्र (11) आद्यकोटिरुद्र और (12) वायवीयसंहिता।

इस पुराण में मुख्यतः शिव का महात्म्य विविध कथानकों द्वारा कथित है।

देवीभागवतपुराण—भागवतपुराण के अनुकरण पर यह पुराण बनाया गया, इसमें उसी के अनुसार द्वादशस्कन्ध और 18000 श्लोक हैं। देवीभागवत में विष्णु के स्थान पर देवी का महात्म्य गाया गया है, स्पष्टतः यह शाक्त सम्प्रदाय का ग्रन्थ है।

उपपुराण संख्या और नाम—महापुराणों या पुराणों के समान ही अठारह पुराण माने जाते हैं यथा देवीभागवत (1 । 1 । 3) में इनके नाम इस प्रकार उल्लिखित हैं—(1) सनत्कुमार (2) नारसिंह (3) नारदीय (4) शिव (5) दौर्वासस (6) कापिल (7) मानव (8) औशनस (9) वारुण (10) कालिका (11) शाम्ब (12) सौर (13) पाराशर (14) आदित्य (15) माहेश्वर (16) भागवत (17) नन्दि और (18) वासिष्ठपुराण।

इनके अतिरिक्त ये उपपुराण और कहे गये हैं—(1) कौर्म (3) भार्गव (3) आदि (4) मुद्गल (·) कल्कि (6) देवी (7) महाभागवत (8) बृहद्धर्म (6) परानन्द (10) पशुपति (11) आत्मपुराण (12) गणेशपुराण (13) बृहन्नारदीय। इनके अतिरिक्त अन्य कई उपपुराण सुने जाते हैं। ज्योतिष की अप्रकाशित गार्गीसंहिता का 'युगपुराण' इतिहासज्ञों में अतिविख्यात है, इसमें भविष्यकालिक मौर्य, शुङ्ग, यवन, शक आदि राजाओं का महत्वपूर्ण उल्लेख है।

इस प्रकार पुराणसाहित्य अतिविशाल और विपुल है।

पुराणविषयनिदर्शन

पुराणों के मुख्यसर्गादि विषयों का संकेत पूर्वपृष्ठों पर किया जा चुका है, इसी प्रकार अन्य सामान्य और विशिष्ट विषय भी पूर्व संकेतित हैं। पुराण का मुख्य विषय है सृष्टिविद्या और मानव इतिहास। इन्हीं विषयों का यहां संक्षेप में निदर्शन प्रस्तुत करते हैं।

पद्माकारा पृथिवी— पुराण के भुवनकोश में मुख्यतः पृथिवी के भूगोल का वर्णन है, वहां पृथिवी को पद्माकारा (कमलवत्) पंखड़ीयुक्त बताया गया है—

पद्माकारा समुत्पन्ना पृथिवी सघनद्रुमा।
तदस्य लोकपद्मस्य विस्तेरण प्रकाशितम्॥

चारद्वीप—इस लोकपद्म पृथिवी के चार द्वीप पत्र (पत्ते) थे—

महाद्वीपास्तु विख्यातास्चत्वारः पत्रसंज्ञिता।
भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालंच पश्चिमे।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥

भद्राश्व (चीन), केतुमाल (पश्चिम एशिया ईरानादि), उत्तरकुरु (सोवियत रूस) और भारतवर्ष-विख्यात पत्ररुपी द्वीप हैं।"

भारतद्वीप—भारतवर्ष के नौ भाग या द्वीप थे—

इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णी गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः॥

इन्द्रद्वीप=वर्मा, कसेरु=मलयद्वीप, ताम्रपर्णी=सिंहल, गभस्तिमान्=जावादिद्वीप, नागद्वीप=अण्डमाननिकोबार, सौम्य=सुमात्रा, गन्धर्व=तम्बरु, न्यूगिनी, वारुण=बोर्नियों।

दशावतार—विष्णु के प्रसिद्ध दश अवतारों का संक्षेप में उल्लेख वायुपुराण में इस प्रकार हुआ है—

धर्मान्नारायणस्तस्मात्संभूतोश्चाक्षुषेऽन्तरे।
यज्ञं प्रवर्तयामास चैत्ये वैवस्वतेऽन्तरे॥

द्वितीयो नरसिंहोऽभूद्रुद्रसुरपुरस्सरः ।
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमेयुगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीय वामनोऽभूत् ।।
त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।।
नष्टे धर्मे चतुर्थश्च मार्कण्डेयपुरस्सरः ।
पञ्चमः पञ्चदशम्यां तु त्रेतायां संबभूव ह ।
मान्धाता चक्रवर्त्तित्वे तस्थौ उतथ्यपुरस्सरः ।
एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभूत् ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः ।
चतुर्विंशे युगे रामो वशिष्ठेन पुरोधसा ।।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः ।
अष्टमो द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् ।
वेदव्यासस्ततो जज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः ।।
तथैव नवमो विष्णुरदित्यां कश्यपात्मजः ।
देवक्यां वसुदेवात्तु ब्रह्मगार्ग्यपुरस्सरः ।।
अस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति ।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ।
दशमो भाव्यः संभूतो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः ।।

"चाक्षुपतन्वन्तर में धर्म से नारायण का अवतार हुआ, जिन्होंने वैवस्वतमन्वन्तर में यज्ञ का चैत्य में प्रवर्तन किया । विष्णु के द्वितीय अवतार नरसिंह रुद्र को आगे करके हुये । सप्तम त्रेतायुग में लोकों की बलि के अधीन होने पर तृतीय अवतार वामन का हुआ । दशम त्रेतायुग में मार्कण्डेयपुरस्सर चतुर्थ अवतार दत्तात्रेय का हुआ, तब धर्म नष्ट हो गया था । पन्द्रहवें त्रेतायुग के पञ्चम अवतार चक्रवर्ती मान्धाता का हुआ, जिनके पुरोहित उतथ्य आङ्गिरस थे । उन्नीसवें त्रेता में समस्त क्षत्रियों का अन्त करने वाले जामदग्न्य परशुराम का षष्ठविष्णु-अवतार हुआ, उस समय कौशिक विश्वामित्र उनके पुरोहित थे । चौबीसवें त्रेतायुग में वसिष्ठ पुरोहित की उपस्थिति में सप्तम अवतार दाशरथिराम का हुआ, जिन्होंने रावण का वध किया । अट्टाइसवें युग में पाराशर से जातूकर्ण्यपुरस्सर वेदव्यास का अष्टम अवतार हुआ । इसी युग में कश्यपपुत्र विष्णु अदितिरूपिणी देवकी में वासुदेव कृष्ण का नवम वैष्णव अवतार हुआ, जिनके पुरोहित गार्ग्यऋषि थे । कलियुग के अन्त में विष्णु का दशम अवतार कल्कि विष्णुयशा के नाम से हुआ जो पराशरगोत्रीय ब्राह्मण थे तथा कोई याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित थे ।"

गाथायें—इतिहापुराणों में अनेक प्राचीन गाथाश्लोक उद्धृत मिलते हैं जो किन्हीं प्राचीनपुराणग्रन्थों से ली गई है। इनमें से कुछ गाथायें ब्राह्मण ग्रन्थों में भी मिलती है, यथा दौष्यन्तिभरत सम्बन्धि-गाथायें ऐतरेयब्राह्मण में किसी प्राचीनपुराण से उद्धृत की हैं। कुछ गाथाओं का निदर्शन द्रष्टव्य है।

मान्धाताक्षेत्र—यावतसूर्यः उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति।
सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥

"जहाँ से सूर्य उदित होता है और जहाँ तक ठहरता है, वहाँ तक यौवनाश्व मान्धाता का साम्राज्य था।"

अलर्क—षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
नालर्कादपरो राजन् मेदिनी बुभुजे युवा।

"अलर्क के अतिरिक्त 66000 वर्ष (दिन=184 वर्ष) और किसी राजा ने युवारूप में राज्य नहीं किया।"

ययातिगीत—न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

"इच्छाओं की पूर्ति से इच्छाएं शान्त नहीं होती, बल्कि वे आग में घी डालने के समान उपभोग में बढ़ती हैं"

भरतगाथा—भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे जनाः।
नैवापुर्नैवाप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥

" न भरत से पूर्व और न पश्चात् उसके महान् कर्म (यश.) को किसी ने प्राप्त किया, जिस प्रकार हाथों से आकाश को कोई नहीं पकड़ सकता।

रामगाथा—महाभारत, रामायण और पुराणों में राम-सम्बन्धि ये गाथायें मिलती हैं—श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषिता।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
अयोध्यापतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ॥

हरिवंश पु० 1 । 41 । 50-51)

"श्यामवर्ण, युवा, लोहिताक्ष (लाल आँख वाले), तेजस्वी मुखवाले मितभाषी, अजानुबाहु, सुमुख, सिंह स्कन्ध, महाभुज राम ने ग्यारह सहस्रवर्ष (=दिन=31 वर्ष) अयोध्या का राज्य किया।"

भविष्यवर्णन

कल्कि—बहुत कम विद्वानों ने कल्कि की ऐतिहासिकता पर बहुत कम ध्यान दिया है। कल्किपुराण में कल्कि का विस्तृत इतिहास मिलता है। तदनुसार शम्भल ग्राम में विष्णुयशा ब्राह्मण जो पाराशर्यगोत्रीय थे, के घर में जन्म हुआ। उनकी माता का नाम सुमति था, वे चार भ्राता थे—कवि, प्राज्ञ, सुमन्त्र और कल्कि। कल्कि का अवतार विशाखयूप राजा के समय हुआ था, यह विशाखमूप मगध के बालक प्रद्योतवंश का तृतीय राजा था। विशाखयूप का राज्यकाल पं. भगवद्दत्त के अनुसार कलिसम्वत् 1050 से 1100 तक था—

विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशतं समाः ॥

(वायुपुराण)

यह समय गौतमबुद्ध से प्राय 200 वर्ष पूर्व था, पुराणों की गणना के अनुसार बुद्ध का समय प्रायः 1800 वि० पू० था। अतः कल्कि विशाखयूप के समकालीन और बुद्ध से दो शती पूर्व हुये। विशाखयूप की सहायता से कल्कि ने सम्पूण भारत की दिग्विजय की और म्लेच्छों का वध किया—

कल्किर्विष्णूयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ।
दशमो भाव्यः संभूतो याज्ञवल्क्य पुरस्सरः ॥
अनुकर्षन्सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसंकुलाम् ।
प्रहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ।
गान्धारान्पादरांश्चैव पुलिन्दान् दरदान् खशान् ।
तुषारान्बर्बरांश्चैव पुलिन्दान् दरदान् खशान् ।
प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद् बली ॥

"कल्कि विष्णुयशाः पाराशर्य प्रतापवान् यालवल्क्यपुरस्सर दशम वैष्णव अवतार थे, उन्होंने हाथी, घोड़े और रथ की सेना का संचालन करते हुये लाखों ब्राह्मणसैनिकसहित गान्धार, पह्लव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, पुलिन्द दरद, खश आदि म्लेच्छों का वध करके साम्राज्य स्थापित किया।

वह पच्चीस वर्षों तक शासन करते रहे—

पञ्चाविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशतिर्वै समाः ।
विनिघ्नन्सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः ॥

पुराणरचनाकाल

कुछ विद्वानों का मत है कि कृष्णद्वैपायन पाराशर्यव्यास ही पुराण विद्या के आदिम प्रवक्ता थे, उनके अनुसार व्यासजी ने उत्तरवैदिक युग में एक पुराण संहिता रची, जिसमें 4000 श्लोक थे, जिनका उपबृंहण अष्टादश और उपपुराणों के रूप में हुआ। इसके विपरीत हमारा दृढ़ मत है कि पाराशर्यव्यास पुराणविद्या के अन्तिम प्रवक्ता थे, उनसे पूर्व शतशः अथर्वाङ्गिरस ऋषियों (मार्कण्डेय, वशिष्ठादि) एवं नारदादि ने शतशः इतिहास-पुराणों का निर्माण किया था, इसके प्रमाण वेदसंहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों एवं अन्य प्राचीन ग्रन्थों से दिये जा चुके हैं। पाराशर्य व्यास ने उन प्राचीनपुराणों का सार चतुःसाहस्री पुराणसंहिता में संकलित किया और प्राचीन इतिहास ग्रन्थों का सार महाभारत में संग्रहीत किया। प्राचीन (प्राक्पाराशर्य) पुराणों के सहाय्य से व्यासशिष्यों (रोमहर्षण) तथा प्रशिष्यों (शांशपायन, हारीतादि, उग्रश्रवासौति) ने चतुःसाहस्री पुराणसंहिता को आधार बनाकर 18 पुराण एवं अनेक उपपुराण लिखे। इन पुराणों एवं उपपुराणों में विभिन्न युगों में विशेषतः गुप्तकाल में अनेक विद्वानों ने हस्तक्षेप किया। इन ग्रन्थों के पर्याप्त प्राचीन अंश निकाल दिये गये और युगानुसार अनेक नवीन अंश जोड़े गये, अतः पुराणों में क्षेपकों का बाहुल्य हो गया। अतः पुराण के रचनाकाल पर संक्षेप में विचार करते हैं।

ब्रह्मपुराण—'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव' इस सिद्धान्त के अनुसार स्वयम्भू ब्रह्मा अन्य सभी विद्याओं के मूल प्रवक्ता थे, इसी दृष्टि से 'ब्रह्मपुराण का सर्वप्रथम स्थान है, जिसके मूलप्रवक्ता स्वयम्भू ब्रह्मा थे। इस समय उपलब्ध 'ब्रह्मपुराण' में भले ही एक भी श्लोक ब्रह्मकृत नहीं हैं, परन्तु क्योंकि स्वयम्भू ब्रह्मा पुराणविद्या के आदिम प्रवक्ता थे, अतः उनके नाम पर प्रथम पुराण का नाम 'ब्रह्मपुराण' रखा गया।

अष्टादश महापुराणों में अन्तर्भुक्त प्रथम ब्रह्मपुराण का महाभारतकाल में (प्रायः 3000 वि० पू०) व्यासशिष्य रोमहर्षण सूत ने बलराम की तीर्थयात्रा से पूर्व नैमिषारण्य में प्रवचन किया था। अनेक आधुनिक विद्वानों ने उपलब्ध ब्रह्मपुराण के रचनाकाल पर ऊहापोह की है।

इस समय उपलब्ध पुराण मूलब्रह्मपुराण का सर्वथा परिवर्तित रूप है। इसमें महाभारत, वायुपुराण आदि के शतश. श्लोक मिलते हैं। इस समय यह ग्रन्थ पुराणलक्षणसमन्वित न होकर तीर्थमहात्म्यग्रन्थ बना दिया

गया है। इस पुराणसंस्करण की रचना सम्भवत दक्षिणभारत में दण्डकारण्य में प्रवाहशील गौतमीनदी के तट पर हुई थी, जैसा कि इसके अन्तःसाक्ष्य से ज्ञात होता है—

श्रूयते दण्डकारण्ये सरित् श्रेष्ठास्ति गौतमी। (ब्र० पु० अ० 129)

पृथिव्यां भारतवर्षं दण्डकं तत्र पुण्यदम्। (11अ० 88) मूल ब्रह्मपुराण इस समय लुप्त है, इसका एक बड़ा प्रमाण है कि प्राचीन निबन्धकारों यथा बल्लालसेन के दानसागर में उद्धृत श्लोक उपलब्ध ब्रह्मपुराण में नहीं मिलते अतः प० बलदेव उपाध्याय प्रकाशित ब्रह्मपुराण का समय 14 या 15 वीं शती मानते हैं वास्तव में बात ऐसी नहीं है। यह तो सच है कि उपलब्ध ब्रह्मपुराण में पर्याप्तभाग अत्यन्त अर्वाचीन है और इसके अनेक अध्याय गुप्तकाल या 10 वीं बारहवी शती में जोड़े गये हों परन्तु ग्रन्थ का पर्याप्त अंश महाभारतकालीन ही है क्योंकि जो श्लोक महाभारत या वायुपुराण से अक्षरशः मिलते हैं वे निश्चय व्यास या व्यासशिष्यों की रचनायें हैं। पुराण के तीर्थयिषयंक अधिकांश वर्णन निश्चय ही आधुनिक हैं।

पद्मपुराण—कुछ विद्वान् यथा डा० लूडर्स आदि पद्मपुराण के कुछ आख्यानों यथा ऋष्यश्रृङ्ग कथा एवं तीर्थयात्रा वर्णन को महाभारत वनपर्व के वर्णनों से प्राचीनतर मानते हैं, और कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक पर पद्मपुराण का प्रभाव मानते हैं ये दोनों ही बाते अलीक एवं अप्रामाणिक है। पद्मपुराण का सूतकृत पाठ निश्चय ही प्राचीन एवं महाभारत कालीन था, लेकिन पाठ ज्यों की त्यों उपलब्ध पद्मपुराण में है, यह मानना अपने आपको छलना है। कालिदास के नाटक के आधार ही वर्तमान पद्मपुराण में शकुन्तलोपाख्यान घड़ा गया है, महाभारत का उपाख्यान ही प्राचीनतर, मूल एवं ऐतिहासिक है। पद्मपुराण के अनेक अंश कालिदास से प्राचीनतर तो हो सकते हैं परन्तु स्थूलरूप से यह पाठ कालिदास से उत्तरकालीन, किंवा गुप्तोत्तरकालीन, सम्भवतः तृतीयशती का है।

विष्णुपुराण—डा० आर० सी० हाजरा[1] का मत कि विष्णुपुराण का कृष्णचरित हरिवंशपुराण के कृष्णचरित से प्राचीनतर है, सर्वथा भ्रामक है। द्वादशसहस्रात्मक मूलहरिवंश उग्रश्रवा सौति की रचना थी, इस समय

(1) पुराणिक रिकार्डस् ऑन हिन्दू रिट्स एण्ड कस्टम्स (पृ० 23)

हरिवंश में चारसहस्र से अधिक श्लोक प्रक्षिप्त हैं अनेक पाठान्तर भी हैं और कलिवर्णन जैसे अंश शुङ्गकाल या गुप्तकाल में जोड़े गये हैं, फिर भी हरिवंश का प्राचीनरूप प्रायेण अक्षुण्ण है, यह पहिले बताया जा चुका है कि हरिवंश में प्रह्लादभक्ति जैसी वस्तुओं का सर्वथा प्रभाव है, जबकि उपलब्ध विष्णुपुराण में भक्तिभावना का प्राचूर्य है। अतः हरिवंश का पाठ विष्णु के उपलब्ध पाठ से प्राचीनतर हैं।

इस तथ्य का पहिले ही उल्लेख किया जा चुका है कि विष्णुपुराण की प्रवक्तृपरम्परा अन्य पुराणों की प्रवक्तृपरम्परा से पर्याप्त भिन्न है। वायु-पुराणादि में उनके प्रवक्ता ब्रह्मा, वायु आदि 28 व्यास कथित हैं, जबकि विष्णुपुराण के प्रमुख प्रवक्ता ऋभु, भागुरि, दधीचि, पुरुकुत्स, नर्मदा, धृतराष्ट्र नागादि हैं[1] स्पष्ट ही इस परम्परा का सम्बन्ध दक्षिण भारत के नागों से सिद्ध होता है, इतिहास में इक्ष्वाकुवंशीय राजा पुरुकुत्स का सर्वप्रथम विवाह-सम्बन्ध नागकन्या नर्मदा से हुआ। अतः इस पुराण की दक्षिणात्य परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। इसकी पुष्टि प्रकारान्तर से तमिल साहित्य से भी होती है। विद्वानों ने तमिलग्रन्थों से एक विशेष उद्धरण उद्धृत किया है 'कठलवणं पुराँणमोदियन्' (विष्णुपुराण का विशेषज्ञ)। यह वाक्य तमिलग्रन्थ 'मणिमेखलै' में मिलता हैं। 'मणिमेखलै' ग्रन्थ का रचनाकाल संगमयुग में द्वितीयशती माना जाता है, यह काल और भी प्राचीनतर हो सकता है। स्वयं विष्णुपुराण से इसकी दाक्षिणात्य परम्परा की पुष्टि होती है।

मूल विष्णुपुराण की स्वतन्त्र दाक्षिणात्यपरम्परा तो महाभारतकाल से अनेक सहस्राब्दी पूर्व अपान्तरतमा सारस्वत (नवम व्यास) भार्गव और पुरुकुत्स ऐक्ष्वाक के समय की है। वर्तमान पाठ का मूल पाराशर ने भारत युद्ध से पूर्व मैत्रेय (बकदाल्भ्य) ऋषि को सुनाया, परन्तु उपलब्ध विष्णुपुराण का पाठ वैष्णवभक्ति के प्रभाव में वाकाटक नागयुग (विक्रमपूर्व) में बनाया गया, अतः उपलब्ध पाठ भी दो हजार वर्षों से अधिक पुराना है।

वायुपुराण—इसकी प्राचीनता और मूल का उल्लेख पूर्वपृष्ठों पर किया जा चुका है। इसके कलिकालवर्णन जैसे कुछ अंशों को छोड़कर सम्पूर्ण ग्रन्थ उग्रश्रवा सौति और शौनकीय दीर्घसत्र (2900 वि० पू०) के समय का है और पाराशर्य व्यास कृत चतुःसाहस्रीपुराणसंहिता के चार हजार श्लोक इसी में

---

(1) भृगुणा पुरुकुत्साय नर्मदायै च चोक्तवान्।
नर्मदा धृतराष्ट्राय नागायपूरणाय च। (विष्णुपु० 6।8।45)

समाविष्ट मिलते हैं। यह कालपूजित और ऋषिपूजितपुराण व्यासपूर्व पुरूरवा के समय हर्षवर्धन (सप्तमशती) तक समान रूप से महनीय रहा और आज भी सर्वाधिक प्रमाणिक पुराण है।

इस पुराण के कुछ अंश अर्वाचीन भी हैं जैसा कि संकेत किया जा चुका है।

श्रीमद्भागवतपुराण—यह पुराणपञ्चलक्षण समन्वित होने पर भी प्रामाणिक पुराण न होकर भक्ति या ज्ञानशास्त्र है। इस ग्रन्थ की रचना भी दक्षिण भारत में वैष्णवभक्तों के प्रभाव में हुई। काव्यज्ञान और भक्तिशास्त्र की दृष्टि से ग्रन्थ का रचयिता और विचक्षणबुद्धि का था, परन्तु उसमें ऐतिहासिकबुद्धि की न्यूनता थी। इस ग्रन्थ में द्रविड़देश और उसके नदी एवं तीर्थों का महात्म्य गाया गया है, अतः यह दक्षिणात्य वैष्णवपरम्परा में रचा गया। मध्यकालीन आचार्य रामानुज, मध्वाचार्य आदि ने भागवत के श्लोक अपने ग्रन्थों में उद्धृत किये, जिनका समय सप्तम शती से द्वादश शती के मध्य में था। कुछ विद्वान् इसको बोपदेव (14 वीं शती) की रचना मानते हैं, यह मत सर्वथा अयुक्त के, परन्तु भागवतपुराण का व्यास, सूत या शौनक से सीधा सम्बन्ध नहीं था, यह सब कुछ होते हुये भी यह कोई आधुनिक ग्रन्थ नहीं है। अनेक प्रमाणों से यह विक्रम की प्रारम्भिक शती की रचना सिद्ध होती है, क्योंकि जैनग्रन्थ 'अनुयोगद्वारसूत्र' में भागवत का उल्लेख है, जो दो हजार वर्ष पुराना ग्रन्थ है।

यह सम्भव है कि भागवत की रचना विष्णुपुराण के समान दक्षिण भारत में नवम व्यास अपान्तरतमा सारस्वत की परम्परा में हुई हो, क्योंकि इसमें सारस्वतकल्प का वर्णन है—

> सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युः नरोत्तमाः।
> तद्वृतान्तोद्भवं लोके तद् भागवतमुच्यते॥
> (मत्स्यपुराण 53। 21)

उपलब्ध भागवत अन्य पुराणों के विपरीत एक हाथ और एक काल की रचना है।

नारदपुराण—डा० हाजरा के मतानुसार उपलब्ध नारदपुराण की रचना दशमी शती में हुई, क्योंकि भारवि का एक श्लोक (आपदां परमं पदम्) नारदपुराण में मिलता है। इसमें बौद्धों की निन्दा की गई है।

मूल या आदिम नारदपुराण इतना ही पुराना था जितने पुराने देवर्षि नारद थे, यह पहले ही मीमांसा की जा चुकी है, वर्तमान प्रकाशित नारद-पुराण भले ही सातवीं या दशवीं शती की रचना मानी जाय, परन्तु अष्टा-दशपुराणों की परम्परा में इसका मूल पाठ अधिसीमकृष्ण और शौनक के समय (2900 वि० पू०) का होना चाहिये। इस समय इसके प्रक्षिप्तांश निश्चय ही अत्यंत अर्वाचीन हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मार्कण्डेपुराण— अधिकांश विद्वान्, विशेषतः पार्जीटर और वासुदेवशरण अग्रवाल, इस ग्रन्थ की रचना विक्रम की पांचवी शती में चन्द्रगुप्त विक्रमा-दित्य के समय में मानते हैं।

मूल मार्कण्डेयपुराण देवासुरयुग में मार्कण्डेयऋषि ने रचा था, उस मूल-ग्रन्थ का कुछ भाग मार्कण्डेयसामस्यापर्व के रूप में महाभारत, वनपर्व में मिलता है। उसी मूल मार्कण्डेय के आधार पर महाभारतकाल में व्यासशिष्य जैमिनि को यह पुराण पक्षियों ने सुनाया, अतः इस पुराण का वर्तमान पाठ महाभारतकालीन हैं, इसमें क्षेपक भी अधिक नहीं है, हाँ कुछ पाठ परिवर्तन संभव है। जो लोग इसमें 600 ई० की रचना मानते हैं, उनका मत अत्यन्त भ्रामक एवं बुद्धिविपर्यास है।

अग्निपुराण— मूल अग्निपुराण किसी आंगिरस या बार्हस्पत्यऋषि की प्राग्भारतकालीन रचना थी। वर्तमानपाठ का मूल महाभारतकालीन था, लेकिन उपलब्धपाठ गुप्तकाल के अन्त (चतुर्थदशी) का है। कुछ विद्वान् इसको सातवीं या दशवीं शती का ग्रन्थ मानते हैं।

भविष्यपुराण— मूल भविष्यपुराण त्रेतायुगीन ऋक्ष व्यास (वाल्मीकि) से पूर्व भी विद्यमान था। वर्तमानपाठ का मूल शौनक के दीर्घसत्र में रचा गया। परन्तु भविष्यपुराण के पाठों में हस्तक्षेप 19 शती में अंग्रेजी राज्य-काल तक होता रहा।

ब्रह्मवैवर्तपुराण— इस पुराण का मूल प्राचीन नहीं था, सम्भवत वैष्णवों और वैदान्तियों की परम्परा में इसका उद्भव हुआ। यह सम्भव है मूल ब्रह्मवैवर्त बादरायण ब्रह्मसूत्रों के आसपास (2800 वि० पू०) रचा गया हो। परन्तु इस ग्रन्थ का वर्तमान पाठ अत्यन्त आधुनिक है और इसके कुछ अंश तो द्वादशी या पन्द्रहवीं शती में रचे गये। कुछ विद्वान् इस पर गीतगोविन्द-कार जयदेव का प्रभाव मानते हैं।

लिंगपुराण—इसका मूल भी ब्रह्मवैवर्त के समान महाभारत युद्धकाल में था, इस पुराण में क्षेपक अतिस्वल्प है और अपने मूलरूप में ही यह प्रकाशित है, जो लोग इसको अष्टमी शती की रचना मानते हैं वे महान् भ्रम में हैं।

वराहपुराण—इसका मूल प्राग्भारतकाल या भारतयुद्ध काल था परन्तु शककाल म्लेच्छयुग में (विक्रमपूर्व) इसका वर्तमानपाठ बनाया गया जबकि भारत में सूर्यमंदिरों और सूर्यपूजा का विशेष प्रचलन हुआ। इसको दशम-शती की रचना मानना कोरी कल्पना मात्र है।

स्कन्दपुराण—इसके मूल प्रवक्ता सनत्कुमार ऋषि नारद के गुरु थे, अतः इसका मूल देवयुग में था। महाभारतयुग में व्यासशिष्यों ने उस प्राचीन सनत्कुमार पुराण का पुनस्सस्करण बनाया और उसी की छाया पर प्राप्त स्कन्दपुराण रचा गया। कुछ लोग इसको नवमशती में रचित मानते हैं वे भ्रम में ही हैं, यद्यपि इस पुराण का उपलब्ध पाठ बहुत प्राचीन नहीं, फिर भी वह आन्ध्रसातवाहन युग के अन्त (300 वि० पू०) का है।

वामनपुराण—इसका मूल महाभारतकाल में होते हुए भी कालिदास के अनन्तर इसके पाठों में परिवर्तन किया गया और शैवों ने इस वैष्णवपुराण को शैव बना दिया, अतः वर्तमान पाठ को विक्रम की प्रथम या द्वितीय शती में बनाया गया, जबकि शैव राजाओं का प्राबल्य था।

कूर्मपुराण—यह वामनपुराण के तुल्य प्राचीन है, अतः व्यासशिष्य प्रोक्त होने पर भी इसका पाठ गुप्तयुग (प्रथम शती) में बनाया गया।

मत्स्यपुराण—इस पुराण में वर्णित (म० पु० 24 अ०) उर्वशी आख्यान का कालिदासकृत 'विक्रमोर्वशीयनाटक' से पर्याप्त साम्य है, अतः इसका वर्तमान पाठ तो कालिदास के अनन्तर निर्मित है, परन्तु इसका मूल शतपथोक्त पारिप्लवोपाख्यान से भी प्राचीनतर है, कम से कम वर्तमान मत्स्यपुराण का मूल पाठ व्यासशिष्यों का बनाया हुआ है। वर्तमान पाठ सातवाहनोत्तरयुगीन है।

गरुड़पुराण—इस पुराण का आयुर्वेदीय भाग वाग्भट्टकृत 'अष्टांगहृदय' ग्रन्थ से साम्य रखने के कारण विद्वान् इसको नवमशती की रचना मानते हैं। वाग्भट्ट चन्द्रगुप्तसाहसांक (शब्द सम्वत्प्रवर्तक, 135 वि० स०) का सभ्य था

अतः पुराण का उपलब्ध पाठ द्वितीयशती का है, परन्तु इस पुराण की मूल परम्परा मत्स्य के समान पारिप्लवोपाख्यान से पूर्वतर की है।

ब्रह्माण्डपुराण—यह वायुपुराण का एक पाठान्तर मात्र होने से, उसी के तुल्य प्राचीन हैं। मूल पाठान्तर, दोनों के पुराणों के सूतशिष्यों द्वारा निर्मित हैं, कुछ श्लोक प्रक्षिप्त हो सकते हैं, अतः इस आधार पर इसे गुप्तयुग की रचना मानना महती भ्रान्ति है, व्यास के श्लोक इस पुराण में सर्वाधिक सुरक्षित हैं।

भारतोत्तरकालीन कवि और काव्य

महाभारत से अश्वघोष या भास एवं कालिदास पर्यन्त किसी प्रसिद्ध कवि या काव्य की उपलब्धि या ख्याति नहीं है। यह समय लगभग 3000 (तीन सहस्र) वर्ष था। क्या इतने सुदीर्घकालपर्यन्त किसी काव्य या नाटक की रचना ललितसंस्कृत भाषा में नहीं हुई। यह सर्वथा असम्भव है। निश्चय तीन सहस्र वर्ष के अन्तर्गत शतशः एव सहस्रश: कवि और नाटककार हुये। इनमें से थोड़े से प्रसिद्ध कुछ कवियों का इतिवृत्त लिखते हैं, परन्तु इस समय इनका कोई काव्य उपलब्ध नहीं है।

चरक और चारकश्लोक—व्यासजी के प्रसिद्ध शिष्य वैशम्पायन का अपर नाम चरक था, इन्होंने यजुर्वेद की चरकसंहिता, चरकब्राह्मण आदि एवं आयुर्वेद की चरकसंहिता लिखी थी। महाभारत में वैशम्पायन प्रणीत श्लोकों की संज्ञा 'चारकश्लोक' थी, इसका उल्लेख 'काशिकावृत्ति' एवं अन्य व्याकरण ग्रन्थों में हुआ है। चरक वैशम्पायन व्यास के समान ही पूज्य ऋषि एवं विद्वान् थे। इसी प्रकार महाभाष्य में चरकशिष्य 'तैत्तिरि-श्लोक' एवं माधवीयधातुवृति में 'औखीयश्लोक' का उल्लेख मिलता है। ये श्लोक निश्चय किसी काव्य के भाग थे।

व्याडि और बलचरित—पाणिनि का मातुल और उनका समकालीन प्राचार्य व्याडि महाकवि भी था। उसने 'संग्रह' नामक अतिविशाल व्याकरण शास्त्र तो लिखा ही था, उसके अतिरिक्त रमायनशास्त्र, मीमांसा, वेदान्त आदि के साथ 'बलचरित' नाम का महाकाव्य लिखा था, जो आकार में महाभारत से कम नहीं था, जैसा कि समुद्रगुप्त नेकृष्णचरित में लिखा है—'बलचरितं कृत्वा यो जिगाय भारतं व्यासं च ; (श्लोक 17)।

शांखायन शांखायन संहिता और शांखायन ब्राह्मण के कर्ता अथवा शंख ऋषि के वंशज किसी शांखायन ने पाणिनि से पूर्व 'कण्ठाभरण' नाम का काव्य लिखा था —'शांखायनाय कवये नमोऽस्तु कण्ठाभरणकर्त्रे।

---

(1) कृष्णचरित (श्लोक 13),

पाणिनि—प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनपुत्र 'महाकवि' भी थे इन्होंने 'जाम्बवतीविजय' या 'पातालविजय' नामका यशस्वी महाकाव्य अत्यन्त अलंकृत भाषा में लिखा था। इस काव्य में 18 सर्ग थे, यह पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक ने 33 प्राचीन संस्कृतग्रन्थों के उद्धरणों से सिद्ध किया है, जिसके उद्धरण इन ग्रन्थों में मिले हैं—[1]कुछ लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि यह काव्य दाक्षीपुत्र पाणिनि का नहीं, इस नाम के किसी कवि का होगा, क्योंकि उनके मतानुसार ऐसा अलंकृत लौकिक काव्य इतने प्राचीन काल में नहीं लिखा जा सकता यह सब मन घढ़न्तकल्पना के सिवा कुछ नहीं है, जब ऋग्वेद में उच्चकोटि का अलङ्कृत काव्य मिलता है और व्यास से पूर्व सैकड़ों कवि ललित काव्य लिख चुके थे तो पाणिनि जो शब्दशास्त्र का निष्णात विद्वान् था, ऐसा श्रेष्ठकाव्य क्यों नहीं लिख सकता। कुछ लोग पाणिनि के यत्र तत्र उद्धृत श्लोकों को गीतिकाव्य मानते हैं, यह भी भ्रम है। क्षेमेन्द्रादि ने उनका निम्न सरस श्लोक उद्धृत किया है—

ऐन्द्रं धनुः पाण्डुपयोधरेण शरद् दधानार्द्रनखक्षताभम्।
प्रसादयन्ती सकलंकमिन्दुम् तापं रवेरभ्यधिकं चकार॥

"पीले मेघ या स्तन के रूप में नखक्षतरूपी इन्द्रधनुष को धारण करती हुई शरदरूपिणी युवती सकलंक चन्द्रमा को प्रसन्न करती हुई सूर्य ताप से भी अधिक ताप को बढ़ाती है।[2] यह श्लेष का उदाहरण है।

वररुचि कात्यायन—पाणिनि के समान वररुचि कात्यायन ने व्याकरण (वार्त्तिक) के साथ' स्वर्गारोहण' नाम का काव्य भी लिखा था—

यःस्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।
काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः॥ (कृ०च० 14).

'कात्यायन वररुचि ने 'स्वर्गारोहण' काव्य लिखकर मानो पृथ्वी पर स्वर्ग ही उतार दिया। इस मनोहर काव्य से वररुचि कवि प्रख्यात हुये। इसमें सम्भवतः महाभारत के 'स्वर्गारोहण' पर्व की कथा कथित हो। पतञ्जलि ने महाभाष्य (4-3-101) में वाररुचकाव्य का उल्लेख किया है।

---

(1) द्र० संस्कृतव्याकरणशास्त्र का इतिहास 1भाग, पृ-161-165.

(2) किसी कात्यायन ने भ्राजसंज्ञक' श्लोकों की रचना की थी, इनमें एक पतंजलिने उद्धृत किया है—यदुम्बरवर्णानां घटीनां मण्डलं महत्। पीतं न गमयेत् स्वर्गं किं तत् क्रतुगतं नयेत्॥ (महाभाष्य॥)

पाणिनि, व्याडि, शांखायन, वररुचि कात्यायन सभी कवि शौनक के दीर्घसत्र और अधिसीमकृष्ण पाण्डव (2700 वि० पू०) के प्राय: समकालीन थे।

देवल कृत इन्द्रविजयकाव्य—इसी समय बृहस्पति तुल्य विद्वान् यशस्वी कवि देवल ने 'इन्द्रविजय' नाम का काव्य लिखा था।

चन्द्र चूडचरित— प. भगवद्दत्त ने लिखा है—'महामन्त्री चाणक्य ने चन्द्रगुप्तमौर्य चरित' का एक चन्द्रचूड़चरित' लिखवाया था (भा० वृ० इ० भाग 1 पृ. 13)

सुबन्धु—यह चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र बिन्दुसार की सभा का राजकवि था, इसने 'वत्सराजचरित' नाटक या काव्य लिखा था। सम्भवत 'वत्सराजरित' काव्य था और 'उदयनचरित' नाटक था।

पतञ्जलि—समुद्रगुप्त के अनुसार महाभाष्यकार पतञ्जलि ने 'महानन्द' नामका काव्य लिखा था, जो योगव्याख्यानभूत था—

महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्भुतम्।
योग व्याख्यानभूतं तद्रचितं चित्तदोषहृम्॥ (कृ. च. श्लोक 21)

इस काव्य की कथावस्तु क्या थी। यह केवल अनुमान का विषय है।

वर्धमान—इसका 'भीमजय' नाम का काव्य था, जिसका समुद्रगुप्त ने संक्षेप किया है।

चीनदेव—विक्रमपूर्व सम्भवत प्रथमशती में चीनदेश से आकर चीनदेव ने मागधी और संस्कृत में 'बुद्धचरित' लिखा था—

अकरोद् बुद्धचरितं मागध्यामपिवाच्यपि।
पीयूषलिप्तवचनश्चीनदेवो व्रती कवि: (कृ०च. 29, 30)

मिहिरदेव—यह फारस देश के थे, जिन्होंने शिखरिणी छन्द में सूर्यस्तव (शतक) लिखा था। इन्होंने सूर्यमन्दिर भी बनवाया।

शूद्रकचरित और रामिल सोमिल—प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् प्रवर्तक शूद्रक ही विक्रमादित्य (उज्जयनीनाथ) था। इसके अपर नाम थे इन्द्राणी गुप्त अग्निमित्र, विक्रमादित्य, विषमशील और हर्ष। रामिल सोमिल कवियों का स्मरण स्वयं कालिदास ने किया है। इन दोनों कवियों ने शूद्रककथा

लिखी थी जो संभवत पद्य में थी। राजशेखर ने लिखा है—

तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिल सौमिलौ।

ययोर्द्वयोः काव्यमासीदर्धनारीश्वरोपमम्॥ (सूक्तिमुक्तावली) स्यात् गद्यपद्यमय काव्य होने से ही इसे 'अर्धनारीश्वरोपम' कहा गया है।

शूद्रक स्वयं एक महान् विद्वान् कवि था, जिसने धनुर्वेद, चौरशास्त्र, और दो नाटक लिखे, जिनमें मृच्छकटिक प्रसिद्ध है।

शूद्रक का विस्तृत वर्णन नाटकप्रकरण में करेंगे।

(अश्वघोष)

समयादि—महाकवि अश्वघोष रघुकार कालिदास (द्वितीय) से कम से कम दो शती पूर्व, विक्रमादित्य शूद्रक और और सम्भवतः कालिदास प्रथम से भी कुछ समय पूर्व हुये। कृष्णचरित के अनुसार महाकवि अश्वघोष चतुर्थी बौद्धसङ्गीति या महासंसत् के अध्यक्ष थे, जो ऋत्तीक या कुषाण (तुषार) सम्राट कनिष्क के समय में सम्पन्न हुई। आधुनिक विद्वानों ने कनिष्क की अनेक तिथियाँ निश्चित की हैं, परन्तु वे प्रायः सभी कल्पित और अयथार्थ हैं। प्राचीनचीनी इतिहासकारों के अनुसार कनिष्क विक्रम से कम से कम १६० वर्ष पूर्व हुआ। मञ्जुश्रीमूलकल्पग्रन्थ के अनुसार यक्ष (तुषार) ने प्रव्रजित (भिक्षु) होकर बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया।[2] इनकी आयु ८० वर्ष

---

(1) समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित में अश्वघोष का उल्लेख इस प्रकार किया है—

जन्मनाथाभवद्विद्वान् सौगतस्तर्कवारिधिः।
सौनन्दबुद्धचरिते महाकाव्ये चकार यः।
तस्य शूरकवेर्घोष इति नामाभवत्तत्।
धर्मव्याख्यानभूतान्स नव ग्रन्थानरीरचत्।
सौगतानां महासंसत् तुरीयाभून्महोज्ज्वला।
तस्यां सभ्यो बभूवाथ विश्वविद्वच्छिरोमणिः

(श्लोक १-१६)

(2) बुद्धपक्षस्य नृपतौ शास्तुशासन दीपकः।
अकाराख्यो यतिः ख्यातो द्विजा प्रव्रजितस्तथा।
साकेतपुरवास्तव्य आयुषाशीतकस्तथा॥

(श्लोक ६३७-६४०)

श्री काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार बुद्धपक्ष कनिष्क का पूर्ववर्ती कुशाण शासक कडफिसस (या विम) द्वितीय था।

थी, तथा वे साकेत नगरी के निवासी थी । मूलकल्प के वर्णन की पुष्टि स्वयं अश्वघोष के सौन्दरानन्द (या सौनन्द) काव्य के अन्तिम वाक्य से होती है—आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्यभदन्त अश्वघोषस्य महाकवेमहावादिन: कृतिरियम् ।' महाकवि अश्वघोष महाविद्वान्, महान् दार्शनिक या तार्किक या नैयायिक थे, इसलिये उन्हें चतुर्थी बौद्ध महासंसत् का सभ्य या अध्यक्ष बनाया गया । अश्वघोष ने नाटकों, काव्यों के अतिरिक्त अनेक दार्शनिक ग्रन्थों की रचना की' जिनका उल्लेख आगे करेंगे । इनके एक अनुपलब्ध नाटक 'राष्ट्रपाल' का उल्लेख धर्मकीर्ति के वादन्याय में किया है ।

महाकवि अश्वघोष कालिदास के समान महान् कवि और विद्वान् हुये हैं । अश्वघोष ने पहिले सनातनधर्म के सभी शास्त्रों वेदों और पुराणों का अध्ययन किया था । वे शास्त्रों के पारंगत विद्वान् थे । बाद में बौद्धधर्म में दीक्षित हो गये और बौद्धधर्म के प्रचार और प्रसार के लिये अश्वघोष ने अनेकों ग्रन्थों की रचनायें की । बौद्धग्रन्थों में अश्वघोष के सम्बन्ध में जानकारी को सुरक्षित रखा है, बौद्धदेशों में अश्वघोष के ग्रन्थ मूलरूप तथा अनुवाद रूप में मिलते हैं ।

अश्वघोष का समय प्राय: निश्चित है । कुषाणजातीय भारतीय सम्राट् कनिष्क के महामन्त्री और गुरु के रूप में इतिहासकार अश्वघोष को जानते हैं । बौद्धधर्म के महायान सम्प्रदाय के प्रचारक अश्वघोष थे ।

अश्वघोष की माता का नाम सुवर्णाक्षी था और इनका जन्म स्थान अयोध्या था । उस समय अयोध्या को साकेत कहते थे । विद्वानों में अश्वघोष के अनेक नाम प्रसिद्ध है जैसे आर्य. महापण्डित, भदन्त, और महावादी । एक ओर तो अश्वघोष वैदिकशास्त्रों में पारंगत थे तो दूसरी और बौद्ध शास्त्रों के भी महापण्डत थे । इसलिए सम्राट् कनिष्क ने इनको अपना राजगुरु बनाया था । अश्वघोष की साहित्यिक और प्रसिद्ध रचनायें बुद्ध चरित, सौन्दरानन्द और शारिपुत्रप्रकरणनाटक, जो प्रकाशित हो चुकी हैं । इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ धार्मिक ग्रन्थ अश्वघोष की रचना माने जाते हैं जैसे वज्रसूची, सूत्रालंकार महायानश्रद्धोत्पादसंग्रह जैसे कई ग्रन्थ यहां पर केवल साहित्यिक ग्रन्थों की चर्चा की जायेगी ।

'बुद्धचरित' अश्वघोष का प्रसिद्ध महाकाव्य है, जिस प्रकार कालिदास का रघुवंश। 'बुद्धचरित' में २८ सर्ग है, इसमें तथागत बुद्ध के जीवनचरित, उपदेश और सिद्धान्तों का काव्यमय वर्णन किया गया है ,बुद्धचरित' के पहिले पाँच सर्गों में बुद्ध के जन्म से लेकर ग्रहत्याग तक की कथा है, किस प्रकार बुद्ध को वृद्ध पुरुष एवं मृतपुरुष को देखकर वैराग्य होता है और वे रात्रि में राहुल और अपनी पत्नी यशोधरा को सोते हुये छोड़कर छन्दक के साथ घर छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करते हैं। छठे सर्ग में कुमार सिद्धार्थ को तपोवन प्रवेश की तथा वर्णित है। सातवें सर्ग में तपोवन के दृश्यों का वर्णन है। आठवें सर्ग में अन्तः पुर के स्त्री पुरुषों के विलाप का वर्णन है, नौवें सर्ग में कुमार (बुद्ध) के ढूढ़ने के प्रयत्न का वर्णन है। दसवें सर्ग में बुद्ध द्वारा मगधयात्रा, ग्यारहवेंसर्ग में कामदेव की निन्दा, बारहवें सर्ग में महर्षि अण्ड के पास शान्ति प्राप्ति के लिये जाना, तेरहवें सर्ग में काम विषय और चौदहवें सर्ग में बुद्धत्व प्राप्ति का वर्णन है। संस्कृत में केवल चौदह ही सर्ग प्राप्त होते हैं, शेष चौदह सर्गों का प्राचीन काल में किया हुआ, चीनी अनुवाद मिलता है, इन आगे के सर्गों में बुद्ध के शिष्यों के उपदेशों सिद्धान्तों और निर्वाण का वर्णन है तथा अशोक के समय तक बुद्धसंघ का जो इतिहास था, उसका काव्यमय वर्णन है।

काव्य की दृष्टि से 'सौन्दरानन्द' महाकाव्य और भी रोचक है। यह १८ सर्गों का महाकाव्य है। इस महाकाव्य में बुद्ध के सौतले भाई नन्द और उसकी पत्नी सुन्दरी की कथा है। नन्द और सुन्दरी एक दूसरे से गहरा प्रेम करते थे। जैसे चकवा चकवी को आपसे में घनिष्ठ प्रेम होता है वैसे ही नन्द और सुन्दरी में प्रेम था।

प्रथम तीन सर्गों में कवि ने शाक्य क्षत्रियों की वंशपरम्परा बुद्धजन्म, बुद्ध द्वारा गृहत्याग, और बुद्धत्वप्राप्ति तक की कथा संक्षेप में कही है। चौथे सर्ग में नन्द और सुन्दरी के विहार का वर्णन है। जब युगल विहार कर रहे थे, तभी कोई दासी नन्द को सूचना देती है कि बुद्ध भिक्षा लेने के लिये उसके द्वार पर खड़े हुये हैं। परन्तु भिक्षा न मिलने के कारण वे लौट गये। यह सुनकर नन्द क्षमा माँगने के लिये बुद्ध के पास जाना चाहता है। पांचवें सर्ग के अनुसार नन्द बुद्ध की शरण में जाता है और वह बौद्धधर्म में दीक्षित होकर भिक्षु बन जाता है। उसी समय अनिच्छुक नन्द के सिर के बाल साफ कर दिये जाते है और वह विवश होकर टपाटप आंसू बहाता है। छठे सर्ग में सुन्दरी के विलाप का काव्यमय वर्णन है जो बहुत

ही करुणाजनक है। सातवें सर्ग में नन्द द्वारा घर से भागने की इच्छा का वर्णन है। आठवें और नवें सर्ग में एक भिक्षु द्वारा नन्द को दी गई शिक्षा का वर्णन है। दसवें सर्ग में जब बुद्ध को नन्द की हालात का पता चलता है तो उसे वे बुला कर योगविद्या से आकाश में उड़ जाते हैं। बुद्ध हिमालय पर एक पेड़ पर बैठी एक कानी बन्दरिया को देखकर पूछते हैं क्या सुन्दरी इससे अधिक सुन्दर है नन्द कहता है—हां। तब वे उसे स्वर्ग की अप्सरायें दिखाते हैं, जिन्हें देखकर वह सुन्दरी को भूल जाता है और उन्हें प्राप्त करने की इच्छा करता है। तदनन्तर बुद्ध के उपदेश से नन्द को ज्ञान प्राप्त होता और तप करके नन्द परमगति को प्राप्त करता है। चौदहवें से अठाहरवें सर्ग तक यह कथा है।

अश्वघोष कृत शारिपुत्रप्रकरण नाटक अधूरा मिला है। इसमें मृच्छकटिक की भांति चोर, वेश्या, जुआरी और शराबियों के समाज का वर्णन है। इस नाटक में बुद्ध द्वारा मौदगलायन और शारिपुत्र को शिष्य बनाये जाने की कथा मुख्य है।

महाकवि अश्वघोष बहुत ही उच्चकोटि के विद्वान् थे। यहाँ पर उनकी प्रतिभा का संक्षेप में परिचय कराया जायेगा। अश्वघोष बौद्ध होते हुये भी वेद पुराण के विद्वान् थे उनकी पुराणों पर भी पूरी श्रद्धा थी। उत्तरकालीन बौद्धो की भांति अश्वघोष साम्प्रदायिक नहीं थे। ऐसा माना जाता है कि बौद्धधर्म में दीक्षित होने से पहिले अश्वघोष ब्राह्मण थे और सभी ब्राह्मण-शास्त्रों का अध्ययन कर चुके थे। उन्होंने अपने काव्यों के अनेक पद्यों में राम, कृष्ण, इन्द्र इत्यादि को उसी प्रकार ऐतिहासिक व्यक्ति माना है जिस प्रकार बुद्ध को। अतः अश्वघोष को प्राचीन भारतीय इतिहास का यथार्थ ज्ञान था। वे आधुनिक नास्तिकों या योरोपीय लेखकों की भांति प्राचीन पुरुषों को काल्पनिक व्यक्ति नहीं मानते थे। अश्वघोष के कथनों से एक बात और ज्ञात होती है कि पुराणों का जो वर्तमान रूप मिलता है, वैसा ही रूप अश्वघोष के समय में भी था, वैसे ही रामायण और महाभारत भी थे। आधुनिक लोगों जी यह धारणा झूठी है कि बौद्धकाल में रामायण, महाभारत नहीं थे। आधुनिक लोगों की यह धारणा झूठी है कि बौद्धकाल में रामायण' महाभारत और पुराण थे ही नही अथवा दूसरे रूप में थे। वरन् अश्वघोष के काव्यों को पढ़ने से यह धारणा दृढ़ होती है कि अश्वघोष ने आदिकवि वाल्मीकि और महर्षि व्यास का पर्याप्त अनुकरण किया है। निश्चय अश्वघोष कालिदास की श्रेणी के महाकवि थे जिनकी कीर्ति चीन, जापान आदि बौद्धदेशों में भी उसी

समय से फैली गयी जबकि अश्वघोष ने काव्य की रचना की। इस सम्बन्ध में कनिष्क के प्रभाव को भी स्मरण रखना चाहिये, जिसका साम्राज्य भारत के बाहर दूर दूर तक फैला हुआ था, अतः कनिष्क के साम्राज्य में तो अश्वघोष का यश फैल ही गया।

रघुकार कालिदास (द्वितीय)

समयावधि—आद्य कालिदास (नाटककार) के प्रायः एक शती पश्चात् रघुवंश के प्रणेता कालिदास, द्वितीय हुए, जिनका मूल नाम हरिषेण था। गुप्तवंश के सर्वाधिक प्रतापी सम्राट् समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, द्वितीय के ये कालिदास अमात्य और सभासद् थे। आधुनिक विद्वान् सभी प्राचीन कालिदासों को एक मानकर इतिहास के साथ खिलवाड़ करते हैं। कालिदास द्वितीय के समकालीन के सम्राट् समुद्रगुप्त के काव्य कृष्णचरित के प्रामाण्य के सम्मुख आधुनिक कल्पनाओं का क्या मूल्य हो सकता है, यह विज्ञ पाठक स्वयं सोच सकते हैं। समुद्रगुप्त के समय तक दो कालिदास और राजशेखर (नवम शती का अन्त) तक तीन कालिदास प्रख्यात थे—

एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

राजशेखर के अनन्तर भी अनेक अन्य कवियों ने यह उपाधि (कालिदास) धारण की। स्पष्ट है कि व्यास या शंकराचार्य के समान कालिदास भी एक उपाधि बन गई थी, जिसको अनेक कवियों ने धारण किया। समुद्रगुप्तोल्लिखित अकाट्य प्रमाण के अतिरिक्त शाकुन्तलकार और रघुकार कालिदास को पृथक्-पृथक् मानने का एक तर्क और ध्यातव्य है। प्राचीन साहित्यकारों ने प्रायः साहित्य की एक विधा ही ग्रहण की और उसी में ख्याति एवं वैशिष्ट्य प्राप्त किया। बाल्मीकि, व्यास, व्याडि, पाणिनि, कात्यायन, भास, भवभूति, भारवि, दण्डि, बाण, माघ, श्रीहर्ष आदि के उदाहरणों से स्पष्ट है। जिस कवि ने पद्य काव्य लिखा, प्रायः उसने नाटक नहीं लिखा और जिसने नाटक लिखे, उसने काव्य नहीं लिखे, ऐसे अपवादात्मक उदाहरण बहुत थोड़े हैं जिसकी प्रसिद्धि अनेकविध कृतियों से हुई हो। इस तर्क की पुष्टि समुद्रगुप्त के निम्न वर्णन से होती है कि काव्यप्रणेता कालिदास दूसरा था—

तुंगं ह्यमात्यपदमाप्तयशः प्रसिद्धं।
भुक्त्वा चिरं पितुरिहास्ति सुहृन्ममार्यं ॥
सन्धौ च विग्रहकृतौ च महाधिकारी।

विज्ञः कुमारसचिवो नृपनीतिदक्षः ॥
काव्येन सोऽद्य रघुकार इति प्रसिद्धो ।
यः कालिदास इति लब्धमहार्हनामा ॥
प्रामाण्यमाप्तवचनस्य च तस्य धर्म्ये ।
ब्रह्मत्वमध्वरविधौ मम सर्वदेव ॥
चत्वार्यन्यानि काव्यानि व्यदधाच्च लघूनि सः ।
प्रभावयञ्च मां कर्त्तुं कृष्णस्य चरितं शुभम् ।
हरिषेणकविर्वाग्मी शास्त्रविचक्षणः ।
यशोऽलभत काव्यैः स्वैर्नाना चरितशोभनैः ॥

(श्लोक 23-26)

"जो हरिषेण कालिदास मेरे पिता (चन्द्रगुप्त प्रथम) का मित्र और सर्वोच्च (प्रधान) मन्त्री था और वह अब मेरा भी है। वह सन्धि और युद्ध कार्य में महाधिकारी, विद्वान् कुमारसचिव और राज नीतिविशारद है। काव्य प्रणय के द्वारा वह प्रतिष्ठित रघुकार कालिदास नाम से प्रसिद्ध है। उसके आप्तवचन धर्मनिर्णय में प्रमाणिक होते हैं, सदा वह मेरे यज्ञ (अश्वमेधादि) में ब्रह्मा बनता है। उसने चार अन्य लघु (मेघदूतादि) काव्य रचे और मुझे शुभकृष्णचरित रचने के लिए प्रभावित किया, वह हरिषेण, कवि, वाग्मी शास्त्र और शस्त्रविद्या—दोनों में ही निपुण है और अपने विभिन्न काव्यों द्वारा महान् यश प्राप्त किया।"

प्राचीन सत्य भारतीय इतिहास के अनुसार विक्रमसम्वत् प्रवर्तक शूद्रक-विक्रमादित्य और समुद्रगुप्त में 90 वर्षों का अन्तर था एवं विक्रमसम्वत् के 135 वर्ष पश्चात् शकविजय के पश्चात् गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त साहसांक, द्वितीय विक्रम ने शकसम्वत् चलाया अतः हरिषेण कालिदास ने कम से कम तीन गुप्त राजाओं का मन्त्रित्व किया, जिनका राज्यकाल इस प्रकार था—[1]

चन्द्रगुप्त, प्रथम	= 7 वर्ष	77 वि० स० से 84 वि० तक
समुद्रगुप्त	=51 वर्ष	84 वि० स० से 135 वि० तक
चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य	=36 वर्ष	135 वि० स० से 171 वि० स० तक

यदि महाकवि का देहावसान चन्द्रगुप्त विक्रम राज्य के मध्य में भी हुआ तो उनकी आयु शतवर्ष के आस पास होगी। राजवैद्य जीवाराम कालिदास

(1) द्र० भारतवर्ष का बृहद् पृ० 350 पं० भगवद्दत्तकृत।

शास्त्री ने कृष्णचरित[1] की व्याख्यात्मक टिप्पणी में हरिषेणकृत प्रयाग प्रशस्ति और रघुवंश के अनेक वाक्यांशों की तुलना करके सिद्ध किया है कि दोनों का रचयिता एक हरिषेण कालिदास था। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

हरिषेणकृत प्रयागप्रशस्ति	रघुवंश
(1) स्वभुजबलपराक्रमैकबन्धोः।	(1) स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः।
(2) प्रसभोद्धरणोद्वृतप्रभावमहतः।	(2) प्रसभोद्धृतारिः।
(3) पृथिव्यामप्रतिरथस्य।	(3) क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः।
(4) चरणतलप्रमृष्टान्यनरपति-कीर्तेः।	(4) चरणयोर्नखरासमृद्धिभिः।
(5) धनदवरुणेन्द्रान्तकसमस्या।	(5) अनुययौ यमपुण्यजनेश्वरौ स वरुणारुणाग्रसरं रुचा॥

उपर्युक्त श्लोकांशों में शब्दार्थों की समानता स्पष्ट है। अतः दोनों का रचयिता हरिषेण कालिदास ही था।

काव्यपरिचय

कृष्णचरित के अनुसार कालिदास द्वितीय ने रघुवंश सहित पाँच काव्य लिखे, इस समय उनके ये चार काव्य ही उपलब्ध हैं—रघुवंश, मेघदूत, कुमारसंभव और ऋतुसंहार। अन्तिम काव्य (ऋतुसंहार) के विषय में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह इन्हीं द्वितीय कालिदास की रचना है अथवा अन्य किसी की। संक्षेप में इन ग्रन्थों का परिचय एवं आलोचन प्रस्तुत करते हैं।

ऋतुसंहार—इसमें छः सर्ग और 153 श्लोक हैं, प्रत्येक सर्ग में एक एक ऋतु का वर्णन है। ऋतुसंहार में कवि ने यद्यपि अलंकारों का मनोहर प्रयोग किया है, फिर भी यह प्रारम्भिक कोटि का काव्य है।

मेघदूत—यह महाकवि कालिदास का एक श्रेष्ठतर ऐसा लघु गीतिकाव्य (लीरिक) है, जिससे उनकी कीर्ति दिग्दिगन्तव्यापिनी हुई। प्राचीनकाल से ही इसके विभिन्न पाठों में न्यूनाधिक पद्य थे। यथा वल्लभदेव (एकादशशती) की टीका में 111 पद्य, दक्षिणवर्तनाथ की टीका में 110 पद्य, और मल्लिनाथ की टीका में 118 पद्य हैं। जिनसेन (अष्टमी शती) के मतानुसार मेघदूत में 120 पद्य थे। इनमें सर्वाधिक प्रामाणिक मल्लिनाथ का पाठ माना जाता है। मेघदूत

(1) कृष्णचरित (पृ० 58-60)।

में कोई बहुत लम्बी चौड़ी कथा नहीं है। मुख्य तथ्य इस प्रकार है—यक्षराज कुबेर का सेवक एक युवा यक्ष अपने स्वामी के शाप के कारण निर्वासित अपनी पत्नी यक्षिणी से वियुक्त होकर, रामगिरि पर्वत पर एक वर्ष के लिए रहने लगता है। वह एक दिन आकाश में उमड़े हुए मेघ को देखकर, कातर-दृष्टि से देखता है और उत्तरदिशा में जाने वाले मेघ के द्वारा पत्नी के सान्त्वना संदेश भेजता है। वह यक्ष देर तक, आँसू रोकर मेघ की ओर देखता रहा। कवि के अनुसार घुमड़ते मेघ को देखकर सुखीपुरुष का मन भी बिगड़ जाता है, पुनः कण्ठाश्लेषप्रणयी वियुक्त दूरस्थ पुरुष का क्या कहना।[1] अपनी प्रिया के जीवनाकांक्षी यक्ष ने मल्लिका पुष्पों से मेघ की अर्चना करके उसका स्वागत किया और बोला—हे मेघ ! तुम लोकप्रसिद्ध पुष्कर और आवर्तक मेघों के कुल में उत्पन्न हुए हो, तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सकने में समर्थ हो, अतः मैं दुर्भाग्यवश विरहीकामी तुमसे याचना करता हूं, क्योंकि तुमसे याचना में असफल होना भी श्रेष्ठ हैं, परन्तु अधम (नीच) से पूर्ण इच्छा होना भी बुरा है।[2] तदनन्तर यक्ष कहता है कि हे मेघ ! तुम अलकापुरी जाकर मेरी प्रिया से मेरा सन्देश कहना। मार्ग में जब तक तम आम्रकूट पर्वत पर वृष्टि द्वारा बनाग्नि को शान्त करके आगे बढ़ोगे तो तुम्हें विन्ध्याचल के नीचे बहती हुई नर्मदा और वेगवती के तट विदिशा नगरी मिलेगी। पुनः आगे उज्जयिनी जाना। वहाँ पर पवित्र सरस्वती का जल पीकर कमखल की ओर बढ़ना, तदनन्तर शीघ्र ही कैलाशपर्वत और मानसरोवर आयेगा। सरोवर के जल से परिश्रान्ति मिटाकर अलकापुरी पहुँचोगे जहाँ अलका में मेरी पत्नी रहती है। कवि ने पूरे काव्य में विविध कल्पनाओं द्वारा मार्ग गतदृश्यों का उल्लेख किया है और अपनी गहन प्रकृतिरुचि, शास्त्रज्ञान एवं काव्यकौशल का परिचय दिया है। कवि ने दर्शन, विज्ञान और काव्य का सुन्दर मिश्रण किया है, यथा मेघ

---

(1) मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः।
कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥

(श्लोक 3)

(2) जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्चा मोघः वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा (श्लोक 6)

को धूम ज्योति, सलिल और मरुत् का सन्निपात (समूह) बताया है।[1] इसी प्रकार पुष्कर और आवर्त[2] संज्ञक मेघ वर्षणशील होते हैं।

मेघदूत का काव्यवैशिष्ट्य—यह यद्यपि विप्रलम्भ शृंगाररस का एक लघु गीतिकाव्य है, परन्तु महाकवि ने इस काव्य में जीवन की एक गहन दिशा संकेत किया है, इसीलिए विद्वानों ने इसके महत्त्व को इस प्रकार प्रकट किया—

'मेघे माघे गतं वयः'

"सम्पूर्ण आयु मेघदूत और माघकाव्य के चिन्तन में ही बीत गई।'

मेघदूत अपने प्रकार का सम्भवतः प्रथम काव्य है। विद्वानों के मतानुसार कालिदास को मेघदूत काव्य रचने की प्रेरणा रामायण के रामदूत हनुमान् से मिली होगी।[3] कालिदास के अनुकरण पर अनेक दूतकाव्य लिखे गये, परन्तु उनकी मेघदूत जैसी ख्याति नहीं हुई।

सम्पूर्ण मेघदूत मधुरस का अक्षयस्रोत है, जिसके सब ओर से मधुरस का क्षरण होता है, परन्तु यहां कतिपय उदाहरणों से इस काव्य की मधुरता, सौष्ठव, विचित्रता और अनुपमता का प्रदर्शन करेंगे।

मेघदूत काव्य यक्षिणी के समान विधाता की आद्य और अनुपम कृति है—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्याम्।
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः।

वह यक्षिणी पतली, श्यामा (काञ्चनतुल्य दीप्तवर्ण), ऊंचे नुकीले दांत वाली, पक्वबिम्बोष्ठवाली, मध्य शरीर में क्षीण, चकित मृगी तुल्यदृष्टि, नाभि झुकी हुई, श्रेणी भार से धीरे-धीरे चलने वाली, स्तनभार से कुछ झुकी हुई, मानो विधाता की आदिम रचना है।

---

(1) धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः,

(श्लो० 5)

(2) आवर्त्तके महावर्त्तः संवर्तो बहुतोयदः।
पुष्करे चित्रिता वृष्टिर्द्रोणोऽपि बहुवारिदः॥

(3) इसका संकेत स्वयं कवि किया है—
इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा

(उत्तरमेघ 36)

यक्ष के अनुसार यक्षिणी उसकी प्राणेश्वरी या द्वितीय जीवन ही है—'तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं में द्वितीयम्,। यक्षिणी के अंग प्रत्यंग की कोई उपमा नहीं—

श्यामास्वगं चकितहरिणीप्रेक्षणे-दृष्टिपातं।
वक्त्रछायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्॥
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्।
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न तेचण्डि सादृश्यमस्ति॥

'श्यामाओं में अंग, चकितहरिणीमें दृष्टि, चन्द्रमा में मुखछाया (प्रतिकृति) मोरों के पंखों में केश, लघु नदीलहरों में तुम्हारे भ्रूविलास देखता हूँ, परन्तु तुम्हारा सादृश्य हे चंडि! कहीं भी नहीं है।

कामार्त व्यक्ति स्वभाव से ही विवेक खो देता है, अतः यक्ष ने मेघ जैसे अचेतन को सन्देशहर बनाया—

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।

वियोगिनी स्त्री आशा के कारण ही अपना जीवन धारण करती है, अन्यथा उनका हृदय पुष्पसदृश कोमल है, जो शीघ्र गिर जाता है—

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां।
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि॥

मेघयुक्त आम्रकूट पर्वत की तुलना कवि ने पृथिवी से ऊपर उठे हुए स्तन से दी है जो ऊपर से कृष्ण और शेष पीला है—

मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।

यहाँ कवि ने युवती के स्तन से पर्वतशिखर को उपमित किया है। वेगवती नदी के जल की उपमा कटाक्षों से दी है—

सभ्रूभंगः मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि।

शिप्रा की वायु चाटुकार प्रियतम के समान थी—

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।

कवि ने दर्शनतत्त्वों को काव्य में समाहित किया है—

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने।
छायात्माऽपि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्॥

यहाँ पर गम्भीरा नदी के जल की तुलना निर्मल चित्त से की है जो सौभाग्य से सुभग होने से छाया रूप में प्रवेश कर सकेगा। यहाँ पर योगदर्शन

का तत्त्व प्रदर्शित किया गया है, जबकि आत्मा के निर्मल होने पर मनुष्य को विवेक ख्याति होती है।

कवि ने स्थान-स्थान पर इतिहास और भूगोल का भी उत्तम परिचय दिया है। यथा चर्मवती नदी को रन्तिदेव की मूर्तिमती कीर्ति बताना, जाह्नवी सगर-तनयों की स्वर्गसोपनपंक्ति बताना, परशुराम द्वारा क्रौञ्चपर्वतविदारण उदयनकथासंकेत आदि कालिदास की बहुतज्ञता को व्यक्त करते हैं।

कुमारसम्भव—इस समय इसमें 17 सर्ग होने से यह महाकाव्य माना जाता है, वैसे मूल रूप से कालिदास ने 8 सर्गों की रचना की थी, क्योंकि कुमारसम्भव का अर्थ ही है कि इसमें केवल स्कन्द कार्त्तिकेय (सनत्कुमार) की जन्मकथा ही वर्णित करना इसका उद्देश्य था, उनके पूरे जीवनचरित्र को लिखना इसका अभिप्राय: नहीं था। काव्य के 9 से 17 सर्गों तक के सर्गों की रचना किसी उत्तरवर्ती कवि ने की। मल्लिनाथ ने इसीलिये मूल 8 सर्गों तक ही की लिखी है। इस सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, जो काल्पनिक प्रतीत होती हैं। कार्तिकेय का जन्म देवयुग की एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना थी, यद्यपि उपलब्ध स्कन्दपुराण का पाठ कालिदास से बहुत बाद का है, परन्तु इसके तथा अन्य पुराणों के प्राचीन पाठों[1] में इसका ऐतिहासिक रूप वर्णित था, वहीं से महाभारतादि में स्कन्दजन्मवर्णित किया गया। अत: कालिदास ने यह कथा प्राचीन इतिहासपुराणों से ग्रहण करके अपनी योजनानुसार इसमें आवश्यक परिवर्तन किये, इसमें कोई सन्देह नहीं।

कुमारसम्भव का प्रारम्भ—'अस्त्युत्तरदिशि देवतात्मा हिमालयोनाम नगाधिराज:' इत्यादि पद्य से किया गया है। इससे प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में ही ऐतिहासिक वर्णनों में भ्रामकता आ गई थी। पर्वत नाम का शासक दक्ष का पुत्र या वंशज तथा नारद का साथी था, पहिले वह राजा था, बाद में मुनि बनकर नारद का सहयात्री हो गया। हिमालय क्षेत्र का शासक होने के कारण ही उसका नाम पर्वत या हिमालय प्रसिद्ध हो गया, मूल में वह दक्ष या नारद के समान पुरुष था, उसकी पुत्री ही पार्वती थी।

प्रथम सर्ग में पार्वती और उनकी सखियाँ शिव की सेवा में उपस्थित होती हैं, द्वितीय सर्ग में तारकासुर से त्रस्त देवगण ब्रह्मा से उसके वध की

(1) वायुपुराणादि के समान मूलस्कन्दपुराण (अनुपलब्ध) प्राक्पाराशर्य कालीन रचना थी, यह पुराणप्रकरण में सप्रमाण लिखा जा चुका है।

याचना करते हैं। इसी सर्ग में ब्रह्मा शिवपुत्र कार्त्तिकेय के जन्म की भविष्य-वाणी करते हैं। तृतीय सर्ग में कामदेव और वसन्त का वर्णन हैं, यहीं शिव के तृतीय नेत्र से काम नष्ट होता है। चतुर्थ सर्ग में रतिविलाप और वरदान वर्णित है, पञ्चम सर्ग में पार्वती तप का वर्णन है और शिव उनको अङ्गीकार कर लेते हैं। षष्ठ सर्ग में सप्तर्षिहिमालयमन्त्रणा कथित है। सप्तमसर्ग में पार्वतीविवाह वर्णित है। अष्टमसर्ग में शिवपार्वतीसंभोग और कुमारजन्म वर्णित है। आगे के सर्ग प्रक्षिप्त हैं।

रघुवंश—यह महाकवि कालिदास का प्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। इस समय इस महाकाव्य में 19 सर्ग हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार रघुवंश में 25 सर्ग थे, अतः इसके अन्तिम छः अनुपलब्ध हैं। परम्परानुसार इसमें ऐक्ष्वाक राजा सुमित्र तक का वर्णन होना चाहिये था—

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥

(वा० पु० 99/293)

सुमित्र रघुवंश का अन्तिम राजा था, इसके पश्चात् इस वंश का अन्त हो गया, अतः मूल रघुवंश में 25 सर्ग होने चाहिये। परन्तु इस समय मल्लिनाथ और बलभदेव की टीका 19 सर्गों पर्यन्त ही मिलती है।

रघुवंश के प्रथम सर्ग का प्रारम्भ रघु के पिता दिलीप के गुणाख्यान से होता है। एक बार दिलीप द्वारा देवगौ सुरभि का सत्कार न होने से उसने राजा को निस्सन्तान होने का शाप दे दिया। शाप की निवृत्ति केवल सुरभि सन्तान नन्दिनी गौ की सेवा करने से हो सकती थी। अतः वशिष्ठ की आज्ञा से राजा दिलीप तपोवन में नन्दिनी की सेवा करने लगे। एक दिन एक सिंह ने नन्दिनी गौ पर आक्रमण करके उसका भक्षण करना चाहा, पहिले तो राजा ने शस्त्रबल से गाय की रक्षा करनी चाही, परन्तु उसके निष्फल होने पर वह गाय के बदले स्वयं सिंह का भक्षण बनना चाहते थे—यह आदर्श त्याग और सेवा की चरम पराकाष्ठा थी—

किमप्यहिंस्यस्तव चेन्मतोहं यशःशरीरे भव मे दयालुः।
एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु॥

(रघु० 2/56)

'हे सिंह! तुम्हारे लिये कुछ भी अहिंस्य नहीं है, तुम मेरे यश.शरीर पर दयालु हो जाओ। निश्चित विनाशशील भौतिक तत्वों में मेरा विश्वास नहीं है।' तृतीय से पञ्चम सर्ग तक रघु का आदर्श चरित्र वर्णित है। तृतीय

और चतुर्थ सर्ग में शूरवीरता और पञ्चम सर्ग में दानवीरता का हृदयस्पर्शी कथन है। इसी सर्ग से अज का चरित्र प्रारम्भ हो जाता है। षष्ठ सर्ग में इन्दुमती द्वारा अज के स्वयंवरण का वर्णन है। सप्तम सर्ग में स्वयंवर में आये हुये राजाओं को अज ने अपने पराक्रम से परास्त किया। तदनुसार अष्टम सर्ग में अज के शासन और इन्दुमती की आकस्मिक मृत्यु का हृदय-विदारक उल्लेख है। इसमें अज का इन्दुमती के प्रति विलाप मार्मिक है—

> गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रिया शिष्या ललिते कलाविधौ।
> करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हृतम्॥ (र० 8/66)

तुम मेरी गृहिणी, सखी, ललितकला में प्रियशिष्या थीं। निष्करुण मृत्यु ने तुमको मुझसे छीनकर मेरा क्या नहीं हरा ?' नवम सर्ग में दशरथ चरित्र वर्णन है, इसी में श्रवणकुमारकथा कथित है। दशम से पञ्चदश सर्ग पर्यन्त रामकथा वर्णित है, जो प्रायः रामायण के अनुसार ही है, परन्तु कवि ने सब कुछ संक्षेप में ही कहा है, परन्तु उसमें काव्यप्रतिभा का अतीव उन्मेष हुआ है। केवल एक श्लोक में ही राम के सीताजन्य वियोग का हृदय-विदारक उल्लेख है, इस वर्णन से उत्तररामचरित नाटक के करुण दृश्यों की स्मृति हो जाती है—

> बभूव रामः सहसा सवाष्पस्तुपारवर्षीव सहस्यचन्द्रः।
> कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्तः॥ (र० 14।84)

"राम सहसा पौषमास के चन्द्रमा के समान सवाष्प (साश्रु) तुषार (ओस) गिराने वाले हो गये, केवल उन्होंने कुल प्रतिष्ठा के पतन के भय से सीता को घर से निकाला, मन से नहीं।"

षोडश सर्ग में कुश द्वारा अयोध्या में प्रवेश का वर्णन कारुणिक और मार्मिक है। तदनन्तर कुशपुत्र से अग्निवर्ण तक के 21 राजाओं का सत्रहवें से उन्नीसवें सर्ग तक संक्षेप में वर्णन है और अग्निवर्ण के विलासमय जीवन का किस प्रकार करुण अन्त होता है, यह वर्णन करने के साथ ही रघुवंश महाकाव्य समाप्त हो जाता है।

कालिदास के काव्यगुण -उपमा कालिदासस्य

आद्य कालिदास (अभिज्ञान शाकुन्तलकार) इतने यशस्वी हुये कि यह उपाधि अनेक कवियों ने धारण की। शृङ्गारवर्णन और ललितोद्गार में

तीनों ही कालिदास अनुपम थे,[1] जैसा कि राजशेखर ने लिखा है—

श्रृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।

बाणभट्ट जैसे महाकवि ने कालिदास के काव्य का यशःस्तवन किया—'कालिदास के मुख से निकली गाढ़मधुर सूक्तियों में किसकी प्रीति नहीं होती, जैसे मधुर मञ्जरियों से सबका मन प्रसन्न हो जाता है।'[2] कालिदास की वाणी और अर्थ इतने संश्लिष्ट और सम्पृक्त है, कि उनके विश्लेषण में विद्वानों को अतीव आनन्द और रस प्राप्त होता है—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये । (र० 1)

इनके काव्य से वाणी के अलौकिक अर्थ की उत्पत्ति होती है। कालिदास के काव्यों का शब्दमाधुर्य, ओज और प्रसाद गुण अनुपम है। उनकी सान्द्र-मधुरभाषा, सरसशब्दयोजना, सार्थक पदावली एवं अलंकार प्रयोग सभी कुछ अद्भुत एवं अतुलनीय हैं। कालिदास का उपमाप्रयोग साहित्यकारों में सर्वाधिक प्रिय है, इसका यहाँ कुछ विस्तार से आलोचन करेंगे।

अलंकारों का मूल उपमा—प्रायः सभी अर्थालंकारों का मूल उपमा ही है, यह प्राचीनकाल से ही लाक्षणिक आचार्यों का सिद्धान्त रहा है। उपमा में मुख्यतः सादृश्य या तुलना रहती है। यथा 'चन्द्र इव मुखमिति सादृश्यवर्णनं तावदुपमा'; 'चन्द्र के समान मुख है, यह सादृश्य वर्णन उपमा है। उपमेयोपमालंकार, अनन्वयः, तुल्ययोगिता, रूपक, श्लेष, आहुति, दीपक, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा आदि प्रायः सभी अलंकार उपमा के ही भेद हैं अतः प्रसिद्ध अलंकारशास्त्री अप्पयदीक्षित ने कहा है—

उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान् ।
रञ्जयंती काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ।। (चित्रमीमांसा)

"नर्तकी के समान उपमा काव्यरूपी रंगमंच पर नृत्य करती हुई विभिन्न भूमिकाओं के द्वारा काव्यज्ञों का मनोरंजन करती है।"

महाकवि कालिदास (द्वितीय) के सभी काव्यों रघुवंश, मेघदूत और कुमारसंभव सभी में अलंकारों का श्रेष्ठ प्रदर्शन हुआ। कुछ उदाहरणों द्वारा

---

(1) पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठितकालिदासः ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।।

(2) निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सुक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते ।। (हर्षचरित, प्रारम्भ)

हम यहाँ पर उसका पर्यवेक्षण करेंगे। उपमा का मूल सादृश्य है। कालिदास ने उपर्युक्त तीनों काव्यों में सादृश्यता की झड़ी लगा दी है—यथा—मेघदूत में यक्ष विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों में यक्षिणी के अङ्गप्रत्यंगों का सादृश्य देखना चाहता है—

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं।
ववक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्।
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति।

"प्रियङ्गुलताओं में तुम्हारे अङ्ग (की कोमलता), चकितहरिणीप्रेक्षणों में तुम्हारी दृष्टिभंगिमा, चन्द्रमा में मुखछवि, मयूरों के पुच्छों में केशभार, लघु नदी लहरों में तुम्हारे भ्रूविलास का सादृश्य देखना चाहता हूं, परन्तु हे चण्डि ! तुम्हारा सादृश्य कहीं भी नहीं है।

इसी प्रकार मेघदूत का एक अन्य सादृश्यनिदर्शक श्लोक द्रष्टव्य है जिसमें कवि ने अलकापुरी के प्रासादों से मेघों की तुलना की है—

विद्युद्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्राचापं सचित्राः।
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् :
अन्तस्तोयं मणिभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः।
प्रसादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥

हे मेघ! तुम विद्युत्वान् हो, प्रासाद वनितामय है, तुम्हारे में इन्द्रधनुष है, प्रासादों में विचित्र वर्ण हैं, तुम्हारी स्निग्ध गम्भीर ध्वनि है और अलकापुरी में प्रासादों में मृदंग के सान्द्र मन्द्र ध्वनि, मेघों में जल भरा है, प्रासादों की मणिमय भूमियाँ भी तत्तुल्य हैं, मेघ आकाश को छूते हैं, उसी प्रकार वे प्रासाद गगनस्पर्शी हैं, अतः दोनों में पर्याप्त तुलना है।"

रघुवंश में गुरु वशिष्ठ ने दिलीप को फलमूल का आहार करते हुये नन्दिनी की सेवा उसी भांति करने को कहा जिस प्रकार शिष्य सतत शास्त्राभ्यास से विद्या को प्राप्त करता है—

वन्यवृतिरिमां शश्वदात्मानुगमनेन गाम्।
विद्यामभ्यसनेनेव प्रसादयितुमर्हति ॥ (रघु० 1।88)

महाकवि ने नन्दिनी के चार स्तनों की उपमा चतुःसमुद्रा गोरूप पृथिवी से दी है। वेद और इतिहासपुराणों में भी पृथिवी को चतुःसमुद्रा कहा है। कालिदास ने उपमा में उसी का अनुकरण किया है—

पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम् (रघु 2।3)

राजा दिलीप ने नन्दिनी के दुग्ध का पान उसी प्रकार किया, जिस प्रकार मानों अपने मूर्तिमान् शुभ्र धवल यशः का ही पान किया हो—

'पपौ वशिष्ठेन कृताभ्यनुज्ञः शुभ्रं यशो मूर्तमिवातितृष्णः।'

कालिदास की उपमा में बहुधा 'सञ्चारिणी' पद का प्रयोग मिलता है—

सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव (कु० सं. 3।54)

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा (रघु. 6।67)

उपमा के कुछ अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

शरन्नवधूरिव रूपरम्या (ऋतुसंहार 3।1)

शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः (पू० मे. 31)

बभूव रामः सहसा सबाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्रः (रघु. 14।84)

दिनान्ते निहितं तेजः सवित्रेव हुताशनः (रघु. 4।1)

नखक्षतानीव वनस्थलीनाम् (कुमारसंभव 3।29)

तां हंसमाला शरदीव गंगां महोषधिं नक्तमिवात्मभासः

(कु० सं. 1।30)

शय्यागतेन रामेण माता शातोदरी बभौ।
सैकताम्भोजबलिना जाह्नवीव शात्कुशा रघु०।
विवृण्वती शैलासुतापि भावमङ्गैः स्फुरद्बालकदम्बकल्पैः

(कु० 3।98)

प्रवरसेनकृत सेतुबन्ध महाकाव्य—यह महाकाव्य मूल में महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा गया था, जैसा कि दण्डी ने काव्यादर्श में लिखा है—(और यह प्रकाशित भी हो चुका है)—

महाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्॥

"महाराष्ट्री भाषा प्रकृष्ट प्राकृत भाषा है, जो सूक्तिरत्नों के सागर सेतुबन्ध जैसे काव्यों से सम्पन्न है।"

सेतुबन्ध की प्रशंसा प्राचीनकाल से ही श्रेष्ठतम संस्कृत कवियों ने की है, प्रतीत होता है कि इसके संस्कृत रूपान्तर भी प्रवरसेन के समय ही हो गये थे, इस समय रामदास भूपति (1595 ई०) का संस्कृत रूपान्तर और टीक इसकी प्रकाशित हैं। महाकवि बाण ने प्रवरसेन की जो प्रशंसा की है, उससे सिद्ध होता है कि सेतुबन्ध के रूपान्तर न केवल भारत में बल्कि सागर पार

सुदूर द्वीपों में भी प्रख्यात हो चुके थे, स्पष्ट है कि विदेशी भाषाओं में इसके अनुवाद बाण से पूर्व हो चुके थे—

कीर्तिः प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला।
सागरस्य परं पारं कपिसेनेव सेतुना ।। (हर्षचरित)

'प्रवरसेन की कुमुदसदृश धवलकीर्ति सेतुबन्ध से सागर के पार चली गई जैसे कपिसेना रामसेतु से सागर के पार चली गई।"

प्रवरसेन नाम के चार नृपति भारत में हुये हैं ऐसा कह्लण ने राज-तरंगिणी में लिखा है। यह सम्भव है कि कह्लण ने भ्रम में ऐसा लिखा हो, वास्तव में वाकाटकवंशके दोनों प्रवरसेनों का वही समय है जो (प्रथम और द्वितीय ईस्वी शती) कश्मीर नरेशों का बताया जाता है, क्योंकि चन्द्रगुप्त द्वितीय, साहसांक विक्रमादित्य जिसने शकों का नाश करके शकसम्वत् चलाया 135 वि० सं० में ही हुये, इसी समय प्रवरसेन (द्वितीय वाकाटक) का विवाह चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती से हुआ था। अतः सम्भावना यही है कि इसी प्रवरसेन द्वितीय ने ही सेतुबन्ध काल की रचना की हो, यदि प्रथम प्रवरसेन ने इसकी रचना की हो तो यह प्रथम शती ई० की रचना होगी।

इस काव्य में 15 आश्वास हैं, इसको रावणवध या दशमुखवध भी कहते हैं, स्पष्ट है कि इसमें रामकथा वर्णित है। इस काव्य की उच्चता के कारण ही प्रवरसेन की गणना कालिदास कोटि के कवियों में की जाती है और वे थे भी द्वितीय कालिदास के समकालीन।

कुमारदासकृत जानकीहरण—सिंहली अनुश्रुति के अनुसार ये सिंहल के राजा थे और इन्होंने सिंहलद्वीप में नौ वर्ष शासन किया था। कुमारदास के निमन्त्रण पर कालिदास सिंहल की यात्रा पर गये। कालिदास (द्वितीय) की मृत्यु में कुमारदास का हाथ बताया जाता है और प्रायश्चितार्थ उन्होंने कालि-दास की चिता पर आत्मघात किया। केवल इतिहास में गड़बड़झाला करने वाला व्यक्ति ही इस अनुश्रुति पर अविश्वास करेगा, अन्यथा अविश्वास का कोई ठोस आधार नहीं है। हम रघुवंशकार कालिदास के प्रकरण में सप्रमाण लिख चुके हैं कि कालिदास कम से कम तीन गुप्त सम्राटों के राज्यकाल तक जीवित रहे, अतः उनकी सिंहल यात्रा 170 वि० सं. के आसपास हुई जबकि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रम का राज्यकाल समाप्ति पर था, अतः कुमार-दास का भी यही समय (120 वि० सं० से 170 वि० सं०) समझना चाहिये। कोई लेखक इन्हें पाँचवीं शती में तो कोई छठी, सातवीं या आठवीं शती में

रखता है परन्तु हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि इतिहास में 'रखने' से काम नहीं चलता, इतिहास को कल्पना से नहीं बदला जा सकता।

पहिले कुमारदासकृत 'सीताहरण' महाकाव्य का केवल सिंहली अनुवाद प्राप्य था, परन्तु अब मूलकाव्य 15 सर्गों तक मिल गया है। इसमें कुल 25 सर्ग थे। इसमें केवल जानकीहरणप्रसङ्ग ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण रामचरित वर्णित है। जानकीहरण महाकाव्य के विषय में राजशेखर की यह श्लेषोक्ति प्रसिद्ध है—

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः॥

इस श्लेषोक्ति से कम से कम तीन तथ्य प्रकट होते हैं—

(1) कुमारदास ने कालिदास के रघुवंश का पूर्ण अनुकरण किया अतः
(5) रघुवंश के मूल में 25 सर्ग थे, जैसे कि जानकीहरण में है।
(3) कुमारदास सिंहलद्वीप (लंका) के राजा या कम से कम निवासी थे।

जानकीहरण के पद-पद पर रघुवंश का प्रभाव देखा जा सकता है, यथा 'स्वामिसम्मदफलं हि मण्डनम्' का अनुवाद कुमारदास ने 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' ही किया है। अतः दोनों के वर्णनों में महती समानता है। कुमारदास ने वाल्मीकिरामायण का भी गहन अध्ययन किया था, एक श्लोक उदाहर्त्तव्य है—

मदं नवैश्वर्यलवेन लम्भितं विसृज्य पूर्वं समयो विमृश्यताम्।
जगाज्जिघित्सातुरकण्ठपद्धतिर्न बालिनैवाह्वततृप्तिरन्तकः॥

(जा० 12।36)

न स संकुचितः पन्था येन वाली हतो गतः।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा वालिपथमन्वगाः॥

(रा० 34।18)

भट्टि—कुछ विद्वान् वत्सभट्टि और भट्टि या भर्तृहरि को एक मानते हैं, यह एक विवादास्पद विषय है, अतः यहाँ इसके विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। इतिहास में वलभी में श्रीधरसेन के नाम के चार राजा हुये थे। अन्तिम श्रीधरसेन का समय 641 ई० माना जाता है और प्रायः विद्वान् इन्हीं के समकालीन और आश्रित[1] भट्टि को मानते हैं। परन्तु यह गणना फ्लीट आदि की भ्रामक गणना के आधार पर की गई है। भारतीय इतिहास में गुप्तों

(1) काव्यमिदं विहितं मया वलभ्यां श्रीधरसेननरेन्द्रपालितायाम्।
कीर्तिरतो भवतान्नृपस्य तस्य क्षेमकरः क्षितिपो यतः प्रजानाम्॥

का अन्त और बलभी भंग 375 ई० में अर्थात् गुप्तराज्यारम्भ के 242 वर्ष पश्चात् हुआ। आधुनिक लेखक इस समय (375 ई०) में गुप्तों का प्रारम्भ मानते हैं, अतः भारतीय गणना से अन्तिम श्रीधरसेन 641 ई० में नहीं 400 ई० में हुआ, अतः भट्टि 400 ई० या इससे पूर्व हुये, यही प्रामाणिक है। इसकी पुष्टि एक अन्य प्रमाण से होती है। भामह संस्कृत का प्राचीनतम काव्य-शास्त्री था, जिसका लक्षणग्रन्थ इस समय उपलब्ध है। भामह ने भट्टि का एक मिलता जुलता श्लोक उद्धृत किया है—

व्याख्यागम्यमिदं काव्यं उत्सवः सुधियामलम्।
हता दुर्मेधश्चास्मिन् विद्वत्प्रियतमा मया। (भामह)

दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्तादर्श इवान्धानां भवेद्व्याकरणादृते॥ (भट्टि)

भामह का समय 400 ई० से पूर्व था, अतः भट्टि भामह का पूर्ववर्ती था। माघ ने भी भट्टि के काव्य का अनुकरण किया है।

इस समय भट्टि का एकमात्र काव्य 'भट्टिकाव्य' नाम से प्रसिद्ध है, वस्तुतः इसका नाम 'रावणवध' है। इसमें 22 सर्ग और 3624 श्लोक हैं। स्पष्ट है कवि ने काव्य में रामचरित का वर्णन किया है, परन्तु काव्य के व्याज से व्याकरण के नियम और अलंकारशास्त्र (सर्ग 10-13 तक) का भी वर्णन है। त्रयोदश सर्ग में ऐसे पद्य हैं जो संस्कृत होते हुये भी प्राकृत के हैं, यही भट्टि-काव्य की महती विशेषता है। वैसे भट्टिकाव्य रस, अलंकारादि की दृष्टि से भी उच्चकोटि का काव्य है और भट्टि इससे महाकवियों की श्रेणी में आते हैं।

भारवि

कालिदास के अनन्तर महाकवि भारवि का संस्कृतललितसाहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में उच्चतम स्थान है। भारवि के प्रपौत्र दण्डी ने भारवि को वाणियों का मूलस्रोत (प्रभव)[1] कहा है। अन्य एक कवि ने भारवि की काव्य-प्रभा की तुलना सूर्यप्रभा से की है।[2]

---

(1) स मेधावी कविर्विद्वान् भारविं प्रभवं गिराम्।
अनुरुध्याकरोन्मैत्री नरेन्द्रे विष्णुवर्धने॥
(अवन्तिसुन्दरी कथासार)

प्रकाशं सर्वतो दिव्यं विदधाना सतां मुदे।
प्रबोधनपरा हृद्या भा रवेरिव भारवेः॥

जीवन परिचय एवं समय—कालिदास के समान भारवि के सम्बन्ध में भी किंवदन्ती प्रचलित है कि वे बाल्यकाल में मूर्ख थे और पशुचारण करते थे और एक बार वे अपने पिता का वध करने के लिये उद्यत्त हो गये। उत्तर-काल में उन्होंने विद्या ग्रहण की और महान् विद्वान बने।

भारवि का समय आधुनिक संस्कृत इतिहासकार प्रायः 550 ई० या 600 ई० के आसपास मानते हैं, क्योंकि एहोल शिलालेख (634 ई०) में रविकीर्ति ने कालिदास के साथ भारवि का बड़े आदर से उल्लेख किया है—

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः ॥

जयादित्य और वामन ने अष्टाध्यायी की वृत्ति काशिका में भारवि के अनेक श्लोकांश उद्धृत किये हैं—यथा—

'संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः' इत्यादि।

जयादित्य का समय 600 ई० के आसपास था। अतः भारवि इनसे पर्याप्त पूर्व हुये। दण्डी की अवन्तिसुन्दरी कथासार से ज्ञात होता है कि भारवि उनके प्रपितामह थे और उनसे चार पीढ़ी पहले हुये। दण्डी का समय 550 ई० के निकट था, क्योंकि 640 से पूर्व विज्जिका ने दण्डी का उल्लेख किया है, अतः भारवि दण्डी से एक या डेढ़ शती पूर्व हुये, यदि एक पीढ़ी का समय 25 वर्ष भी माना जाये तो भारवि, दण्डी से एक शती पूर्व अर्थात् 450 ई० के आसपास हुये, इनका अस्तित्व 450 से 500 ई० तक अवश्य रहा होगा। स्पष्ट है कि दण्डी के पूर्वज भारवि भी दाक्षिणात्य थे और संभवतः किसी कांचीनरेश के सभापण्डित थे। इनका एक नाम दामोदर था अथवा इनके मित्र का नाम दामोदर था, जो कांचीनरेश विष्णुवर्धन के सभापण्डित थे।

किरातार्जुनीय—महाकवि भारवि की एकमात्र कृति किरातार्जुनीय काव्य उपलब्ध है। इसमें १८ सर्ग हैं। इसकी कथा महाभारत वनपर्वान्तर्गत कैरातपर्व से ली गई है। यद्यपि कथानक बहुत विस्तृत नहीं है, परन्तु कवि इसका काव्यमय विस्तार 18 सर्ग में किया है। प्रथम सर्ग में युधिष्ठिर का गुप्तचर उनको दुर्योधन के समाचार सुनाता है, जिसे सुनकर द्रौपदी पाण्डवों को युद्ध करने की प्रेरणा देती है, द्वितीय सर्ग में द्रौपदी के समर्थन में भीमसेन का भाषण है। तृतीय सर्ग में युधिष्ठिर व्यास से परामर्श लेते हैं, उनकी सम्मति थी कि अर्जुन दिव्यास्त्र हेतु हिमालय पर तप करें। तदनन्तर अर्जुन एक यक्ष के साथ हिमालय पर जाता है। चतुर्थ से एकादश सर्गपर्यन्त महाकवि भारवि ने ऋतु, पर्वत, क्रीड़ा, सूर्योदय सूर्यास्त इत्यादि प्राकृतिक

हृदयस्पर्शी मार्मिक वर्णन है, परन्तु इसमें अलंकार बाहुल्य एवं कल्पनाधिक्य होने से कृत्रिमता आ गई है, वास्तविकता कम है। इसके आगे अर्जुन की तपस्या और किरातवेशधारी शिव के साथ अर्जुन के घोर युद्ध का वर्णन है। अन्त में शिव अर्जुन के पराक्रम से प्रसन्न होकर उन्हें दिव्यास्त्र (पाशुपतास्त्र) प्रदान करते हैं और अर्जुन युधिष्ठिर के पास लौट आता है।

महाकवि भारवि ने महाभारत, कैरातपर्व को लम्बा खींचा है और अनेक कल्पनायें की हैं, यथा स्कन्द के सेनापतित्व में शिवसेना का अर्जुन से युद्ध। यह अर्जुन के पराक्रम को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाने के लिये जोड़ा गया है।

भारवेरर्थगौरवम्—किरातार्जुनीय[1] महाकाव्य की अनेक विशेषतायें हैं। यह महाकाव्यों (रघुवंश, किरातार्जुनीय और शिशुपालवध) की बृहत्त्रयी में सम्मिलित है। प्रत्येक सर्ग का प्रारम्भ 'श्री' पद से और अन्त 'लक्ष्मी' शब्दः से होता है—यथा—प्रथम सर्ग का प्रथम श्लोक इस प्रकार है—'श्रियः कुरूणामधिपस्य पालिनीम्——।' महाकवि भारवि ने अपने काव्य में राजनीति और नीति का श्रेष्ठतर परिचय दिया है, उनके अनेक श्लोक या श्लोकांश—संस्कृत पण्डितों के लिये नीतिवाक्य या लोकोक्ति बन गये हैं, कुछ निदर्शन द्रष्टव्य हैं—

सहसा विदधीत न क्रियामविवकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पदः।

(२।३)

हिन्दी में कहावत है 'बिना विचार जो करे सो पाछे पछताये।' उपर्युक्त श्लोक का भावार्थ यह है 'बिना सोचे समझे किसी (विशिष्ट) कार्य को नहीं करना चाहिये, उससे बड़ी आपत्ति आ सकती है। जो व्यक्ति विचारपूर्वक कार्य करता है तो उसके गुणों से मोहित सम्पत्ति स्वयं उसका वरण करती है।" उदाह्रियमाण निम्न श्लोक भी कूटनीतिपरक है—

व्रजन्ति ते मुढ़धियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः

प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथाविधा न संवृत्तांगान्निशिता इवेषव :

---

(1) 'किरातार्जुनीय' पद द्वन्द्वसमास है। किरात (शिव) और अर्जुन का युद्ध होने के कारण काव्य का यह नाम रखा गया।

दुष्ट के साथ दुष्टता करनी चाहिये—'शठे शाठ्यं समाचरेत् 'इसका' यही भाव है।

दो श्लोकांश भी द्रष्टव्य हैं, जो नीतिवाक्य हैं—

'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'
हितकारक एवं मनोहर वचन दुर्लभ है।
'न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषाहितैषिणः।'
वास्तविक हितैषी व्यर्थ में प्रिय नहीं बोलते।

किरातार्जुनीय अलंकार प्रधान महाकाव्य है। इसमें भाषा और व्याकरण के विशिष्ट पद प्रयुक्त हैं। यथा आत्मनेपद लुङ् कर्तृवाक्य, कर्मवाच्य आदि के विशिष्ट प्रयोग, यथा—

'वृणुते' 'तिष्टते' दर्शयते, आजघ्ने आदि प्रयोग द्रष्टय हैं। समासों का पर्याप्त प्रयोग है, फिर भी अधिक क्लिष्टता नहीं ; विशिष्ट भाषा प्रयोग के कारण ही दण्डी ने भारवि को 'प्रभवं गिराम्' कहा है। वे निपुण वैयाकरण भी थे।

भारवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, यमकादि के साथ संसृष्टश्लेष का प्रयोग अधिक किया है, शुद्ध श्लेष का कम' यथा—

'मन्त्रपदादिवोरगः' (1।24); 'आत्मवधूमिव श्रियम्' (1।31) यहाँ श्लेष उपमालंकार से अनुप्राणित है।

एकाक्षरपद चित्रकाव्य भारवि की विशिष्टता है जो संभवतः पहिले के कवियों में नहीं पाई जाती। एक ही अक्षर द्वारा पूरे श्लोक या श्लोकांश की रचना के दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

'न नोननुन्नो नुन्ननो नाना नानानना ननु।' स सासि सासुसुः सासो' इत्यादि।

इन पद्यों के एक से अधिक अर्थ निकलते हैं, जो भारविकाव्य और संस्कृत भाषा का ही चमत्कार है। ये अनुप्रास और यमक अलंकार के भी अनुपम उदाहरण हैं। अतः अर्थगौरव भारवि का प्रधानगुण था। शब्दालंकारों का यह अद्भुत प्रयोग ही भारवि को काव्य के उच्च शिखर पर पहुँचाता है। संस्कृतललित साहित्य में भारवि का अर्थगौरव प्रसिद्ध एवं सम्पूजित है। इस अर्थगौरव (शब्दालंकार) के अन्य कुछ विशिष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

सकलहंसगणं शुचि मानसम् ।
सकलहं सगणं शुचिमानसम् ।। (५।१३)

एक का अर्थ है—समस्त हंसों से युक्त पवित्र मानसरोवर

द्वितीय का अर्थ है— कलह से युक्त शुद्ध मन वाले गणों से युक्त शिव ।

पयोधरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपीनस्तनी (८।१८)
उपर्युक्त श्लोक में 'पयोधर' शब्द का प्रयोग 'स्तन' के लिये ही है परन्तु पद्य में दो पर्यायों का प्रयोग चमत्कार उत्पन्न कर रही है । निम्न श्लोक में 'गो' गाम् और' गवां गणः' पद भी अर्थगौरव के श्रेष्ठ उदाहरण हैं—

उपारताः पश्चिमरात्रिगोचरादपारयन्तः पतितुं जवेन गाम् ।

तमुत्सुकाश्चक्रुरवेक्षणोत्सुकं गवां गणाः प्रस्नतपीवरौधसः ।। (४।१०)
भारविकाव्य के विषय में उसके मर्मज्ञ टीकाकार मल्लिनाथ (१४ शती) ने लिखा है—

नारिकेलफल संनिभं वचो भारवेः सपदि यद्विभज्यते' ।
स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमस्य रसिका यथेप्सितम् ।।

"भारवि की काव्यवाणी नारीकेल फल के सदृश है जो शीघ्र या प्रतिपद फोड़ने पर ही रसगर्भनिर्भर मधुर जल का स्वाद रसिकों को यथेच्छ चखाती है ।" अतः भारविकाव्य का रस आसानी से पल्ले नहीं पड़ता, उसको प्रयत्न-पूर्वक तोड़ना या फोड़ना पड़ता है नारियल के समान तभी पाठक रसिक उसके रस का यथेच्छ आस्वादन कर सकता है, अन्यथा नहीं ।

(महाकवि माघ)

परिचय— माघ ने अपने महाकाव्य शिशुपालवध में स्वयं संक्षेप में अपना परिचय लिखा है । उनके पितामह का नाम सुप्रभदेव था, जो धर्मनाभ या वर्मलात नामक राजा के मन्त्री थे । सुप्रभदेव के पुत्र हुये दत्तक और इनके पुत्र हुये माघ । माघ का समय अनेक प्रमाणों से विद्वानों ने अनुमानित किया है। यथा माघ ने एक पद्य में न्यास का उल्लेख किया[1] जो जिनेन्द्रबुद्धि (सप्तमी

(१) अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना ।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा ।

(शि० व० २।११४)

शती के अन्त में) ने रची, यह काशिका की टीका है। परन्तु इस आधार पर माघ का समय निश्चित नहीं किया जा सकता, क्योंकि वृत्ति और न्यास नाम के ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीनकाल में रचे जा चुके थे और अनेक थे, स्वयं जिनेन्द्रबुद्धि ने कुणी, चुल्लि आदि न्यासकारों का उल्लेख किया है। राजस्थान के वसन्तगढ़ में वर्मलात (धर्मनाभ) का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो ६२५ ई० का है अतः माघ के पितामह सुप्रभदेव इसी समय हुये। माघ का समय इनसे ५० वर्ष अनन्तर ६८५ ई० के आसपास होना चाहिये। आनन्दवर्धन (८५० ई०) ने माघ के दो पद्यों[1] को उद्धृत किया है। अतः माघ आनन्दवर्धन के पूर्ववर्ती थे।

परम्परा के अनुसार महाकवि माघ किसी राजा भोज के आश्रित कवि थे। भोजप्रबन्ध के अनुसार वे धारानगरीपति भोज के राजकवि थे। उसके माघ अनुसार महादानी थे, उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी और निर्धन हो गये, तब उन्होंने एक पद्य बनाकर राजा भोज के पास भेजा।[2] राजा ने पत्र पढ़कर माघ को प्रचुर धन दान में दिया। मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि में भी एक कथा मिलती है। आधुनिक अनेक लेखक इसका सम्बन्ध धाराधीश भोज (१०१०-१०५० ई०) से जोड़कर कथा को काल्पनिक कहते हैं। परन्तु भोज नाम के राजा तो ऋग्वेद या ययाति (१३००० वि० पू०) के समय से होते आये हैं, यादवों का भोजवंश प्रसिद्ध था, जो महाभारत काल से पूर्व भी प्रसिद्ध था अतः माघ का सम्बन्ध किसी अन्य भोज से तो सकता है। कर्नल टाड ने अपने ग्रन्थ राजस्थान में तीन भोज राजाओं का उल्लेख किया है जो क्रमशः ५७५ई०, ६६५ई० और १०४२ ई० में हुये। माघ का समय ६६५ ई० के आसपास था, अतः इसी समय होने वाले राजस्थानीय भोज राजा से माघ का सम्बन्ध धाराधीश भोज से जोड़ दिया जो गलत ही है।

इसके अतिरिक्त माघ के सम्बन्ध में सम्पन्नता, दानवीरता और दरिद्रता की कहानी सर्वथा काल्पनिक नहीं हो सकती, क्योंकि प्राचीनग्रन्थों में माघ

---

(1) (क) 'रम्या इति प्राप्तवती पताकाः'
(ख)—'आसाकुलः परिपतत् परितो निकेतान्'
(ध्वन्यालोक)

(2) कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः
(भो० प्र० ११।६४)

के दरिद्रता सम्बन्धी दो पद्य मिलते हैं—यथा—क्षेमेन्द्रकृत औचित्यविचार चर्चा में यह माघपद्य मिलता है—

बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते ।
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ॥
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं ।
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः ॥

"भूखों द्वारा व्याकरण नहीं खाया जा सकता, प्यासों द्वारा काव्यरस नहीं पीया जा सकता। केवल विद्या से किसी ने अपने कुल का उद्धार नहीं किया, अतः धन कमाओ, कलायें व्यर्थ हैं।"

निम्न पद्य में, जो सुभाषितरत्नावलि में मिलता, है अन्य सभी गुणों की निन्दा की है और अर्थ (धन) की महिमा गाई है—

शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
मां श्रौषं जगति श्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम् ॥
शौर्येवैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा ।
येनैकेन बिना गुणास्तृणबुसप्रायाः समस्ता अमी ॥

"शील शैल तट से गिर जाय, वंश या कुल आग में जल जाय, मैंने ऐसे विद्वान् का नाम नहीं सुना जिसने संसार में केवल विद्या से क्लेशों को काट दिया हो, वैरी शौर्य पर पज्र गिर जाय, परन्तु मेरे पास सदा धन रहे जिसके बिना समस्त गुण भूसे के समान थोथे हैं।"

माघ निश्चय ही दीर्घकाल तक राजकवि रहे और सम्पन्नता भी भोगी, परन्तु उनको दरिद्रता के भी कटु अनुभव हुए जो उपर्युक्त पद्यों से व्यक्त होते हैं।

माघ राजस्थान के श्रीमाली ब्राह्मण और बाँसवाड़ा के निवासी थे। माघ द्वारा रैवतक पर्वत के वर्णन से भी सिद्ध है जो वर्तमान गिरनार है तथा राजस्थान गुजरात की सीमा पर स्थित है।

शिशुपालवध—इसमें बीस सर्ग हैं। यह कथा महाभारत के सभापर्व से ली गई है और स्वाभाविकतया कवि ने महाभारतीय आख्यान में अनेक परिवर्तन किये हैं, यथा युद्ध की सूचनायें दूतों से कराई गई हैं, जबकि महाभारत में स्वयं पक्षीप्रतिपक्षी ऐसा करते हैं। महाभारत के अतिरिक्त माघकाव्य पर अपने पूर्ववर्ती अनेक श्रेष्ठ कवियों का प्रभाव निश्चित रूप से पड़ा। इनमें से कालिदास के रघुवंश, भट्टि के रावणवध, भर्तृमेण्ठ के हयग्रीववध और भारवि के किरातार्जुनीय का सर्वाधिक प्रभाव माघ पर परिलक्षित

होता है। इनमें भर्तृमेण्ठ सर्वाधिक प्राचीनतम कवि थे जो शूद्रक, आद्य कालिदास और कश्मीरराज मातृगुप्त के समकालिक थे।[1] हयग्रीववध में भर्तृमेण्ठ ने प्रतिनायक हयग्रीवदैत्य का अधिक विस्तार से वर्णन किया था, परन्तु यह दोष माघ ने अपने काव्य शिशुपालवध में नहीं आने दिया।[2] माघ ने वैयाकरणिक प्रयोगों में भट्टि के रावणवध का अनुकरण किया। अलंकार-योजनादि में कालिदासद्वयी का प्रभाव स्पष्टतः ही है। परन्तु माघ ने भारवि की प्रतिद्वन्द्विता में आगे बढ़ने के लिये सर्वाधिक अनुकरण किरातार्जुनीय काव्य का ही किया। माघ ने भारवि के अनुकरण पर अपने काव्य का कथा-वस्तु महाभारत से ली, और उसको उन्नीस नहीं 20 सर्गों में पूरा किया जबकि भारविकृत किरातार्जुनीय 18 सर्गों में है। शिशुपालवध का इतिवृत्त किरातार्जुनीय से लघुतर होते हुये भी काव्य दीर्घतर बनाया। माघ ने भारवि के अनुकरण पर अपना काव्य भी 'श्री' पद से प्रारम्भ किया—

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।

(शि० व० 1/1)

और प्रत्येक सर्ग का अन्त भी 'श्री' शब्द से किया गया है। काव्यवर्णन यथा संवाद, प्रकृतिवर्णन, युद्धवर्णन, राजनीतिवर्णन में भी पर्याप्त साम्य है। यथा किरात काव्य का व्यासयुधिष्ठिरसंवाद, शिशुपालवध के नारद-कृष्ण संवाद से तुलनीय है, इसी प्रकार अन्य पर्वत आदि वर्णन समझने चाहिये। अतः माघ पर भारवि का सर्वाधिक प्रभाव था, भारवि इनसे न्यूनतम दो शती पूर्व अवश्य हुये थे।

शिशुपालवध का मुख्य इतिवृत्त इस प्रकार है—प्रथम सर्ग में कृष्ण-नारद संवाद है, जिसमें नारद कृष्ण को शिशुपाल के वध का परामर्श देते हैं, द्वितीय सर्ग में कृष्ण बलराम और उद्धव की मन्त्रणा और भाषण है, इसमें

(1) राजतरंगिणी (तरंग 3, श्लोक 264-65) में कल्हण ने हयग्रीववध का उल्लेख इस प्रकार किया है—
हयग्रीववधं मेण्ठस्तदग्रे दर्शयन् नवम्। आसमाप्ति ततो नापत् साध्वसाध्विति वा वचः। अथ ग्रन्थयितुं तस्मिन् पुस्तके प्रस्तुते-न्यधात्। लावण्यनिर्माणभिया राजाधः स्वर्णभाजनम्। अन्तरज्ञतया तस्य तादृश्या कृतसस्कृतिः। भर्तृमेण्ठः कविर्मेने पुनरुक्तं श्रियोऽर्पणम्॥

(2) अंगस्याप्रधानस्यातिविस्तरेण वर्णनम्। यथा हयग्रीववधे हयग्रीवस्य।
(काव्यप्रकाश, सप्तम उल्लास)

कवि ने राजनीति का श्रेष्ठतर परिचय दिया है। तृतीय सर्ग में कृष्णसेना के इन्द्रप्रस्थप्रयाण का वर्णन है, चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का मनोहारि वर्णन है, पञ्चम सर्ग में कृष्णसेना के पर्वत पर शिविर का वर्णन है, षष्ठ सर्ग में षड्ऋतुओं का सालंकृत बखान है, सप्तमसर्ग में यादवों की कामक्रीडा और विचरण का उल्लेख है, अष्टमसर्ग में स्नानक्रीडा, नवमसर्ग में सूर्यास्तादि का, दशम सर्ग में सुरासुन्दरी सेवन और एकादशसर्ग में प्रात:काल का अलंकृत वर्णन है। द्वादशसर्ग में सेनाप्रस्थान, त्रयोदश सर्ग में कृष्णद्रष्टुमना पौरस्त्रियों का उल्लेख और चतुर्दश सर्ग में राजसूययज्ञ वर्णन है।

पञ्चदश सर्ग में कृष्णपूजा होती है, जिससे कुपित होकर शिशुपाल, कृष्ण, भीष्म और युधिष्ठिर पर दोषारोपण करता है। षोडश सर्ग में शिशुपालदूत का कृष्ण से वार्तालाप कथित है। सप्तदश से विंशतम सर्गपर्यन्त युद्ध का वर्णन है और अन्त में कृष्ण शिशुपाल का वध करते हैं।

माघे सन्ति त्रयो गुणा:—माघकाव्य की प्रशंसा में निम्न उक्तियाँ संस्कृत साहित्य जगत् में प्रसिद्ध है—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिन: पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणा: ।

"कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी का पदलालित्य प्रसिद्ध है, परन्तु माघ में ये तीनों ही गुण हैं।"

'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' ।

'नौ सर्ग के पश्चात् माघकाव्य में कोई नया शब्द प्रयोगार्थ नहीं रहा।'

'मेघे माघे च गतं वय:' ।

'मेघदूत और माघकाव्य के अध्ययन में ही आयु बीत गई।'

'तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय: ।

'तभी तक भारवि की प्रतिभा चमकती है जबतक माघ का उदय नहीं होगा।'

माघो माघ इवाशेषं क्षम: कम्पयितुं जगत् ।
श्लेषामोदभरं चापि सम्भावयितुमीश्वर: ॥

"माघ में माघ मास के समान समस्त संसार को (शीत से) कँपा देने की शक्ति है, वह श्लेष से पूर्ण (या आश्लेषा नक्षत्र युक्त) जगत् को प्रसन्न करने में भी समर्थ है।"

माघकाव्य के वक्ष्यमाण गुणों को जानने से पूर्व यह ध्यातव्य है कि वे महाकवि व्याकरण के धुरन्धर पण्डित होने साथ वेद, वेदांग, योग, सांख्य, इतिहासपुराण, कामशास्त्र, भूगोल, आयुर्वेद, राजनीतिशास्त्र, नीतिशास्त्र, संगीत, आदि के निष्णात विद्वान थे। माघकाव्य में कामशास्त्र और राजनीति का विशेष प्रस्फुटन हुआ है। माघ राजकवि होने के साथ संभवत राजमन्त्री भी थे अथवा उन्होंने राजनीति का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया था; एवं राजान्तःपुर की कामक्रीडाओं से भी वे पूर्ण परिचित थे।

माघ ने प्रायः सभी अलंकारों का समुचित एवं मनोहर प्रयोग किया है, एक दो उदाहरण द्रष्टव्य है, निदर्शन का श्रेष्ठतम एवं प्रसिद्ध उदाहरण है—

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नियातिचास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्॥
(4/20)

"किरणों का विस्तार करता हुआ प्रातः सूर्य पर्वत के एक ओर उदित हो रहा है तो दूसरी ओर चन्द्रमा अस्त हो रहा है, ऐसी स्थिति में पर्वत गजतुल्य शोभा को प्राप्त हो रहा है कि इसके दोनों ओर रज्जु (रस्सी) से बद्ध दो विशाल घण्टे लटक रहे हैं।" इस अलंकार प्रयोग के कारण कवि को 'घन्टामाघ' की उपाधि प्राप्त हुई।"

यमक और अनुप्रास की छटा माघ के प्रथम पद्य में ही दृष्टिगोचर होती है—

श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।

अन्यत्र भी द्रष्टव्य है—

'प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे' (1/56)

"प्रहार करने वाले वरुण के नागपाश शीघ्र भयभीत हो उसी के गले में जा लगे।'

माघ ने भारवि के अनुकरण पर अनेक प्रकार की रचना की है, यथा नीति सम्बन्धी श्लोक द्रष्टव्य है—

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥
(2/86)

इस पद्य में काव्य और राजनीति दोनों के सम्बन्ध में एक सुन्दर एवं सन्तुलित नीति का उपदेश दिया है। यथा नीतिज्ञ वीर राजा न तो केवल

भाग्य भरोसे रहता है और न बलपौरुष में डूबा रहता है, यथा विद्वान् (सत्कवि) शब्द और अर्थ दोनों का ही पूरा ध्यान रखता है।

भारवि के समान माघ ने उन्नीसवें सर्ग में एकाक्षरचित्र काव्य की रचना की है। यहाँ पर उन्होंने सर्वतोभद्र, चक्र, गोमूत्रिका आदि अलंकारों के श्रेष्ठ निदर्शन प्रस्तुत किये हैं, एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

राजराजीरूरो जाजे राजिरेऽजोऽजरोऽरजाः ।
रेजारिजूर जो जीर्जी रराजुर्जुरजर्जुरः ॥

इसमें 'र' और 'ज' केवल दो अक्षरों का प्रयोग है। व्याकरण में उन्होंने भट्टि के रावणवध का अनुकरण किया—उनके व्याकरण निष्ठ प्रयोग द्रष्टव्य हैं—यथा—लोटप्रयोग लुनीहि, मुषाण (1/51)। और पर्यपूपुजत् (1/14) अचूचुरत् (1/16) लुङ् प्रयोग हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों में माघ के तीनों गुण—उपमा (समस्त अलंकारों की प्रतिनिधिभूत), अर्थगौरव और पदलालित्य हैं। इन तीनों गुणों का एक-एक उदाहरण माघकाव्य में और द्रष्टव्य है—

व्यतनोदपास्य चरणं प्रसाधिकाकरपल्लवाद्रसवशेन काचन ।
द्रुतयावकैकपदचित्रितावनिं पदवीं गतेव गिरिजा हरार्धताम् ।
(13/33)

"कोई पौरयुवती कृष्ण दर्शनार्थ प्रसाधिका (सेविका) से अपने पैर यावक से रंगवाती हुई छुड़ाकर भागी, उसके एक चरण का अङ्कन पृथिवी पर ऐसे दिखलाई पड़ रहा था, मानो पार्वती का अर्धांग शिव के साथ और अर्धांग पृथिवी पर हो।'

जटाजूटयुक्त नारद की उपमा बेलयुक्त हिमालय से की है—

दधानमम्भोरुहकेसरद्युतिर्जटा···धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव । (1।5)

अर्थगौरव निम्न पद्य में द्रष्टव्य है—

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा ।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम् ॥ (6।25)

"कौंधती हुई विद्युत्मय मेघावलि रैवतक पर्वत पर उसी प्रकार छा गई जैसे कोई चंचलनेत्रा पीनपयोधरा युवती असमय में अधीर होकर प्रिय के पास आये। सालंकृत पदलालित्य है—

समुन्नमद्भिर्न समुन्नमद्भिः ।
निपन्नगायाविपन्नगानाम् । (4।15)

रत्नाकर—इनके द्वारा रचित महाकाव्य का नाम 'हरविजय' है । ये कश्मीरी कवि थे जो वहाँ के राजा अवन्तिवर्मा के समय (850-885 ई०) में हुये और अनेक कवियों के साथ इसी राजा के सभारत्न थे—

मुक्ताकण: शिवस्वामी कविरानन्दवर्धन: ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मण: ।। (राजतरंगिणी 4।635)

अत: मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन के साथ रत्नाकर भी कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के आश्रित थे । रत्नाकर के पिता का नाम अमृतभानु था । कवि रत्नाकर अवन्तिवर्मा से पूर्व कश्मीर के ही प्रसिद्ध नरेश विद्वान् जयापीड (779 ई०-813 ई० तक) की राजसभा में भी रहे ।

रत्नाकरकृतहरविजय महाकाव्य में शंकरकृत अन्धकासुरविजय का विस्तार से वर्णन है, अत: काव्य में रस, अलंकारादि के साथ शैवदर्शन का विशेष प्रतिपादन है । इस ग्रन्थ में 50 सर्ग और 4320 पद्य हैं । रत्नाकर की कीर्ति शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में फैल गई थी, उनसे प्राय: एक शती पश्चात् होनेवाले दाक्षिणात्य प्रसिद्ध कवि राजशेखर ने लिखा—

'मा स्म सन्तु हि चत्वार: प्रायो रत्नाकरा इमे ।
अतीव सत्कृतो धात्रा कवी रत्नाकरोऽपर: ।।

शिवस्वामी—रत्नाकर के समकालीन और अवन्तिवर्मा के आश्रित महाकवि शिवस्वामी ने 'कापिफणाभ्युदय' महाकाव्य रचा । महाकाव्य का कथानक बौद्धग्रन्थ 'अवदानशतक' से लिया गया है । यह काव्य प्राय: अप्रसिद्ध ही है ।

अभिनन्द—यह भी कश्मीरी कवि थे, जिन्होंने नवमशती के मध्य में 'रामचरित' संज्ञक महाकाव्य लिखा, इसमें 36 सर्ग हैं । ये मूल में गौडदेश-निवासी (बंगाली) थे, अत: इनको गौडाभिनन्द भी कहते हैं । ये पालवंशीय राजा हारवर्ष के दरबार में भी रहे, इन्होंने लिखा है—

तथा तूर्णं कवे : कस्य निर्गतं जीवतो यश: ।
हारवर्षप्रसादेन शतानन्देर्यथाऽधुना ।।

शतानन्द इनके पिता का नाम था, जो स्वयं एक श्रेष्ठ कवि थे । सोड्ढल कवि ने अभिनंद को 'अर्थेश्वर' कहा है, बहुत से आलोचक इन्हें कालिदास के समान उच्चकोटि का कवि मानते हैं ।

क्षेमेन्द्र—ये एकादश शती में कश्मीर के प्रसिद्धतम कवि और काव्यशास्त्री थे, इन्होंने अनेक विषयों पर लेखनी उठाई, यथा इन्होंने बृहत्कथा

मंजरी, रामायण मंजरी, नृपावली (इतिहास), पद्य कादम्बरी, औचित्यविचार चर्चा, कविकंठाभरण, सुवृत्ततिलक शिशुवंश, भारतमंजरी आदि अनेक बिषयों के विपुल ग्रन्थ लिखे । ये प्रसिद्ध साहित्यशास्त्री (आलोचक) भी थे । इनका एक नाम व्यासदास था, क्योंकि इन्होंने महर्षि व्यास के समान विपुल साहित्य का निर्माण किया । इनका समय एकादश शतक था, ये कश्मीर के अनन्त और कलश नाम के राजाओं के दरबार में रहे ।

काव्यों में इनका 'दशावतारचरित' प्रसिद्ध है, जिसमें विष्णु के दश अवतारों का चरित वर्णित किया गया है, इन्होंने बुद्ध को नवम और कल्कि को दशम अवतार माना है। क्षेमेन्द्र का अन्यत्र भी वर्णन किया जायेगा ।

मंखक—इनका महाकाव्य 'श्रीकंठचरित' प्रसिद्ध है, ये क्षेमेन्द्र के समकालिक कश्मीरी कवि थे, इसमें शिव द्वारा त्रिपुरासुर विजय का वर्णन है । इस काव्य में 25 सर्ग हैं ।

हरिश्चन्द्र—यह हरिश्चन्द्र, प्राचीन गद्यकार नृप[1] हरिश्चन्द्र जो चन्द्रगुप्त साहसांक का भ्राता या सम्बन्धी था, से भिन्न और अर्वाचीन जैन कवि था, जिसने एकादश शती में 'धर्मशर्माभ्युदय' काव्य लिखा । इनके पिता का नाम आद्रदेव और माता का नाम रथ्यादेवी था । इस ग्रन्थ में कवि ने पन्द्रहवें जैन तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित गाया है । काव्य में 21 सर्ग हैं ।

हेमचन्द्राचार्य—ये एक सर्वशास्त्रविशारद जैन विद्वान् थे, जिन्होंने (1088-1172 ई०) काव्यशास्त्र, व्याकरण, धर्म, दर्शन, आदिविषयक अनेक विशाल ग्रन्थ लिखे । इनके 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित' महाकाव्य में जैनधर्म के तिरेसठ महापुरुषों का चरित वर्णित है, इस महाभारतसदृश विशालकाव्य महाकाव्य में दश पर्व हैं ।

आचार्य हेमचन्द्र का सम्बन्ध चालुक्य नरेश सिद्धराज जयसिंह (1092-1143) और कुमारपाल (1143।1173 ई०) से था । इन राजाओं के परामर्श से इन्होंने अनेक शास्त्रों की रचना की, यथा 'सिद्धहेम', 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित' इत्यादि ।

कविराज माधवभट्ट—इनका महाकाव्य 'राघवपाण्डवीय' 13 सर्गों में रचित है। स्पष्ट है इस महाकाव्य में श्लेष के सहाय्य से रामायण (रामचरित)

---

(1) भट्टार हरिश्चन्द्र गद्य काव्य के अतिरिक्त आयुर्वेद आदि का कर्त्ता था, इसका भ्राता चन्द्रगुप्त भी श्रेष्ठ कवि था—राजशेखर ने लिखा है—'हरिश्चन्द्र-चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्' ।

और महाभारत (पाण्डवचरित) साथ-साथ चलते हैं। कविराज का समय द्वादश शतक था।

हरदत्तसूरि—इसी के अनुकरण पर हरदत्त ने राघवनैषधीयकाव्य लिखा, जिसमें रामचरित और नलचरित का श्लिष्ट वर्णन है।

चिदम्बर—इन्होंने रामायण, महाभारत और भागवतपुराण के आधार पर 'राघवपाण्डवयादवीय' महाकाव्य लिखा, जिसमें राम, पाण्डव और कृष्ण के चरित श्लेष में चलते हैं।

लोलम्बिराज—इन्होंने 'हरिविलास' काव्य रचा, जिसमें पाँच सर्ग हैं। इसमें बालकृष्ण का चरित वर्णित है। लोलम्बिराज एक श्रेष्ठ कवि थे जिन्होंने श्रृंगार का ललित एवं हृदयस्पर्शी वर्णन किया है—यथा—

> या द्यौस्तारकासुमनसः सुमुखीव भीता
> मुक्ता समं विधुविटेन विलुम्पति स्म। (4।21)

'द्यौ (तारामय आकाश) रूपी सुमुखी स्त्री चन्द्रमा रूपी धूर्त लम्पट से उपभुक्त, होकर डरकर छिपती है।' ये महाकवि धाराधीश भोज (1042 ई०) के समकालीन थे। लोलम्बिराज ने काव्यमय वैद्यकग्रन्थ भी लिखे थे।

चण्ड—द्वादश शतक में चण्डकवि ने 'पृथिवीराजचरित' लिखा जो अपूर्ण ही अष्ट सर्गों में प्राप्य है। यह कवि पृथिवीराज के समकालीन ही था। चण्ड सम्भवतः कश्मीरी कवि थे।

जल्हण—इसी के समकालीन (द्वादशी शती) में जल्हण ने 'सोमपालविजय' काव्य लिखा, जिसमें राजा सोमपाल का चरित वर्णित है।

सन्ध्याकरनन्दी—इन्होंने बंगनरेश रामपाल का चरित (रामपालचरित) लिखा, जिसका राज्यकाल 1104-1130 ई० तक था।

बिल्वमंगल—इनका 'श्रीचिह्नकाव्य' (द्वादश शती) एक श्रेष्ठ काव्य है। इसमें 12 सर्ग हैं।

वाग्भट—जैनकवि वाग्भट ने इसी समय 'नेमिनिर्वाण' काव्य लिखा, इसमें कृष्णसमकालीन और उनके भ्राता, बाइसवें तीर्थंकर नेमिनाथ का चरित वर्णित है। इस नाम के कम-से-कम चार ग्रन्थकार हुये हैं, प्राचीनतम वाग्भट (आयुर्वेदाचार्य अष्टांगसंग्रह कर्त्ता) विक्रम चन्द्रगुप्त द्वि० (135 वि०) के समकालीन था। परन्तु जैनकवि वाग्भट का समय द्वादशी शती था। अन्य दो वाग्भट और थे।

कृष्णनन्द—इन्होंने 'सहृदयानन्द' महाकाव्य लिखा जो 15 सर्गों में है।

चन्द्रप्रभ— इन्होंने 18 सर्गों का महाकाव्य 'पाण्डवचरित' लिखा। ये जैन-कवि त्रयोदश शतक में हुये।

वेंकटनाथ—इनका अपरनाम श्रीवेदान्तदेशिक था, इनका जन्म कांचीवरम् में हुआ था। इन्होंने 'यादवाभ्युदय' महाकाव्य 24 सर्गों में लिखा, जिस पर अप्पय दीक्षित (1600 ई०) ने टीका लिखी। स्पष्ट है काव्य में कृष्ण-चरित का वर्णन है।

वासुदेव—केरलवासी वासुदेव (त्रयोदश शती) ने 'युधिष्ठरविजय' और 'नलोदय' काव्य लिखे।

मल्लाचार्य—इन्होंने चतुर्दशी शती में 'उदारराघव' महाकाव्य 18 सर्गों में रचा, जो केवल आधा ही प्राप्य है।

राजनाथ—ये विजयनगर के राजा (1540 ई०) थे, इन्होंने 20 सर्गों में 'अच्युतरामाभ्युदय' महाकाव्य लिखा।

नीलकण्ठ दीक्षित—इन्होंने 'शिवलीलावर्णन' काव्य लिखा जो 22 सर्गों में है। यह दाक्षिणात्य कवि था, जो सत्रहवीं शती में हुआ।

मेघविजयमणि—इन्होंने 167 ई० के आसपास 'सप्तसन्धान' काव्य लिखा, जिसमें 9 सर्ग हैं, प्रत्येक श्लोक के सात अर्थ निकलते हैं, प्रत्येक पद्य में ऋषभ, शान्तिनाथ, पार्श्व, नेमिनाथ, 'महावीर, कृष्ण और बलदेव का चरित प्रकट किया गया है।

राजमल्ल—इन्होंने 1680 ई० में 'जम्बूस्वामिचरित' महाकाव्य लिखा। ये महाकवि अर्गलपुर (आगरा) के निवासी थे। काव्य में 13 सर्ग और 2400 श्लोक हैं। कवि ने अपने नगर का विशेष विस्तृत वर्णन किया है। इस काव्य में जैन साधु जम्बूस्वामी का चरित वर्णित है।

(श्रीहर्ष)

परिचय—बृहत्त्रयी (किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधचरित) के रचियता महाकवियों में अन्तिम सर्वश्रेष्ठ महाकवि श्रीहर्ष थे। वे अलंकृत काव्य के अन्तिम सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रसिद्ध निर्माता थे, जिनकी कीर्ति का स्तम्भ 'नैषधचरित' महाकाव्य है। यह एक उत्तम एवं कठिन काव्य है।

श्रीहर्ष का समय निश्चित एवं निर्णीत है, वे कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द्र और विजयचन्द्र द्वारा सम्मानित राजकवि थे, इनका समय (राज्यकाल) 1156 से 1193 ई० तक था। महाकवि ने स्वयं लिखा है कि वे कान्यकुब्जेश्वर से सम्मानार्थ प्रतिदिन दो ताम्बूल (पान) और आसन प्राप्त करते थे—

ताम्बूलद्वयमासनं च य लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात् (22।23) इन्होंने अपने पिता का नाम श्रीहरि और माता का नाम मामल्लदेवी बताया है—

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालंकाहीरं सुतम् ।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् ॥

नैषधचरित के अतिरिक्त श्रीहर्ष ने निम्न आठ ग्रन्थ और लिखे—'खंडन खंडखाद्य' (वेदान्त), गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति, विजयप्रशस्ति, स्थैर्यविचार प्रकरण, अर्णववर्णन, छिन्दप्रशस्ति, शिवभक्तिसिद्धि, और नवसाहसांकचम्पू। श्रीहर्ष ने लिखा है कि इन्हें सरस्वती सिद्ध थी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये प्रतिभाशाली विद्वान् महाकवि थे। जनश्रुति है कि प्रसिद्ध काव्यशास्त्री कश्मीरी मम्मटाचार्य श्रीहर्ष के मातुल या कोई सम्बन्धी थे। कहा जाता है कि नैषध-चरित अवलोकन के पश्चात् मम्मट ने कहा था कि यह नैषधचरित मुझे काव्य-प्रकाश के दोषप्रकरण लिखने के बाद मिला, नहीं तो मुझे काव्यदोष ढूढ़ने के लिये अन्य काव्य नहीं देखने पड़ते।

इस समय नैषधचरित में 22 सर्ग हैं, विद्वानों में यह प्रवाद है कि इस महाकाव्य में 60 या 120 सर्ग थे। कम से कम 60 सर्ग वाली बात सत्य प्रतीत होती है, क्योंकि 22 सर्गों तक केवल नल दमयन्ती के विवाह की कथा ही है, श्रीहर्ष के काव्य के विस्तार को देखते हुये यह पूर्ण सम्भव है कि नल की पुनः राज्यप्राप्ति तक का कथानक 60 सर्गों में लिखा गया हो। जो कुछ भी हो, इस समय इसमें 22 सर्ग ही हैं। नैषधचरित शृंगाररस का एक विशाल काव्य है, कुछ आलोचकों के अनुसार कवि जो कामशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था, उसने काव्य के व्याज से कामशास्त्र को ही काव्य का रूप दे दिया है। श्रीहर्ष का भाषा, अलंकार एवं भावप्रकाशन पर पूर्ण अधिकार था, उन्होंने आत्मकत्थना भी की है कि मेरे काव्य से कोई साधारण संस्कृतज्ञ खेले नहीं, यह एक दुर्भेद्य काव्य है, जिसको समझने की शक्ति हर व्यक्ति में नहीं। मेरा काव्य सुधी के अन्तर्मन को भाता है।[1] नैषधकाव्य के सम्बन्ध में प्राचीन आलोचकों में निम्न चार उक्तियाँ प्रसिद्ध चली आ रही हैं—

(1) उदिते नैषधे क्व माघः क्व च भारविः।

(2) नैषधे पदलालित्यम्।

---

(1) (क) ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया।
प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन् खलु खेलतु॥

(ख) मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधियः।
किमस्या नाम स्यादरसपुरुषानादरभरैः॥

(3) नैषधं विद्वदौषधम् ।

(4) नैषधं शृङ्गारामृतशीतगुः ।

अब इन चारों उक्तियों की संक्षेप में व्याख्या करते हैं ।

(1) **उदिते नैषधे क्व माघः क्व च भारविः**—भाषा, अलंकार, रसव्यञ्जना, ध्वनि आदि में नैषधकाव्य शिशुपालवध और किरातार्जुनीय से बढ़-चढ़कर है, भारवि और माघ दोनों की काव्य प्रतिभा श्रीहर्ष के काव्य के सम्मुख विलुप्त-सी होती प्रतीत होती है । श्रीहर्ष का काव्य भारवि के नारिकेलफल सदृश कठोर ही नहीं अन्दर से और बाहर से मधुर रसयुक्त भी हैं । भारवि का अर्थ गौरव प्रसिद्ध है एवं माघ में तीनों गुण (अलंकार, अर्थगौरव तथा पदलालित्य) समाहित है परन्तु श्रीहर्ष के नैषधचरित में सभी गुण इन काव्यों से बढ़े हुये हैं । यथा श्लेष, अनुप्रास और यमक के साथ अर्थ-गौरव और पदलालित्य भी प्रायः प्रत्येक पद्य में मिलता है—

नलिनं मलिनं विवृण्वती पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे ।
चेतो नलंकामयते मदीयम्'

'मेरा मन लंका को नहीं जाता' 'मेरा मन नल को चाहता है, मन अनल (नल नहीं, या अग्नि) को चाहता है ।' ये तीन अर्थ अर्थगौरव एवं पदलालित्य के साथ गर्भित हैं । इसी प्रकार—'स्यादस्या नलदं विना दलने दापस्य कोऽपि क्षमः (4।116) में दो अर्थ तथा 'नायं नलः खलु तवातिमहान लाभो (13।34) में पाँच अर्थ हैं । अतः श्रीहर्ष का काव्य सर्वगुणसम्पन्न था, इसमें अतिशयोक्ति नहीं ।

(2) **नैषधे पदलालित्यम्**—संस्कृत ललित गद्य में महाकवि दण्डी का पदलालित्य विख्यात है । पद्यकाव्य में श्रीहर्ष का पदलालित्य अदभुत है । निम्न पद्यों में पदलालित्य द्रष्टव्य है—

विदर्भजाया मदनस्तथा मनोऽनलावरुद्धं वयसैव वेशितः ।

'कामदेव नल से आक्रान्त (भयभीत) होकर दमयन्ती के मन में घुसा ।'

'कलशं जलसंभृतं पुरः कलहंसः कलयाम्बभूव ह ।'

'जलपूरित कलश को कलहंस से अलंकृत किया ।' इसमें पदलालित्य की छटा द्रष्टव्य है । कल शब्द तीन बार प्रयुक्त होकर पद की शोभा को अतीव व्यक्त कर रहा है ।

(3) **नैषधं विद्वदौषधम्**—नैषध विद्वानों के लिये दवा है, इस उक्ति के दो तात्पर्य प्रकट होते हैं, प्रथम श्रीहर्ष के काव्य, अतीव विद्वत्ता—व्याकरण, दर्शन, मीमांसा, वेदान्त, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योगादि का प्रयोग है, और द्वितीय, उनका काव्य विद्वान् भी बड़ी कठिनाई से समझ सकता है। एक दो उदाहरण वैदुष्य के प्रेक्षणीय हैं—

उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः।
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि ॥ (नै० 17170)

इसमें 'अपवर्गे तृतीया' (अष्टा० 21316) इस सूत्र पर व्यङ्ग किया है कि मोक्ष के लिये स्त्री या पुरुष को छोड़कर नपुंसक की ही गति है। इसी प्रकार अद्वैत के अतिरिक्त श्रीहर्ष ने अपने पद्यों में शून्यवाद, नास्तिक चार्वाक, न्यायादि का कठोर खण्डन किया है, इसी वैदुष्य के कारण उपर्युक्त उक्ति श्रीहर्ष के प्रति विख्यात हुई।

(4)**श्रृंगारामृतशीतगुः**—इसके दो अर्थ हैं, हर्षकाव्य 'शृङ्गाररूपी अमृत का चन्द्रमा है' अथवा 'शृङ्गाररूपी शीतल अमृत (पयः) की कामधेनु (गाय) है।' दोनों ही अर्थ सार्थक हैं। इस काव्य में ललित शृङ्गार (करुणविप्रलम्भ एवं संयोगादि) का जैसा सरस तथा मधुर व्याख्यान किया है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ किंवा अलभ्य ही है।

षष्ठ-अध्याय

गीति और मुक्तक काव्य

संस्कृत संगीत, गीति या गाथा अथवा मुक्तक काव्य अत्यन्त प्राचीन काल से ही रचा जा रहा था। यों तो ऋग्वेद का अलौकिक संगीत ही एक प्रकार का मुक्तक गीति काव्य है। प्रत्येक ऋषि ने पृथक्-पृथक् अवसर पर देवस्तुति या राजस्तुति किया, अन्य विशिष्ट अवसर पर कोई संगीत रचा, वह मुक्त काव्य ही है। इसके अतिरिक्त प्राचीन अर्थशास्त्रकारों ने अनेक नीतिमय श्लोकों की रचना की। तदनुसार स्वयम्भू, स्वायम्भुव मनु, प्राचेतसमनु, विशालाक्ष (शिव), सनत्कुमार, चित्रशिखण्डी सप्तर्षि, इन्द्र काश्यप, पुलोमा दानव, शुक्राचार्य, बृहस्पति, पराशर, गौरवीति, शांलकायन, भारद्वाज, नारद, बुध, सुधन्वा, मरुत्त, वातव्याधि उद्धव, पाराशर्य व्यास ने अनेक अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्र लिखे, उनमें अनेक नीतिमय श्लोक थे। यथा प्राचेतस मनु के श्लोक द्रष्टव्य हैं—

प्राचतसेन मनुना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ।
राजधर्मेषु राजेन्द्र ताविहैकमना: शृणु।
अप्रवक्तारम् आचार्यम् अनधीयानम् ऋत्विजम्।
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥

(शान्तिपर्व)

शुक्राचार्य के नीतिवाक्य इतिहासपुराणों में उद्धृत किये गये हैं, जिनमें से कुछ अन्यत्र उद्धृत किये हैं। इस समय 'शुक्रनीति' ग्रन्थ मिलता है, जो असुरगुरु के नीतिग्रन्थ के आधार पर उत्तरकाल में रचा गया।

प्राचीनकाल में गाथा वाङ्मय भी अतिविशाल था, इनके साथ ही नाराशंसी साहित्य भी प्रथित था। महाभारत में इन्द्र, ययाति, अम्बरीष, व्युषिताश्व आदि की गाथाएँ मिलती हैं। ययाति की एक गाथा मनुस्मृति में मिलती है।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥

महाभारत में और पुराणों में ययातिरचित यह गाथा प्रायः उद्धृत की है—

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम् ॥

शतपथब्राह्मण, ऐतरेयादि ब्राह्मणों में भरतादि सम्राटों से सम्बन्धित ऐतिहासिक गाथायें मिलती हैं जो हमने अन्यत्र उद्धृत की है। अश्वमेध आदि के अवसर पर दिव्यर्षियों द्वारा अनेक गाथायें गाई गई थीं—

यस्य यज्ञे पुरा गीता गाथा दिव्यैर्महर्षिभिः

(वायु० 73।41)

इसी प्रकार यज्ञावसरों पर नाराशंसी (श्लोकों) की रचनायें होती थीं जिनमें राजाओं और ऋषियों की प्रशंसायें की जाती थीं।

महाभारत में उद्धृत दो प्राचीन गाथायें द्रष्टव्य हैं जो किन्हीं प्राचीनतर ग्रन्थों से उद्धृत की गई हैं। प्रथम गाथा ऐतिहासिक है—

स्तुवतो दुहिता त्वं वै याचतः प्रतिगृह्णतः।
अथाहं स्तूमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः ॥

(आदिपर्व 79।34)

एक अन्य गाथा नीतिसम्बन्धिनी है—

गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
× × ×
अन्तरात्मन्यभिहिते रौषि पत्ररथाशुचि।
अण्डभक्षणकर्मैतत् तव वाचमतीयते ॥

(सभापर्व 41।40)

अतः गाथावाङ्मय महाभारतकाल से पूर्व अतिविशाल था।

आगे संक्षेप में नीति, भक्ति श्रृंगारादि सम्बन्धी गीति और मुक्तक कवियों का इतिहास लिखते हैं।

वैशम्पायन—व्यासशिष्य वैशम्पायन के चारकश्लोक व्याकरणग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं। वैशम्पायननीतिप्रकाशिका नामका एक ग्रन्थ उपलब्ध एवं प्रकाशित है। इसमें कितना मूलांश सुरक्षित है, यह कहना कठिन है। वैशम्पायन का समय 3100 वि० पू० था, यह सिद्ध ही है।

कामन्दक—यह प्राग्महाभारतकालीन ऋषि थे, लेकिन इनके नाम से कामन्दकनीतिसारग्रन्थ मौर्ययुग के पश्चात् की रचना है, जिस प्रकार शुक्रनीति। क्योंकि नीतिसार में चाणक्य को नमस्कार किया गया है।

विष्णुगुप्तकौटिल्यचाणक्य कृत नीतिकाव्य— चाणक्य की प्रथित रचना अर्थशास्त्र तो प्रथित है ही, इसके अतिरिक्त चाणक्यनीति नाम के कई ग्रन्थ मिलते हैं, इन नीतिग्रन्थों की रचना स्वयं चाणक्य ने की या उसके आधार पर परवर्ती नीतिकारों ने की, यह निर्णय करना दुष्कर है। चाणक्य या मौर्य का समय भारतीय सत्यगणना से 1444 वि० पू० निश्चित है। आधुनिक ग्रन्थों में इनका समय 325 ई० पू० के लगभग माना जाता है। चाणक्य के दो श्लोक द्रष्टव्य हैं—

विद्वत्वं नृपत्त्वंचनैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्रपूज्यते ।

(चा० नीति)

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता ।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद् गर्भगतानपि ॥

(अर्थ० प्र० 134)

सुबन्धु—ये मौर्य नरेश बिन्दुसार के राजकवि थे, इस सम्बन्ध में समुद्र गुप्त ने कृष्णचरित में लिखा है—

जयत्ययं पूर्णकलः कविकीर्तिसुधाकरः ।
अकलङ्को रसाम्भोधिमुद्वर्तयति यः सदा ॥
बिन्दुसारस्य नृपतेः स बभूव महाकविः ।
किन्तु सेहे न तद् गर्वं तिरश्चक्रे च तां सभाम् ।
उरगाभे नृपे तस्मिन् ऋुद्धे बन्धमितं कविम् ।
सरस्वती मुमोचाथ तं देशं सोऽत्यजत्तदा ।
विद्वाञ्जयी वत्सराजो दृष्ट्वा वैदुष्यमुत्तमम् ।
पञ्चग्रामन्ददौ तस्मै निजां भगिनिकां तथा ॥

(1, 3, 4, 5)

"कवि कीर्तिसुधाकर (चन्द्रमा) होते हुये भी सुबन्धु निष्कलंक थे, जो सदा रससागर को उद्वेलित करते थे।···वे महाकवि बिन्दुसार के राजकवि थे, किन्तु वे राजा के गर्व को सहन नहीं कर सके और उसकी सभा का तिरस्कार किया। राजा ने क्रुद्ध होकर सुबन्धु को कारावास में डाल दिया। सरस्वती ने कवि को बन्धन से मुक्त कराया और वे देश को छोड़कर वत्स से आ गये। वत्सनरेश ने उत्तम विद्वत्ता को देखकर सुबन्धु को पांच ग्राम और अपनी बहिन ब्याह दी।"

आचार्य दण्डी और अभिनवगुप्त ने बिन्दुसार द्वारा बद्ध सुकवि सुबन्धु कृत वत्सराजचरित नाटक और सरस्वती द्वारा उसके मुक्ति का उल्लेख किया है। पञ्चस्तवी में एक सरस्वती स्तोत्र सुबन्धु रचित है। अतः सुबन्धु ने मुक्तक काव्य (स्तोत्रादि) रचे थे।

मातृचेत (या मातृचेट)—मंजुश्रीमूलकल्प और तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार ये भी बिन्दुसार के राजकवि थे, जो प्रायः यतिधर्म का पालन करते थे। कुछ लोग मातृचेट को कनिष्क का राजकवि माना है, जो भ्रम ही है।

मातृचेट ने बुद्ध की स्तुति में शतपञ्चशतिकस्तोत्र लिखा था जो अपूर्ण ही प्राप्य है। इनके स्तोत्रकाव्य का प्रभाव दिङ्नाग, सिद्धसेन, दिवाकर, समन्तभद्र और हेमचन्द्र पर पड़ा, जिन्होंने मातृचेट के अनुकरण पर स्तोत्रकाव्य लिखा। दिङ्नाग ने 300 श्लोकों का एक काव्य लिखा। मातृचेट के स्तोत्र का चीनी, तिब्बती और तुखारी भाषाओं में अनुवाद हुआ था। बौद्ध और जैन स्तोत्रकर्त्ता कवियों पर मातृचेट काव्य का प्रभूत प्रभाव पड़ा।

हाल-सातवाहन कृत गाथासप्तशती—यह प्राकृत भाषा में है, परन्तु इसका उल्लेख संस्कृतललित साहित्य के इतिहास में अमर है। संस्कृत के उच्च से उच्च कवि इसकी प्रशंसा करते थे। बाणकथन प्रसिद्ध है—

> अविनाशिनमग्राम्यमकरोत् सातवाहनः।
> विशुद्धजातिभिः कोषं रत्नैरिव सुभाषितैः॥

और राजशेखर ने लिखा—

> जगत्यां प्रथिता गाथाः शातवाहनभूभुजा।
> व्यधुद्धृतेस्तु विस्तारमहो चित्रपरम्परा॥

पुराणों के अनुसार हाल सातवाहन वंश का सत्रहवाँ राजा था, जिसने पाँच वर्ष राज्य किया, यह भी संभव है कि यह किसी अन्य सातवाहन राजा ने इसकी रचना की हो। किसी सातवाहन नृपति के विषय में भोजराज ने लिखा है—केऽभून्नाढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः।

यह भी संभव है कि कोई हाल विक्रमसाहसांक के पश्चात् भी हुआ हो, क्योंकि गाथा सं० 436 में विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है। यदि यह किसी गुप्तोत्तरकालिन हाल कवि ने लिखी तो इसका समय द्वितीय शती (वि०) होना चाहिए। अन्यथा सातवाहन रचित होने पर यह 400 वि० पू० से 250 वि० पू० की रचना है। विक्रम नाम तो विष्णु और पुरूरवा के समय से ही

प्रचलित है, अतः केवल इसी शब्द के आधार पर किसी ग्रन्थ का काल निर्धारण नहीं किया जा सकता।

गाथासप्तशती में 700 श्लोक हैं और अग्राम्य शृंगार का सजीव चित्रण है जैसा कि बाणभट्टादि ने संकेत किये हैं।

शंकराचार्य—आद्य शंकराचार्य परम्परा के अनुसार 482 ई० पू० या एक मत से 44 वि० पू० हुये। आधुनिक विद्वान् उनका समय आठवीं शती में मानते हैं। चारों मठों के शंकरों की संख्या सैकड़ों हैं। उनके रचित मोहमुद्गर एवं पञ्चचर्पटिका, आनन्दलहरी आदि अनेक स्तोत्र काव्य के उत्तम निदर्शन हैं। प्रमाणाभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि ये कौन से शंकराचार्य की रचनायें हैं क्योंकि शंकराचार्यों की संख्या विपुल है।

भर्तृहरि—इनके द्वारा रचित तीन शतक विख्यात हैं—शृंगारशतक, नीतिशतक और वैराग्यशतक। भर्तृहरिसंज्ञक अनेक विद्वान् और कवि प्राचीनकाल में हुये हैं, परन्तु परम्परा के अनुसार वे विक्रमादित्य के ज्येष्ठ भ्राता थे अतः इस दृष्टि से उनका समय विक्रमपूर्व सिद्ध होता है। इनके काव्य की भाषा अत्यन्त अलंकृत, सरस एवं हृदयहारिणी है।

उपमा द्रष्टव्य है—

व्याघ्रीव तिष्ठती जरा परितर्जयन्ती

और अलंकृत सूक्तियाँ हैं—

'साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः।'
'क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्।'
'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।'

घटकर्पर—इनके रचित 22 पद्य मिलते हैं। ये महाकवि विक्रमसभा के नवरत्नों में एक थे, अतः समय स्पष्ट है। इनकी भाषा पर्याप्त अलंकृत है।

पुष्पदन्त—इनका समय निश्चित नहीं है। अनुमानतः इनका समय विक्रमपूर्व होना चाहिये। इनका शिवमहिम्नस्तोत्र ललितमुक्तककाव्य की उत्तम कृति है।

समन्तभद्र—ये जैनकवि थे, जिन्होंने स्वयंभूस्तोत्र रचा। इनका समय विक्रम से पूर्व था। इनकी अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—जिनस्तुतिशतक, आप्तमीमांसा, तत्त्वानुसंधान, रत्नकाण्डश्रावकाचार इत्यादि।

सिद्धसेन दिवाकर—प्रभावकचरित आदि प्राचीन जैन ग्रन्थों में सिद्धसेन सम्बन्धी एक गाथा मिलती है—

> धर्मलाभ इति प्रोक्ते दूरादुच्छ्रितपाणये ।
> सूरये सिद्धसेनाय ददौ कोटिं नराधिपः ।।

यह दान विक्रमादित्य ने दिया, जिसके 1199 वर्ष पश्चात् कुमारपाल राजा हुआ। इनका रचित 'कल्याणमन्दिरस्तोत्र' प्रसिद्ध है, जिनकी रचना वैदर्भी शैली में हुई है। सिद्धसेन प्रख्यात जैन साधु और दार्शनिक थे।

अमरुक—इसका 'अमरुकशतक' प्रसिद्ध है जो शृंगाररस का सिद्ध काव्य है। इसके शतक में 90 से 115 तक पद्य मिलते हैं। अमरुक का समय अनुमानतः 7वीं शती माना जाता है। ध्वनिकाव्य के उदाहरण में मम्मटाचार्य ने जो एक पद्य अमरुक का उद्धृत किया, वह साहित्यजगत् में विख्यात है—

> निःशेषच्युतचन्दनं स्तनतटं निमृष्टरागोऽधरो
> नेत्रे दूरमञ्जने पुलकिता तन्वी तवेयं तनुः ।
> मिथ्यावादिनि ! दूति ! बान्धवजनस्याज्ञातपीडागमे
> वापीं स्नातुमितो गतासि न तुतस्याधमस्यान्तिकम् ।।

अमरुक का काव्य भर्तृहरि के शृंगारशतक से तुलनीय है।

विज्जिका—यह कर्णाटक नृपति चन्द्रादित्य की रानी थी, जिसका समय सप्तमशती के मध्य माना जाता है। इसका मुक्तककाव्य वैदर्भी रीति से रचा गया। इसकी तुलना सरस्वती से की गई है।

बाण—प्रसिद्ध महाकवि बाण ने चण्डीशतक लिखा था, जो चण्डीदेवी की स्तुति के लिए लिखा गया। कुछ विद्वान् इसको किसी अन्य की रचना मानते हैं।

मानतुंग—जैनकवि मानतुंग का भक्तामरस्तोत्र जैनपूजा और भक्ति का विख्यात काव्य है। इनका समय विक्रम साहसांक से हर्ष तक अनुमानित किया गया है। यहाँ समय का विस्तृत विवेचन निरर्थक है।

मयूर—ये बाण के समकालीन हर्षवर्धन के सभ्य और कवि के। इनकी रचना 'सूर्तशतक' है जो सूर्य देवता की स्तुति है।

मातंगदिवाकर—यह भी पूर्वोक्त मयूर का समकालीन और हर्ष का समकालीन कवि था। सूक्ति ग्रन्थों में इनके मुक्तक श्लोक मिलते हैं।

शिह्लण—इनकी रचना 'शान्तिशतक' भक्ति और वैराग्य काव्य है, ये बौद्ध प्रतीत होते हैं। समय अनिश्चित है। नाम से कश्मीरी हैं।

श्रीधरदास—इन्होंने 'सदुक्तिकर्णामृत' संज्ञक सूक्तिसंग्रह में 446 कवियों के मुक्तक पद्य संग्रहीत किये हैं। इनका समय वंगनृपति लक्ष्मणसेन (1205 ई०) के समकालिक था। साहसांक विक्रमसम्बन्धी एक श्लोक द्रष्टव्य है—

दन्ताघाताकुलिशदशनस्तत्पुनर्वीक्ष्यमाणो मन्दं
मन्दं स्पृशति करिणीशंकया साहसांको वेतालस्य

(पृ० 219)

बिह्लण—विक्रमांकदेवचरित के प्रसिद्धकर्त्ता कश्मीरी कवि (एकादश-शतक) ने 'चौरपंचाशिका' काव्य रचा, जिसमें चोर विषयक 50 पद्य हैं। इस काव्य का पदलालित्य एवं सालंकृत भाषा अत्यन्त मनोहरिणी है—

ईषन्निमीलितसलीलविलोचनान्तां
पश्यामि मुग्धवदनं पिबन्तीम् ॥

× × × ×

अद्यापि तां प्राणयिनीं मृगशावकाक्षीं
पीयूषवर्णकुचकुम्भयुगं वहन्तीम् ॥

प्रत्येक पद्य का आरम्भ 'अद्यपि' शब्द से होता है।

बिल्वमंगल—इनकी प्रसिद्ध मुक्तक रचना 'कृष्णकर्णामृत' या 'कृष्णलीलामृत' है। इसमें 110 पद्य हैं। यह कृष्ण की स्तुति में लिखा गया है। कवि का समय एकादश शतक था। सरस काव्य का एक निदर्शन द्रष्टव्य है—

मुग्धं स्निग्धं मधुरमुरलीमाधुरीनिनदैः
कारं कारं करणविवशं गोकुलव्याकुलत्वम् ।
श्यामं कामं युवजनमनोमोहनं मोहनाङ्गं
चित्ते नित्यं निवसतु अहो वल्लभी वल्लभं नः ॥

जयदेव—यह संस्कृत का अत्यन्त प्रसिद्ध और उच्चकोटि का कवि था, जिसने गीतगोविन्द काव्य लिखा। यह बंगाल के राजा लक्ष्मणसेन के पंचरत्नों में एक था, जिसका समय एकादश शती था। कुछ विद्वान् इसको नाट्यगीति या संगीतरूपक मानते हैं, क्योंकि यह संवादात्मक श्लोकों में लिखा है। इसमें 12 सर्ग और 24 खण्ड (प्रबन्ध) हैं। काव्य वैदर्भी रीति में लिखा गया है और

इसमें विसर्ग का बहुत कम प्रयोग है। इसमें श्रृंगाररसमय भक्तिरस मिलता है। एक पद्य उदाहरणीय है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो यदि विलासकथासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥

गोवर्धनाचार्य—गाथ सप्तशती के अनुकरण पर गोवर्धनाचार्य ने 'आर्या-सप्तशती' रची। यह भी मुख्यतः श्रृंगारकाव्य है। इसका समय द्वादशी शती था। श्रृंगाररीति सम्बन्धी एक पद्य द्रष्टव्य है—

दलिते पलालपुञ्जे वृषभं परिभवति गृहपतौ कुपिते।
निभृतनिभालितवदनौ कालिकवधूदेवरौ हसतः॥

(आर्या 302)

घनराज—इनका समय 1491 वि० सं० था। इनकी रचना श्रृंगार शतक है। यह कोई बहुत प्रसिद्ध रचना नहीं है।

जगन्नाथ—ये शाहजहाँ के समकालीन संस्कृत के अप्रतिम विद्वान् थे। (सत्रहवीं शती)। इनके पाँचलहरी काव्य और षष्ठ भामिनी विलास श्रेष्ठ गीति काव्य हैं। पाँच लहरी काव्य हैं—सुधालहरी, अमृतल०, लक्ष्मी० करुणा और गंगालहरी। इसमें क्रमशः सूर्य, यमुना, लक्ष्मी, विष्णु और गंगा का स्तवन है। श्रृंगार का श्रेष्ठ काव्य भामिनीविलास है।

रूपगोस्वामी—ये भी सत्रहवीं शती के कवि थे, जिनके दो काव्य प्रसिद्ध हैं—हंसदूत और उद्धवसंदेश। हंसदूत, मेघदूत के अनुकरण पर रचा गया करुणविप्रलम्भ का काव्य है तो उद्धव संदेश विरह का काव्य।

सूक्तिग्रन्थ—प्राचीन कवियों के श्रेष्ठ मुक्तक पद्यों का संग्रह इन ग्रन्थों में मिलता है—कवीन्द्रवचन समुच्चय, सुभाषितावली शार्ङ्गधरपद्धति, सदुक्ति-कर्णामृत और सुभाषित मुक्तावली। इनके सहस्रों श्लोकों में प्राचीनतम और अर्वाचीनतम कवियों के महत्त्वपूर्ण पद्यों का संकलन है।

सप्तम अध्याय

संस्कृत नाटककार

नाटक का उद्भव और विकास—भारतीय या संस्कृत नाटकों के उद्भव और विकास के सम्बन्ध में अनेक वाद एवं वितण्डावाद प्रचलित हैं, अतः यहाँ उनका संक्षेप में सिंहावलोकन करते हैं।

इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम कुछ पाश्चात्यमतों का परीक्षण आवश्यक है, यद्यपि आज उनके वितण्डावाद में प्रायः स्यात् कोई विश्वास नहीं करता। प्रसिद्ध पाश्चात्य संस्कृतज्ञों के मत में ऋग्वेद के संवादसूक्तों के आधार पर नाटक की उत्पत्ति हुई। अन्य पाश्चात्यों यथा सिल्वाँ लेवी, श्रेडर और हर्टल ने भी प्रायः इसी मत का अनुमोदन किया। उनके अनुसार पुरूरवा-उर्वशी संवाद पणि-सरमा संवाद जैसे सूक्तों में नाट्यतत्व विद्यमान हैं। इसी प्रकार इन लोगों ने वैदिकयज्ञों यथा सोमक्रयादि के प्रसंगों में नाटकीय संवाद देखे और अनेक यज्ञों यथा गवामयन यज्ञ के महाव्रत अनुष्ठान के दिन नृत्य, गीतादि के विधान में भी पाश्चात्यों को नाटकीय संविधान दृष्टिगोचर हुआ।

रिजवे नामक पाश्चात्य लेखक मृतत्माओं की बलिप्रथा में भारतीय नाटक का उद्भव मानता था। लूडर्स के मत में छाया के अनुकरण पर संस्कृत नाटकों का विकास हुआ। कुछ विद्वान् इन्द्रध्वज जैसे पर्वों के आधार पर नाट्य उत्पत्ति मानते थे।हिलब्रेंड और स्टेनकोनो स्वांगों के आधार पर संस्कृत नाटक की उत्पत्ति मानते थे। कीथ ने लूडर्स और हिलब्रेंट के मतों का खण्डन किया। पिशेल संज्ञक पाश्चात्य लेखक कठपुतलियों (काष्ठपुत्रिका या पुत्तलिका) के नृत्य के आधार पर नाटकोद्भव मानता था। ये नाम रामायण, महाभारत तथा उत्तरकालीन संस्कृत वाङ्मय में प्रयुक्त हुये हैं। हिलब्रेंट ने इस मत का इस आधार पर खण्डन किया कि नृत्यादि रूपक के उपादान कठपुतली प्रयोग से पूर्व ही विद्यमान थे। अतः यह मत निरर्थक है।

वेबर आदि अनेक पाश्चात्य लेखक यूनानी (ग्रीक) नाटकों के अनुकरण पर भारतीय नाटक की उत्पत्ति मानते थे। उनके मतानुसार सिकन्दर के आक्रमण (३२३ ई० पू०) के समय से भारतीयों ने यूनानियों से नाट्यकला सीखी।

यह मत उसी पाश्चात्य मैकाले की योजना का परिणाम था कि प्राचीन भारतीय सर्वथा बुद्धू थे और सबकुछ ज्ञान-विज्ञान उन्होंने यूनानियों से सिकन्दर के आक्रमण के बाद ही सीखा, यथा, भाषा विज्ञान, गणित, ज्योतिष, शिल्प, ब्राह्मी लिपि आदि। यह मत कितने निस्सार हैं कि आज प्रायः उनपर कोई स्वस्थ बुद्धि विद्वान् विचार ही नहीं करता।

नाटकोद्भव का भारतीय इतिवृत्त—भारतीय मत के अनुसार नाटक के तत्व यद्यपि भरत मुनि या वैवस्वत मनु से पूर्व विद्यमान थे, परन्तु सर्वप्रथम भरतमुनि ने ही पुरूरवा और इन्द्र के समय (सप्तम त्रेतायुग 12000 वि०पू०) नाट्यशास्त्र को व्यवस्थित रूप दिया। भरतनाट्यशास्त्र का जो पाठ इस समय मिलता है, वह मूल नहीं है, उसका समय-समय पर संस्करण होता रहा है, परन्तु यह भास के पश्चात् और कालिदास (प्रथम) से पूर्व पुनस्संस्कृत किया गया। यदि यह शुङ्गकाल या महाभाष्य पतञ्जलि के आस पास प्रतिसंस्कृत किया गया, जिस प्रकार चरकसंहितादि की गई तो भी वर्तमान पाठ का एक सहस्र(१०००) वि० पू० पुनस्संकार हुआ। भरत मुनि तो इन्द्र और पुरूरवा के समकालीन होने से आज से १४००० वर्ष पूर्व हुये, जैसा कि स्वयं भरत नाट्यशास्त्र में उल्लिखित है। नाट्यशास्त्र के अनुसार स्वायंभुव मनु के कृतयुग की समाप्ति पर और वैवस्वत मनु के त्रेतायुग में मानवसमाज अनेक दोषों के कारण दुःखी था। इन्द्र की प्रधानता में देवगण ब्रह्मा (कश्यप प्रजापति) के पास त्राणार्थ गये और प्रार्थना की कि हे भगवन् जम्बूद्वीप की समस्त प्रजा दुर्व्यसनों से दुखी है अतः आप कोई ऐसा उपाय बतायें जिससे वह आनन्दित हो। यह सोचकर प्रजापति ने नाट्यवेद नाम का पञ्चमवेद की रचना की जिसमें ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और रस अथर्ववेद से ग्रहण किये।[2] नाट्यरचना और अभिनय का पूर्ण भार भरत मुनि को समर्पित किया गया। देवता, अप्सरा और राजर्षियों (पुरूरवा आदि) ने अभिनय किया। भरत ने 'असुरपराजय',

---

(1) महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः। क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्।

(2) जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि॥
(ना०शा०१।११,१६)

'अमृतमन्थन', 'लक्ष्मीस्वयंवर' त्रिपुरदाह' आदि नाटक रचे। इसकी पुष्टि मत्स्यपुराण[1] और कालिदास के विक्रमोर्वशीय (तृतीय अंक) नाटक से होती है। अतः भरत ही नाट्यशास्त्र (नाट्यवेद) और नाटकों के आदिम प्रणेता सिद्ध होते हैं। परन्तु उनके नाटकों का आज मिलने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता, उनके नाट्यशास्त्र का प्रतिसंस्करण प्राप्त है ही भारतीयदृष्टि में नाट्य के समान न कोई ज्ञान है, न कोई शिल्प, न विद्या, न कला न योग न कोई और कर्म—नाट्यशास्त्र में लिखा है—

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते॥
(१।१०६)

नाटक के अनेक तत्त्वों का वैदिकसंहिताओं में भी उल्लेख मिलता है, यथा 'शैलूष' (नट) जाति का उल्लेख वाजसनेयिसंहिता (३०। ६) में मिलता है। इतिहासपुराणों (यथा रामायण) में कुशीलव, नटनर्तक और गायकों का उल्लेख है—

नटनर्तकसंघानां गायकानां च गायताम्।
यतः कर्णसुखा वाचः शुश्राव जनता ततः॥ (रामायण)

महाभारत के खिल (परिशिष्ट) हरिवंशपुराण में नाटकों का प्रचुरता से उल्लेख मिलता है। तदनुसार वसुदेव के यज्ञ में भद्रसंज्ञक नट ने अपनी नाट्यविद्या से ऋषियों को प्रसन्न करके अनेक वरदान प्राप्त किये। वह पृथिवी के सातोंद्वीपों में विचरण करता हुआ नाटक दिखाता था और आकाश में (विमान से) विचरण करता था। कृष्ण की आज्ञा से प्रद्युम्न आदि छद्म नटवेश में वज्रनाभ असुर के नगर में पहुँचे, जहाँ उन्होंने 'रामायण नाटक' खेला—

रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम्।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया॥
(हरि० पु० २। ९३।६)

---

(1) सा पुरूरवसा प्रीत्या गायन्ती चरितं महत्। लक्ष्मीस्वयंवरं नाम भरतेन प्रवर्तितम्। मेनकामुर्वशीं रम्भां नृत्येति तदादिशत्।

ननर्त सलयं तत्र लक्ष्मीरुपेण चोर्वशी। सा पुरूरवसं दृष्ट्वा नृत्यन्ती कामपीड़िता। विस्मृताऽभिनयं सर्वं यत्पुरा भरतोदितम्॥

(मत्स्य पु० अ० २४-२७-३०)

महाभारत वनपर्व में कौबेररम्भाभिसार नाटक का उल्लेख मिलता है अतः रामायण और महाभारत के समय भारत में खूब नाटक खेले जाते थे।

महाकवि भास, यदि नन्दकालीन थे,. तो स्पष्ट है उस समय नाटकों का कितना प्रचार था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में नट, नर्तक, गायक, वादक आदि का उल्लेख है। बुद्ध एवं जैन साहित्य में भी नाट्यप्रदर्शन के अनेक उल्लेख मिलते हैं। पाणिनि ने कृशाश्व और शिलाली नाम के दो नाट्याचार्यों का उल्लेख किया है, (अष्टा० ४।, ११०) ४ I. ३।११) पातञ्जल महाभाष्य में 'कंसवध' और 'वालिवध' नाटकद्वय का उल्लेख है। अतः यही भारतीय नाटक उद्भव की संक्षिप्त गाथा है।

(भास)

महाकवि भास संस्कृत विवा भारत के प्राचीनतम नाटककार थे, जिनके नाटक इस समय प्राप्त हैं। भास की गणना वाल्मीकि और व्यास के समान पूज्य मुनियों में की गई है। महाराज समुद्रगुप्त के खण्डित उपलब्ध काव्य कृष्णचरित के अनुसार भास ने बीस नाटकों की रचना की थी।[1] इस समय इनके चौदह नाटक प्राप्त हैं और सभी प्रकाशित हो चुके हैं। इनका सविशेष विवरण आगे उपस्थित किया जायेगा।

परन्तु सन् 1912 ई० से पूर्व भास का केवल नाम मात्र ही ज्ञात था। इनके नाटक नहीं मिलते थे। भास के तेरह नाटकों को 'त्रयोदशत्रिवेन्द्रम् नाटकानि' नाम से सर्वप्रथम गणपति शास्त्री ने प्रकाशित किया और साथ ही उन्होंने सिद्ध किया कि ये सभी नाटक भासकृत एवं अत्यन्त प्राचीन हैं। अनेक पाश्चात्य लेखकों ने मैकाले की योजना के अनुसार एवं स्वभाववश, पहिले तो इन नाटकों को भासकृत मानने से इन्कार कर दिया। इनमें सिलवाँ लेवी और विण्टरनित्स प्रमुख थे, जिन्होंने इन नाटकों को अर्वाचीन लेखकों के नाम पर जाली रचना मानकर इनको आठवीं शती की कृति बताया। कोई पाश्चात्य लेखक (यथा बर्नेट) इन नाटकों में किसी दाक्षिणात्य या केरलकवि की रचना मानता था, लेकिन अब इन भ्रामक एवं असत्य कल्पनाओं में कोई विश्वास नहीं करता और समस्त नाटक भास की रचनायें सर्वस्वीकृत हैं। प्राचीन कवि कालिदास, बाणभट्ट, समुद्रगुप्त, राजशेखर आदि ने महाकवि भास के विषय में जो कुछ तथ्य लिखे हैं, वे सभी उनके नाटकों से सिद्ध हैं, उनका विस्तृत विवरण आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

---

(1) भासमानमहाकाव्य : कृतविंशतिनाटक :।
अनेकांकविधाता च मुनिर्भासोऽभएत्कविः।

भास के नाटक कला की दृष्टि से अत्यन्त उच्चकोटि के हैं जैसा कि समुद्रगुप्त ने लिखा है कि वे सब मञ्चनयोग्य एवं सुरस हैं।[1]

प्राचीन ग्रन्थों में भास का परिचय—प्राचीन ग्रन्थकारों ने महाकवि भास का नामोल्लेख बड़े आदर से किया है और उसकी यशःप्रशस्ति गाई है। भास का प्राचीनतम उल्लेख महाकवि कालिदास के नाटक मालविकाग्निमित्र में मिलता है। इसके अनन्तर समुद्रगुप्त रचित कृष्णचरित में भास का कुछ विस्तृततर परिचय मिलता है, यहाँ पर भास के विषय में लिखा गया है कि भास ने बीस नाटकों की रचना की। उनकी तुलना अन्य किसी कवि से नहीं की जा सकती। धर्म, अर्थ और काम (शृङ्गार) से युक्त काव्य और कौन रच सकता है। उनका 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक सर्वश्रेष्ठ है। भास ने अपने नाटकों में रामायण, महाभारत एवं अन्य विविध कथाओं का समावेश किया है। अन्य नाटककारों ने भास के रूपकों का अनुकरण किया है, परन्तु उन्होंने (भास ने) दाक्षीपुत्र पाणिनि के व्याकरणनियमों का पूर्ण पालन नहीं किया। महाकवि भास की भाषा सुबोध और मनोरम है, उसका क्या वर्णन किया जाय जिसके काव्यरसों से अग्नि भी शान्त हो गई—

अभिरामाः सुबोधाश्च यस्य वाचो महाकवेः।[2]
रसैरग्निं शमं निन्युस्तस्य किं वर्ण्यतां यशः॥

इस श्लोक का तात्पर्य 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक से है, जिसके विषय में राजशेखर ने सूक्तिमुक्तावली में कहा है—

भासनाटकचक्रेऽपि छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।

भासनाटकचक्र आक्षेपों से क्षिप्त परीक्षार्थ अग्नि में भी डाला गया, परन्तु उसके स्वप्नवासवदत्ता नाटक को अग्नि ने भी नहीं जलाया।

---

(1) यस्यामन्दरसा वाचः स्यन्दन्त्यानन्दमुच्चकैः।
अनेन केन कविना तुल्यता तस्य वर्तताम्।
वाल्मीकिवैभवनिदर्शमादिकाव्यं रङ्गे निदर्शितमयं सुरसं चकार।
व्यासस्य भारतमभारतयासुदर्शं कृत्वा च तत्र विविधाः स्वकथाः युयोज रूपकक्रममस्यैव कवयोऽन्वयुर्बुधाः। अयं च नान्वयात्पूर्णं दाक्षीपुत्रपदक्रमम्।

(कृ-च० 22-26)

(2) कृ० च० (श्लोक 27)।

वाक्पतिराज ने अपने काव्य गउडवहो में भास को इसी आधार पर 'अग्निमित्र' या 'ज्वलनमित्र' कहा है—

भासे ज्वलनमित्रे कुन्तीदेवे च यस्य रघुकारे ।
सौबन्धवे च बन्धे हरिश्चन्द्रे चानन्द. ।[1]

यह कथन वासवदत्तम् की अग्निपरीक्षा को ध्यान में रखकर कहा गया प्रतीत होता है । प्रसिद्ध महाकवि बाणभट्ट ने भास के नाटकों की विशेषता बताते हुये लिखा है—

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः ।
सपताकैर्यशो लेभे भासोदेवकुलैरवि ।।

"सूत्रधार से प्रारम्भ होने वाले बहुभूमिका वाले, पताकायुक्त नाटकों से भास ने देवकुलों के समान महान् यश: प्राप्त किया।"

भास ने प्रतिमा नाटक में इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के देवकुलों (समाधियों) का वर्णन किया है, बाण का सङ्केत सम्भवत: उसी ओर है ।

भामह (प्रथम या द्वितीय विक्रमशती) ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' नाटक के इस प्राकृत वाक्यांश को उद्धृत किया है—

अणेण मम भादा हदो अणेण मम पिदा अणेण मम सुदो' (हतोऽनेन मम भ्राता मम पिता अनेन मम पुत्र:)

महाकवि दण्डी ने काव्यादर्श में बालचरित और चारुदत्त नाटक से एक श्लोक उद्धृत किया है—"लिम्पतीव तमोंऽगानि वर्षतीवाञ्जनं नभ: ।" आचार्य वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (5।3) में व्याजोक्ति के उदाहरण स्वरूप स्वप्नवासवदत्तम् (चतुर्थ अंक) से यह श्लोक उद्धृत किया है—

शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ।।

अभिनवगुप्ताचार्य ने भरतनाट्यवेदविवृत्ति में स्वप्नवासदत्ता का इस प्रकार नामोल्लेख किया है—'क्वचित् क्रीडा यथा स्वप्नवासवदत्तायाम् ।" भोजदेव ने श्रृङ्गारप्रकाश में स्वप्नवासवदत्ता का स्पष्टत: उल्लेख किया है—'स्वप्नवासवदत्ते पद्मावतीमस्वस्थां द्रष्टुं राजा समुद्रगृहकं गत: ।'

इसी प्रकार रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण' में लिखा है—यथा भासकृते स्वप्नवासदत्ते शेफालिका शिलातलमवलोक्यपादाक्रान्तानि पुष्पाणि सौष्मं चेदं शिलातलम् । नून काचिदिहासीना दृष्ट्वा सहसागता ।

(1) मूल—"भासम्मि जलणमित्ते कन्तीदेवे अ जस्स रहुआरे ।
सोबन्धवे अ बन्धमि हारीअन्दे अ आणन्दो ।"

"भासकृत स्वप्नवासदत्ता नाटक में शेफालिका शिलातल को देखकर कहती है—

'पुष्प पैरों से रौंदे गये हैं, शिलातल गर्म है। निश्चय ही कोई यहाँ बैठ कर मुझे देखते ही सहसा चली गई है।"

अभिनवगुप्ताचार्यकृत ध्वन्यालोक टीका में यह श्लोक स्वप्नवासदत्तनाटक के नाम से उद्धृत किया है—

संचितपक्ष्मकपाटं नयनद्वारं स्वरूपतडनेन।
उद्घाट्य सा प्रविष्टा हृदयगृहं मे नृपतनूजा ॥

यह श्लोक नाटक के वर्तमान पाठ में नहीं मिलता, परन्तु प्रसङ्ग को देखते हुये इसके लिये स्थान है। वर्तमान में प्राचीन ग्रन्थ से कुछ श्लोकों का लुप्त हो जाना असम्भव नहीं है।

प्राचीन ग्रन्थकारों की दृष्टि में भी भास प्राचीनतम नाटककार थे और सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे, सम्भवतः भास के पूर्व के नाटक कालिदासादि के समय में ही नष्ट हो गये थे। महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में 'भास सौमिल्लकविपुत्रादीनाम्' वाक्य में सर्वप्रथम भास का उल्लेख किया है। इसी प्रकार राजशेखर ने—'भासो रामिलसौमिल्लौ वररुचिः श्रीसाहसाङ्कः' में सर्वप्रथम भास का नाम लिया है। प्रसन्नराघव में जयदेव ने 'भासो हासः' कहकर प्रथम भास का ही नाम लिया है। अतः भास प्रथितयशा कवि थे।

शूद्रककृत नाटक 'मृच्छकटिक' का कथानक 'भासकृत चारुदत्त' नाटक के आधार पर ही रचा गया और उसका विस्तारमात्र ही है। दोनों में अनेक श्लोक और वाक्यांश समान रूप से पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्न श्लोक 'चारुदत्त' और 'मृच्छकटिक' दोनों में ही पाया जाता है—

यासां बलिर्भवति मद्गृहदेहलीनां हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः।
तास्वेव पूर्वबलिरूढयवाङ्कुरासु बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥

अतः भास की प्राचीनता स्पष्ट है।

नाटकों का कर्तृत्व एवं वैशिष्ट्य—कुछ लोगों ने भास के नाटकों को विभिन्न कालों और विभिन्न रचयिताओं द्वारा रचित बताने की कुचेष्टा की है। परन्तु इन नाटकों के सामान्य अध्ययन से ही स्पष्ट हो जाता है कि उपर्युक्त समस्त नाटक एक ही कवि भास की रचनायें और उनमें कुछ सामान्य विशेषतायें पाई जाती हैं।

प्रथम विशेषता—समस्त नाटकों का प्रारम्भ 'नान्द्यन्ते, ततः प्रविशति सूत्रधारः।' 'नान्दी के अन्त में सूत्रधार प्रवेश करता है।'

बाण ने भी भास नाटकों की इस विशेषता का उल्लेख किया है—

'सूत्रधारकृतारम्भैः' तथ्य यह है कि भास के समय में भरतनाट्यशास्त्र[1] का वर्तमान पाठ नहीं था, कोई अन्य प्राचीन पाठ था, तदनुसार ही भास ने अपने नाटकों की रचना की। भासोत्तर नाटकों में 'प्रस्तावना' मिलती है, परन्तु भास के नाटकों में 'स्थापना' मिलती है।

द्वितीय विशेषता—कम से कम चार नाटकों में नान्दी में मुद्रालंकार मिलता है, यथा—द्रष्टव्य प्रतिमा नाटक में नान्दी में प्रमुख पात्रों के नाम समाहित हैं—

प्रतिमा नाटक में मुद्रालंकार है—

सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सह लक्ष्मणश्च।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या विभीषणात्मा भरतोऽनुसर्गम्॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायण में यह मुद्रालंकार है—

पातु वासवदत्ता यो महासेनोऽतिवीर्यवान्।
वत्सराजस्य नाम्ना स शक्तियौगन्धरायणः॥

स्वप्नवासवदत्तनाटक में यह मुद्रालंकार है—

उदयनवेन्दुसवर्णासिवदत्तावलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम्॥

इस प्रमाण से सिद्ध होता है कि उत्तम नाटक एक ही कवि भास की रचनायें हैं। इसमें सन्देह के लिये कोई स्थान ही नहीं है।

तृतीय विशेषता—भास के प्रायः समस्त नाटकों में यह भरतवाक्य मिलता है—

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्।
महीमेकातपत्रांकां राजसिंह प्रशास्तु नः॥

उपर्युक्त सामान्य भरतवाक्य से सिद्ध होता है कि भास जिस राजा की सभा में रहते थे, वह सम्पूर्ण भारत का चक्रवर्ती शासक (सार्वभौम) था।

---

(1) मूल भरतनाट्यशास्त्र की रचना त्रेतायुग में हुई थी, युगानुसार उसके पाठ परिवर्तित कर दिये जाते रहे।

चतुर्थ विशेषता—भास के नाटकों में रचयिता का नामोल्लेख नहीं है, यह भासकालीन नाटकों की विशेषता थी, जो नाट्यशास्त्रानुसार ही होगी। नाट्यशास्त्र के वर्तमान नियम के अनुसार भासोत्तरकालीन नाटकों में—(कालिदास, भवभूति आदि) लेखक का नाम अवश्य मिलता है। इससे भास की प्राचीनता ही सिद्ध होती है।

पञ्चमी विशेषता—जैसा कि समुद्रगुप्त ने संकेत किया कि भास ने अपने नाटकों की भाषा में दाक्षीपुत्र पाणिनि के व्याकरण नियमों का पूर्णतः पालन नहीं किया।[1] भास के नाटकों में आर्षप्रयोगों की बहुलता है। इसका स्पष्ट तात्पर्य है कि भास ने सम्भवतः पाणिनि व्याकरण का अध्ययन न करके अन्य किसी प्राचीन व्याकरण का अध्ययन किया था अथवा भास के देश और काल में पाणिनि व्याकरण का प्रचार नहीं था। एक दो उदाहरण द्रष्टव्य है—यथा 'अवन्त्याधिपतेः', रुह्यते, 'हस्त्यश्वरथपदातीनि' मा संतप्तुम् (अलं के स्थान पर मा) इत्यादि।

षष्ठी विशेषता—समस्त नाटकों की भाषा शैली, अलंकार योजना वाक्य, वाक्यांश एवं श्लोकों में महान् साम्य है, यथा अभिषेक और स्वप्नवासवदत्त में यह वाक्य मिलता है—'किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशंकितं मे।' इसी प्रकार अनेक वाक्य बालचरित और चारुदत्त में समान हैं।

अविमारक, चारुदत्त और दूतवाक्य में विद्युत् की उपमा समान है। भास ने शक्तिशाली पुरुष की उपमा मन्दराचल से की है, यथा प्रतिज्ञायौगन्धरायण और बालचरित नाटकों में। इसी प्रकार अनेक नाटकों में राहुमुख में पड़े चन्द्रमा की उपमा मिलती है। भास के अनेक नाटक एक-दूसरे के पूरक हैं, यथा स्वप्नवासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगन्धरायण का उत्तर भाग है। इसी प्रकार अभिषेक नाटक प्रतिमानाटक का पूरक भाग है। अतः निश्चय ये एक ही कवि की रचनायें हैं। भास ध्वनि की तुलना प्रायः प्रलय सागर घोष से करते हैं—यथा—यस्य स्वनं प्रलयसागरघोषस्तुल्यम् (दूतवाक्य), 'शंखध्वनिः प्रलयसागरघोषतुल्यः (कर्णाभार)

इसी प्रकार और भी बहुत सी समतायें उद्धृत की जा सकती हैं।

सप्तमी विशेषता—भास ने अनेक नाटकों के लेखन में अपने समय में प्रचलित भरतनाट्यशास्त्र (वर्तमान नहीं) का पूर्ण अनुकरण किया था और वे रंगमंच को दृष्टि में रखकर लघ्वाकार में लिखे गये थे। रामायण, महा-

---

(1) अयं च नान्वयात्पूर्णं दाक्षीपुत्रपदक्रमम्। (कृ० च. 26)

भारत एवं अन्य कथाओं को प्रेक्षकों के निदर्शनार्थ ही भास ने अनेक नाटकों की रचना की थी, जैसा कि समुद्रगुप्त ने स्पष्टतः कहा है—

वाल्मीकिवैभवनिदर्शनमादिकाव्यं रंगे निदर्शितमयं सुरसं चकार।
व्यासस्य भारतमभारतया सुदर्शं कृत्वा च तत्र विविधाः स्वकथा युयोज ॥

'वाल्मीकि की श्रेष्ठ कृति रामायण को रङ्गमञ्च पर प्रेक्षकों के दर्शनार्थ भास ने सुरसरूप में उपस्थित किया और भारवान् महाभारत को बड़े सरल रूप में दर्शनीयरूप में नाटकों में निबद्ध किया।'

अष्टमी विशेषता—भास की भाषा केवल ग्रन्थों की भाषा नहीं है जैसी कि उत्तरवर्ती बाण, श्रीहर्ष आदि ने कृत्रिम अलंकारमयी भाषा का प्रयोग किया था। भास की भाषा सरल, सरस एवं मनोहर है, वह निश्चय उस समय की जनभाषा या बोलचाल की भाषा थी तथा भास ने वैदर्भीरीति का प्रयोग किया है, जिसके लक्षण थे —

श्लेषः प्रसादः समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोजः कान्तिसमाधयः ॥

(दण्डी, काव्यादर्श 1।41)

"श्लेष, प्रसाद, समता, मधुरता, सुकुमारता, स्पष्ट अर्थ, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि।"

भास का समय—प्राकृत भाषा के प्रयोग के आधार पर स्टेनकोनो और और विण्टरनित्ज भास का समय अश्वघोष और कालिदास के मध्य में अनुमानित करते हैं। डा० बार्नेट महेन्द्र त्रिविक्रमकृत 'मत्तविलास' प्रहसन से उद्धृत भास के नाम से उद्धृत श्लोकों के आधार पर भास का समय सातवीं शती मानते थे। रामावतारशर्मा भास को दशवीं शती में रखते हैं। पता नहीं इन लोगों ने अपनी आँखों पर पट्टी क्यों बाँध रखी है। इतिहास में किसी पुरुष का समय अपनी इच्छा से रखने से नहीं निश्चित होता, वह समय तो इतिहास से निश्चित होता है। यद्यपि उपलब्ध प्रमाणों से भास का निश्चित समय ज्ञात नहीं होता, परन्तु बाह्य एवं आभ्यन्तर प्रमाणों से भास का समय विक्रमादित्य शूद्रक (विक्रमसम्वत् प्रवर्तक) और उसके राजकवि आद्य कालिदास से निश्चय ही अनेक शती किंवा डेढ़ सहस्राब्दी पूर्व का हो सकता है। क्योंकि आद्य कालिदास (नाटककार) ने मालविकाग्निमित्र में भास का स्मरण किया है और शूद्रकविक्रम कृत मृच्छकटिक नाटक भास के 'चारुदत्त' नाटक

का उपबृंहण है, अतः भास का समय विक्रम से पूर्वकालिक है यह तो पूर्ण निश्चित है।

भास की प्राचीनता के कुछ सङ्केत पूर्वपृष्ठों पर लिखे गये हैं, आगे अन्य हेतु लिखे जाते हैं। भास नाटकों के आभ्यन्तर प्रमाणों से भास का समय नन्द काल में प्रतीत होता है—(1) भास नाटकों में अपाणिनीय प्रयोगों का बाहुल्य (2) छन्दों की बहुलता भी भास को प्राचीन सिद्ध करती है। (3) भास के नाटकों में यवनिका पद अवगुण्ठन (घूँघट) के लिये प्रयुक्त हुआ है न कि पर्दे के लिये। (4) विद्यमान भरतनाट्यशास्त्र का अनुसरण नहीं किया गया, यथा 'प्रस्तावना' के स्थान पर 'स्थापना', नान्दी से प्रारम्भ न होकर सूत्रधार से नाटकप्रारम्भ इत्यादि। अतः भास के समय नाट्यकला के पृथक् नियम थे, उपलब्ध नाट्यशास्त्र में वे परिवर्तित कर दिये गये हैं (5) भास के नाटकों के कुछ कथानक महाभारत ग्रन्थ के वर्तमान पाठ में नहीं मिलते, यथा पञ्चराजनाटक का कथानक। अतः महाभारत के किसी प्राचीनतर (प्राङ्नन्द-कालीन) पाठ में ये कथानक होने चाहिये। (6) भास द्वारा माहेश्वर योग-शास्त्र और बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र का उल्लेख विद्वानों को बाध्य करता है कि भास मौर्यकाल से पूर्व नन्दकाल में हुये, क्योंकि कौटिलीय-अर्थशास्त्र की प्रसिद्धि तो नन्दकाल में ही हो गई थी, अतः भास द्वारा कौटिलीय अर्थशास्त्र का अनुल्लेख उन्हें नन्द काल में सिद्ध करता है।[1] (7) स्वप्नवासवदत्त नाटक में राजा ब्रह्मदत्त और काम्पिल्य का उल्लेख महाभारत और जातक कथाओं का स्मरण कराता है। इससे प्रतीत होता है कि ब्रह्मदत्त की कथा लोक में सर्वत्र सामान्यतः प्रचलित थी, यह समय बुद्ध के आस-पास था।[2] (8) पुराणों में महापद्म नन्द को एक छत्रा पृथिवी का अनुलंघित शासक कहा गया है—

स एकच्छत्रां पृथिवीमनुलंघितशासनः।
शासिष्यति महापद्मो द्वितीय इव भार्गवः[3]
स चैकच्छत्रामनुल्लंघितशासनो
महापद्मो पृथिवीं भोक्ष्यते।[4]

(1) भोःकाश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गवेदमधीये, मानवीयं धर्मशास्त्रं, माहेश्वरं योगशास्त्रं बार्हस्पत्यमर्थशास्त्रं प्राचेतसं श्राद्धकल्पञ्च। (प्रतिमानाटक); (2) राजा—मूर्ख—ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्य मित्य-भिधीयताम् (स्वप्नवासवदत्त, पञ्चम अङ्क); (3) भागवतपुराण (12।1।10); (4) विष्णुपुराण (4।24।22);

भास ने राजसिंह विशेषण से सम्भवत: महापद्म नन्द का ही इस प्रकार पुराणों की शब्दावली में कहा है—

> इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
> महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ।

इस साम्य से ऐसा प्रतीत होता है कि भास नन्द के ही राजकवि थे। वे उसे अपना शासक बताते हैं (प्रशास्तु नः) । उदयन के पश्चात् और मौर्यों से पूर्व महापद्म नन्द ही सागरपर्यन्त पृथिवी (मही) का एक छत्र अनुल्लंघित शासक था। पं० भगवद्दत्त का भी यही मत है।[1]

महाकवि भास ने प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्ता नाटक में जिस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन किया है, उससे प्रतीत होता है कि ये घटनायें भास से एक-दो शती पूर्व ही घटित हुई थीं। अवन्तिराज चण्ड-प्रद्योत महासेन, वत्सराज उदयन, मगधराज अजातशत्रु और उसका उत्तराधिकारी दर्शक महावीर और महात्मा बुद्ध—ये सभी महापुरुष प्राय: समकालीन थे। दर्शक की भगिनी पद्मावती का विवाह उदयन से हुआ और उससे पूर्व वह प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता से विवाह कर चुका था। विनयपिटक के अनुसार बुद्धशिष्य आनन्द ने उदयन को धर्मोपदेश दिया था। यह बुद्ध निर्वाण के पश्चात् की घटना है। अतः भास के समय इन सब घटनाओं का स्पष्ट स्मृति विद्यमान थी। यदि भास नन्दकाल में हुये तो बहुप्रचलित आधुनिक मत से नन्द का समय 400 ई० पू० था और भारतीय सत्यगणना के अनुसार 1445 वि० पू० था। एक अन्य प्रमाण से भी भास का समय मौर्यकाल और चाणक्य से पूर्व सिद्ध होता है। भासकृत प्रतिज्ञायौगन्धरायण (अङ्क 4।3) का एक श्लोक चाणक्य ने अर्थशास्त्र में उद्धृत किया है—

> नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम् ।[2]
> तत्रस्य माभून्नरकं स गच्छेद् यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्येत् ।

'जलों से पूर्ण शुद्धनवीन सरोका या सरैया, जिसके उत्तर में दर्भ (कुश) रखी हो, वह उस सैनिक का न हो जो अपने शासक के लिये न लड़े, वह नरक में जाये।" यदि यह श्लोक चाणक्य ने भासनाटक से लिया है तो भास का समय निश्चय नन्दकाल में था।

---

(1) द्र० भारतवर्ष का वृहद् इतिहास (द्वितीय भाग, पृ० 260)।

(2) अर्थशास्त्र (10।3)

नाटकों का वर्गीकरण और परिचय—कथानक की दृष्टि से भास के नाटकों को चार भागों में विभक्त किया जाता है—(1) रामकथा पर आधारित—प्रतिमा, अभिषेक, (2) महाभारत की कथा पर आधारित—बालचरित, पंचरात्र, मध्यमव्यायोम, दूतवाक्य, दूतघटोत्कच, कर्णभार, उरुभंग, (3) उदयचरित पर आधारित—प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वप्नवासवदत्ता और लोक कथाओं पर आधारित अविमारक और दरिद्रचारुदत्त।

(1) **प्रतिमा**—इस नाटक में रामवनवास से रावणवधपर्यन्त की कथा है। नाटक का नाम प्रतिमा इसलिये रखा गया कि इक्ष्वाकुकुल के मृत राजाओं की प्रतिमायें (मूर्तियाँ) देवकुलों (स्मारकों—यथा मिस्र के मम्मी) में स्थापित की जाती थीं। राजगृह (कैकेय) से अयोध्या आते हुये भरत को नगर के बाहर देवकुल में दशरथ की प्रतिमा देखकर उनकी मृत्यु का अनुमान हो गया था। इस उल्लेख से नन्दमौर्यकाल में मूर्तिकला का अस्तित्व सिद्ध है।

(2) **अभिषेक**—इसमें मुख्यतः बालिबध, हनुमान् द्वारा सीतान्वेषण, रामरावणयुद्ध, विभीषण अभिषेक एवं रामराज्याभिषेक का वर्णन है।

(3) **बालचरित**—यह पाँच अङ्कों का नाटक है। इसमें बालकृष्ण की दिव्य बाललीलाओं का चमत्कारिक वर्णन है। इसकी कथा हरिवंश से ली गई है।

(4) **पंचरात्र**—इसमें दुर्योधन द्वारा द्रोणाचार्य को आधा राज्य इस शर्त पर देने का अनुरोध है कि वे पाण्डवों को अज्ञातवास का पता पाँच दिन में लगायें।

(5) **दूतवाक्य**—यह एकांकी नाटक है जिसमें श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत बनकर जाते हैं।

(6) **मध्यम व्यायोग**—इसमें भीमसेन द्वारा हिडिम्बा और घटोत्कच के चंगुल में फँसे एक ब्राह्मण बालक की रक्षा की कथा है।

(7) **दूतघटोत्कच**—अभिमन्युवध के अनन्तर घटोत्कच के द्वारा दौत्यकर्म की कथा है। यह कथानक वर्तमान महाभारत में नहीं मिलता।

(8) **कर्णभार**—दानवीर कर्ण द्वारा इन्द्र को अपने कवचकुण्डल देने का इस नाटक की कथावस्तु है।

(9) **उरुभंग**—इसमें महाभारत युद्ध का प्रसिद्ध प्रसङ्ग—भीमसेन द्वारा गदायुद्ध में दुर्योधन की जंघा तोड़ना वर्णित है।

(10) **दरिद्रचारुदत्त**—इसमें उज्जयिनी नगरी के श्रेष्ठी चारुदत्त और गणिका वसन्तसेना के प्रेम की कहानी वर्णित है। यह अत्यन्त लोकप्रिय कथा थी। राजा शूद्रक विक्रमादित्य ने मृच्छकटिक नाटक में इसी कथानक की विस्तार से ऊहापोह की है। दोनों नाटकों में पर्याप्त साम्य है।

(11) **अविमारक**—प्राचीनकाल में 'अविमारक' बहुत प्रसिद्ध आख्यान था, इसका उल्लेख शाकटायन व्याकरण की लघुवृत्ति, पृ० 309 पर मिलता है, यह नल दमयन्ती और उदयनकथा के समान ही विख्यात था। पं० भगवद्दत्त के अनुसार सौवीरराज अविमारक और चण्डभार्गव जनमेजय पाण्डव के समकालीन थे।[1] महाकवि भास ने इस नाटक में राजकुमार अविमारक और राजकुमारी कुरङ्गी की प्रेमकथा कही है।

(12) **यज्ञफल**—इस नाटक को सम्वत् 1997 में कालिदास शास्त्री ने गोंडल से सर्वप्रथम प्रकाशित किया था। इस नाटक की दो हस्तलिखित प्रतियां शास्त्री को मिली थी, जिनमें इसको 'यज्ञफलम्' और 'यज्ञनाटकम्' लिखा है। इसमें भी भास के अन्य नाटकों के स्थान पर 'स्थापना' शब्द प्रयुक्त किया गया है। कवि और नाटक के नाम का अभाव है। भरतवाक्य थोड़े परिवर्तन के साथ है—

रक्षन्तु वर्णं धर्मं स्वं प्रजाः स्युरनुपप्लुप्ताः।
त्वं राजसिंह पृथिवीं सागरान्तां प्रशाधि च ॥

अन्य समानतायें भी हैं।[2] कुछ विद्वान् 'यज्ञफल' को भास की रचना नहीं स्वीकार करते।[3] एक और नाटक अपूर्ण रूप में उपलब्ध हुआ है—'वीणा-वासवदत्ता' इसे कुछ विद्वान् नहीं मानते।[4]

प्रतिज्ञायौगन्धरायण—इसमें स्वप्नवासवदत्तम् से पूर्व का उदयन का चरित वर्णित है, यथा भवभूति के महावीरचरित में राम का पूर्वचरित एवं उत्तररामचरित में उत्तरकालीन चरित है, तथाविध प्रतिज्ञायौगन्धरायण स्वप्नवासवदत्तम् का पूर्वकाण्ड है। इस नाटक की मुख्य कथावस्तु है वत्सराज उदयन कृत्रिम हाथी के छल द्वारा चण्डप्रद्योत महासेन द्वारा कैद कर लिया

(1) भा० बृ० इ० अ०2 (पृ० 168)।
(2) द्र० संस्कृत साहित्य का इतिहास—हंसराज-अग्रवालकृत, (पृ० 72-73)।
(3) द्र० ए०एस०वी० अय्यर, भास, पृ० 8।
(4) ए० न्यू ड्रामा आफ भास डा० कुन्हन राजा।

जाता है। वह राज प्रासादीय कारावास में प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता को वीणा-वादन सिखाता है, इसी मिस दोनों प्रणयबन्धन में आबद्ध हो जाते हैं। उदयन अपने प्रधानमन्त्री यौगन्धरायण के सहाय्य से वासवदत्ता के साथ उज्जयिनी से भागकर अपनी राजधानी में आ जाता है।

स्वप्नवासवदत्तम्—प्राचीनकाल से अद्यपर्यन्त भासकृत यह नाटक उनकी सर्वोत्कृष्ट कृति मानी जाती रही है। नाट्यविद्या के प्रबलतम समीक्षकों ने भी इसकी प्रशंसा की और राजशेखर के प्रामाण्य से ज्ञात होता है कि इस काल-सम्पूजित नाटक को अग्नि ने नहीं जलाया—इसका तात्पर्य यही है कि तीव्र आलोचकों को भी इसकी प्रशंसा करनी पड़ी।

भारतीय वाङ्मय में राम और कृष्ण के अनन्तर उदयन का चरित नाटकों का प्रियविषय रहा है। वत्सराज उदयन का प्राचीनतम ज्ञात ऐतिहासिक चरित गुणाढ्य की बृहत्कथा में लिखा गया था, परन्तु गुणाढ्य तो किसी आन्ध्र सातवाहन राजा के समकालीन थे। यदि भास नन्दकाल में हुये तो उन्होंने अपने नाटकों की कथावस्तु बृहत्कथा से न लेकर अन्य किसी प्राचीन इतिहासग्रन्थ से ली होगी, क्योंकि गुणाढ्यकृत बृहत्कथा भास से बहुत उत्तर-काल में रची गई और इस समय तो मूल बृहत्कथा भी नहीं मिलती, उसके संस्कृतरूपान्तर बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर बहुत अर्वाचीन ग्रन्थ है।

स्वप्नवासवदत्ता नाटक की कथावस्तु इस प्रकार है[2]—वासवदत्ता से विवाह करके वत्सराज उदयन अपनी राजधानी में आमोद प्रमोद और भोगविलास में समय व्यतीत करते थे। शत्रु पाञ्चालराज आरुणि ने अवसर पाकर वत्सराज्य पर आक्रमण करके उसका पर्याप्त भाग हथिया लिया। अतः उदयन केवल अपनी राजधानी कौशाम्बी मात्र के अधिपति रह गये। यह दुर्दशा मन्त्री यौगन्धरायण और रुमण्वान् के लिये कण्टकरी थी, अतः उन्होंने किसी शक्तिशाली राजा की सहायता प्राप्त करने की सोची। उस समय मगधराज दर्शक भारत का प्रतापी शासक था और उसकी अनुजा पद्मावती अविवाहिता थी, अतः यौगन्धरायण ने उदयन का विवाह पद्मावती से कराने की युक्ति

(1) भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितम्।
स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः॥

(2) नाटकों के मुख्यपात्रों के निर्देश भास ने मुद्रालङ्कार में इस प्रकार किया है—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम्।
पद्मावतीपूर्णौ वसन्तकभ्रौ भुजौ पाताम्॥

सोची। मन्त्री यौगन्धरायण ने उदयनमहिषी वासवदत्ता को मागध राजकुमारी पद्मावती के आश्रय में वेश बदलकर रखवा दिया। नाटक के प्रारम्भ में वासवदत्ता उदयन-पद्मावती के विवाह के समाचार को सुनकर उदास होकर प्रमद वन में जाती है, वहाँ वासवदत्ता पद्मावती के विवाहार्थ पुष्पमाला तैयार करती है और दासी को माला देकर भेज देती है और वासवदत्ता स्वयं उदयन के द्वितीय विवाह के कारण दुःखी हो शयनागार में जाती है।

चतुर्थ अंक में पद्मावती और वासवदत्ता में वार्तालाप होता है, इसी प्रकार उदयन और विदूषक में वार्तालाप होता है। वहाँ राजा के उद्‌गार हैं—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति॥

"यद्यपि, रूप, शील और माधुर्य के कारण पद्मावती का आदर करता हूं, परन्तु वह, (पद्मावती) वासवदत्ता में बंधे हुये मेरे मन को नहीं हर पा रही।" वासवदत्ता इस वार्तालाप को सुन लेती है और मन ही मन प्रसन्न होती है। वासवदत्ता सम्बन्धी स्मृति से राजा की आँखों में प्रेमाश्रु छलक आते हैं और राजा अपनी ओर से ही पद्मावती को स्पष्टीकरण देता है—

शरच्छशांकगौरेण वाताविद्धेन भामिनि।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम॥

"शरत्कालीन श्वेत चन्द्रमा के समान वायुविद्ध काशपुष्परेणु के लगने से हे प्रिये! मेरी आँखों में आँसू आ गये।" राजा नवोढ़ा पत्नी को दुःखी नहीं करना चाहता—

इयं बाला नवोद्‌वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत्।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः॥

"यह बाला नवोढ़ा है, यह सत्य को सुनकर दुःखी होगी। यद्यपि यह धीर स्वभावा है, फिर भी स्त्री का स्वभाव भीरु (अधीर या डरपोक) होता है।"

स्वप्न अंक—संस्कृत साहित्य में प्रायः नाटकों के नाम गर्भितार्थक रखे जाते थे। यह परिपाटी अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही थी, और भासोत्तरकालीन कवियों ने भी इस परम्परा का पालन किया, यथा अभिज्ञान शाकुन्तल, मृच्छकटिक, मुद्राराक्षस और वेणीसंहार इसके सर्वोत्तम उदाहरण हैं। कालिदास आदि ने यह प्रवृत्ति भासादि से सीखी।

जिस प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल का सर्वोत्तम अङ्क चतुर्थ अङ्क है, उसी प्रकार स्वप्नवासवदत्ता का सर्वश्रेष्ठ अङ्क पञ्चम अङ्क है। प्रसङ्ग यह है कि

नाटक का नायक वत्सराज उदयन शिरोवेदना से पीड़ित पद्मावती की शय्या पर सो जाती है। निद्रामग्न राजा के पास वासवदत्ता, उसको पद्मावती समझकर आती है, उसी समय राजा स्वप्न में वासवदत्ता का स्मरण करता है। वासवदत्ता साथ में शय्या पर लेट जाती है, परन्तु स्वप्न में उदयन को बोलते देखकर वह शीघ्रता से उठकर बाहर निकलने लगी, उदयन उसके पीछे भागता है, परन्तु निद्रावश द्वार से टकराकर गिर पड़ा, पुनः उठकर वसन्तक (विदुषक) से वासवदत्ता के जीवित होने की चर्चा करता है। इसी प्रसङ्ग के कारण नाटक का नाम स्वप्नवासवदत्तम् रखा गया।

इस प्रसङ्ग के कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं, इसमें कविभास की कला और भावप्रवणता श्रेष्ठ रूप में प्रस्फुटित हुई है—

राजा—(स्वप्नायते)—हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय—हम्। आर्यपुत्रः न खलु पद्मावती, किन्तु खलुदृष्टास्मि।

राजा स्वप्न में ही बड़बड़ाता है—हा ! वासवदत्ते। हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये, हा प्रिय शिष्ये, देहि मे प्रतिवचनम्।'

यहाँ राजा प्रियशिष्ये और अवन्तिराजपुत्री कहकर उसका आदर भी करता है और शिष्या कहकर उसको अपनी आज्ञानुवर्तिनी होने का संकेत करता है। वासवदत्ता ने उत्तर दिया—आलपामि भर्तः। आलपामि।[1]

राजा—(सहसोत्थाय)—वासवदत्ते ! तिष्ठ। तिष्ठ ! ता धिक् !

निष्क्रामन् संभ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः॥[2] (5.7)

उदयन भ्रम में ही था कि वास्तव में यह वासवादत्ता है या और कोई, इतने में ही वसन्तक आ जाता है, राजा उसको सूचित करता है कि वासवदत्ता

---

(1) **राजा (स्वप्न में)** हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता (सहसा उठकर)—अरे यह तो आर्यपुत्र हैं, पद्मावती नहीं, मुझे आर्यपुत्र ने देख लिया है।

हा! वासवदत्ते, हा प्रिये! हा प्रिय शिष्या, मुझे उत्तर दो।

वासवदत्ता—हे स्वामी! मैं बोलती हूँ, बोलती हूं।

(2) **राजा**—(सहसा उठकर) वासवदत्ते। ठहरो ठहरो। हा, धिक्कार है'—
निकलते हुये मैं संभ्रम से किवाड़ से टकरा गया। मैं नहीं जानता कि **यह मनोरथ यथार्थ है या असत्य ?**

जीवित है—वयस्य प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता। वसन्तक कहता है—वासवदत्ता तो कब की मर गई। राजा कहता है— मित्र ! ऐसा मत कहो। वह तो मुझे जगाकर अभी-अभी गई है, मुझे मन्त्री रुमण्वान् ने झूठ बोलकर ठग लिया। विदूषक पुनः कहता है— यह असम्भव है। आपने उसे स्वप्न में ही देखा है। राजा कहता है—

एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यप्रतिबोधनम्।
अथायं विभ्रमो वास्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥[1]

विदूषक कहता है कि इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नाम की यक्षिणी रहती है, वही आपने देखी होगी। राजा कहता है—नहीं नहीं, स्वप्न के अन्त में मैंने जागकर कज्जलहीन नेत्रों और दीर्घालकों वाले मुख को देखा जो आपत्काल में भी अपने चारित्र्य की रक्षा कर रही है।

इस प्रकार भास की काव्यकला स्वप्नवासवदत्ता नाटक में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई, इसका लघुनिदर्शन उपर्युक्त प्रसङ्ग में दिखाया गया है।

भास की भाषाशैली, रसयोजना, नाट्यकला एवं अन्य विशेषतायें पूर्व निर्दिष्ट की जा चुकी है, अतः उनकी आवृत्ति ठीक नहीं। भास के अन्य प्रायः सभी नाटकों में उच्चकोटि की काव्यकला प्राप्त होती है, इसका प्रभाव उत्तरवर्त्ती कवियों यथा कालिदास, शूद्रक,[2] भवभूति मुरारि आदि पर पड़ा।

(मृच्छकटिक कर्त्ता शूद्रक विक्रम)

अब भी हमारे देश के बहुत से संस्कृतज्ञ शूद्रक विक्रम की ऐतिहासिकता में विश्वास नहीं करते और मृच्छकटिक को किसी अन्य कवि की जाली रचना मानते हैं। क्योंकि अधिकांश संस्कृतज्ञों की शिक्षादीक्षा भारतीय इतिहास के दास युग (अँग्रेजी राज्यकाल) में हुई है अतः अभी तक वे अपनी उस प्रवृत्ति से मुक्त नहीं हुये हैं जो अँग्रेज प्रभुओं ने प्रवर्तित की थी, अतः अब भी वे शूद्रक को काल्पनिक और मृच्छकटिक को प्रायः जाली रचना मानते हैं। अतः

---

(1) राजा—इस प्रकार मैंने स्वप्न देखा है—तो यह स्वप्न हो तो निद्रा ही अच्छी है, यदि विभ्रम है तो यह भ्रम भी बहुत देर तक रहे।

(2) एक उदाहरण द्रष्टव्य है—
'कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं समं लताभिः कठिनीकरोमि (प्रतिमा 5.3) का अनुकरण कालिदास के इस श्लोक में देखा जा सकता है'—

शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति (अ०शा० 1।18)।

इस सम्बन्ध में कीथ, स्टेन कोनो, सिलवाँ लेवी और पिशेल आदि के काल्पनिक मतों का न कोई महत्व है न उनमें कोई सत्यता है।[1] सिलवाँ लेवी तथा और बहुत से लेखक भी मृच्छकटिक को जाली एवं अर्वाचीन रचना मानते हैं। एक प्रसिद्ध भारतीय संस्कृतज्ञ मृच्छकटिक को चौथी शती की रचना मानते हैं और लिखते हैं—'इस महाकवि का प्रादुर्भाव चौथी शताब्दी ई० में हुआ था। इन्हें भास और कालिदास के अन्तराल में रखना समीचीन है।"[2] ये संस्कृतज्ञ महोदय अपनी इच्छानुसार कवियों को 'रखना" चाहते हैं, इतिहास के अनुसार नहीं। प्रतीत होता है कि इन्होने 'इतिहास'[3] (इति+ह+आस) पद के अर्थ पर विचार ही नहीं किया। धन्य है इनकी बुद्धि पर। स्टेनकोनो नामक एक पाश्चात्य लेखक आभीरनरेश शिवदत्त को शूद्रक मानते हैं, यद्यपि इसमें भी कल्पना के अतिरिक्त कोई प्रमाण नहीं है।

शूद्रक विक्रम के सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त[4] ने पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री का सङ्कलन किया है, यद्यपि पण्डितजी का परिश्रम स्तुत्य और सत्यतापूर्ण है परन्तु वे यहाँ अतिवादन के शिकार हो हैं और उनका शूद्रक विक्रम के समय सम्बन्धी परिणाम सत्य न होकर भ्रामक है। इस सामग्री का आगे संक्षेप में विचार किया जायेगा। इस सम्बन्ध में राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री

---

(1) कीथ के मत में शूद्रक कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं था क्योंकि पाश्चात्यों और तदनुगामी भारतीयों ने यह षड्यन्त्र किया था कि संवत प्रवर्तक शूद्रक विक्रम को ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं माना जाय, फिर वे मृच्छकटिक को उसकी रचना कैसे मानते। जर्मन संस्कृतज्ञ पिशेल मृच्छकटिक को दण्डी कवि की रचना मानता था, क्योंकि उसके मत में दशकुमारचरित और काव्यादर्श के अतिरिक्त दण्डी की तृतीयकृति मृच्छकटिक थी (त्रयो दण्डि-प्रबन्धाश्चत्रिषु लोकेषु विश्रुता), इस सम्बन्ध में कीथ और पिशेल के मत द्रष्टव्य हैं—हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ० 296, कीथकृत)।

(2) संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीयभाग) पृ० 159, रामजी उपाध्याय।

(3) इति+ह+आस=इस प्रकार जो हुआ, वह इतिहास है, इसमें स्वकल्पना के लिये स्थान नहीं है। इतिहास में व्यक्तियों के समय को 'रखा' नहीं जाता वह पहले ही निश्चित होता है।

(4) द्र० भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 166 से 172 और द्वितीय भाग पृ० 279--280 तथा 291 से 305 तक।

का मत ही प्रामाणिक एवं भारतीय परम्परा के अनुकूल है/ जैसा कि शूद्रक विक्रम से एक शती पश्चात् होने वाले गुप्तवंशावतंस सम्राट् समुद्रगुप्त ने लिखा है कि इसी शूद्रक विक्रम ने 'वैक्रम' सम्वत् चलाया, जिसके दरबार में अभिज्ञान शाकुन्तलनाटककार 'आदि कालिदास' रहते थे। लिखा है—"इन्द्र के समान बलवान् शूद्रक सभी शास्त्रों का विद्वान् था। उसने धनुर्वेद, चौरशास्त्र और दो नाटक लिखे। उसने शास्त्रों और शस्त्रों के बल पर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। उसकी बुद्धि और बल को बौद्ध (सौगत) सह नहीं कर सके। उसने सैन्य बल से म्लेच्छों के अत्याचारों से देश की रक्षा की। उसने तपस्विव्रत का आचरण करते हुये धर्मपूर्वक प्रजा का पालन किया एवं शक (मुरुण्डों) को की जीतकर विक्रम संवत् चलाया।'[2]

रामिल सौमिल कवियों ने 'शूद्रकचरित' लिखा था। अपने समकालीन कवि सौमिल का उल्लेख महाकवि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक में किया है (शूद्रक का एक नाम अग्निमित्र भी था इसका उल्लेख आगे करेंगे।) इसी शूद्रक ने नौ अङ्कों वाला मृच्छकटिक नाटक लिखा। इस नाटक में कवि (राजा) ने विद्या, नय (राजनीति) और बल से समन्वित स्वचरित की छाया प्रकट की है इसमें 'आर्यक जय' नाम से अपनी ही कीर्ति का गान किया है।

---

(1) तेनाश्वमेधेनेष्टम्, ततः शकाञ्जित्वा स्वं वैक्रमं वत्सरं स प्रावर्तयत स एवायं विक्रमादित्यापरनामा यस्य वैक्रमो वत्सरोऽधापि प्रचलति बहवः पण्डिता एवमेव सोपपत्तिं मन्यन्ते च। (कृष्णचरित, पृ० 44)।

(2) पुरंदरबलो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित्।
धनुर्वेदं चौरशास्त्रं रूपके द्वे तथा करोत्।
स विपक्षविजेताऽभूच्छास्त्रैः शस्त्रैश्च कीर्त्तये।
बुद्धिवीर्येनास्य वरे सौगताश्च न प्रसेहिरे।
स तस्तारारिसैन्यस्य देशखण्डे रणे महीम्।
धर्माय राज्यं कृतवान् तपस्विव्रतमाचरन्।
शस्त्रैर्जितमयं राज्यं प्रेम्णाऽकृत निजं गृहम्।
एवं ततस्तस्य तदा साम्राज्यं धर्मशासितम्।
तत्कथां कृतवन्तौ यौ कवी रामिलसौमिलौ।
तस्यैव सदसि स्थित्वा तौ मानं वह्वाप्नुताम्।
सतां मतः सोऽश्वमेधं कृतवानुरुविक्रमः।
वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम्। (कृ०च० 6-11)

इस प्रकार ब्राह्म (वैदुष्य) और क्षात्रबल से युक्त तेजस्वी शूद्रक थे। वृद्धावस्था में अपने पुत्र देवमित्र को राजसिंहासन पर बिठाकर वह मुनिवृत्ति से वन में जाकर समय बिताने लगे। इसी विक्रम शूद्रक के रत्नों में श्रीकालिदास आप्तवर्ण कवि थे, जिनका अप्रतिमप्रभाव था, इसी कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल एवं अन्य तीन लघु नाटक लिखे।"[1]

उपर्युक्त विवरण से अनेक प्रसिद्ध एवं अप्रसिद्ध तथ्य ज्ञात होते हैं। शूद्रक ने मूल मृच्छकटिक नाटक में नौ अङ्क ही लिखे थे, इस नाटक का अपर नाम 'आर्यकविजय' भी था। शूद्रक ने द्वितीय नाटक पद्मप्राभृतक भाण लिखा जो प्राप्य है। इस समय मृच्छकटिक नाटक में दस अङ्क मिलते हैं। श्रीकालिदासशास्त्री के मत में महाकवि दण्डी ने इसमें दशम अङ्क जोड़ा एवं अन्य कुछ पाठपरिवर्तन भी किये। मृच्छकटिक के प्रारम्भ में शूद्रक को जो परिचय मिलता है वह भी दण्डी द्वारा रचित है, ऐसा शास्त्रीजी का मत है।[2]

---

(1) भूयः स मृच्छकटिकं नवाङ्कं नाटकं व्यधात्।
व्यधात्तस्मिन् स्वचरितं विद्यानयबलोर्जितम्।
तदार्यकजयं नाम्ना ख्याति विद्वत्स्वविदत ॥
एवं ब्रह्मक्षत्रतेजोराशिरासीत्स शूद्रकः।
उपवेश्य निजं पुत्रं देवमित्रं निजासने।
वार्धके मुनिवृत्त्यैव नयन्कालं वनं ययौ ॥
तस्याभवन्नरपतेः कविराप्तवर्णः।
श्रीकालिदास इति योऽप्रतिमप्रभावः ॥
दुष्यन्तभूपतिकथां प्रणयप्रतिष्ठाम्।
रम्याभिनेयभरितां सरसां चकार ॥
शाकुन्तलेन स कविर्नाटकेनाप्तवान् यशः।
वस्तुरम्यं दर्शयन्ति त्रीण्यन्यानि लघूनि च ॥ (कृ०च०12-16)

(2) "वयं तु मन्यामहे यच्छूद्रकरचितं नवाङ्कं मृच्छकटिकमवर्तत दण्डिना तदेव चिकीर्षताऽङ्कस्तत्र निर्माय योजितः। अत एव शूद्रकस्याग्निप्रवेशो मरणं वासम्प्रति लभ्यमाने मृच्छकटिके यद्दृश्यते तावतोंऽशस्य शूद्रकेण कर्तुमसंभवादन्यकविकृतत्वं भवत्येव दण्डिकर्तृत्वमेव तस्य भवेत्। अन्यदपि दण्डिना तत्र बहुपरिवर्तितं भवेत्।" (कृ० च० 45)

समुद्रगुप्त द्वारा उल्लिखित अनेक तथ्यों की पुष्टि मृच्छकटिक में प्राप्त श्लोकों से होती है, तदनुसार 'शूद्रक गजेन्द्र गतिवाला, चकोरनेत्र, विद्वान्, प्रसिद्ध कवि और अतिवली एवं पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाला, सुन्दर शरीर, प्रधान अतिकाय पुरुष था। उसने शिव की कृपा से ऋग्वेद, सामवेद, गणित, कला, वाणिज्य, हस्त्यायुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करके प्रज्ञाचक्षु या अतिज्ञानी हो गया। अश्वमेधयज्ञ करके और अपने पुत्र को राज्याभिषिक्त करके शूद्रक ने सौ वर्ष और दश दिन की आयु पाकर अग्नि में प्रवेश किया। वास्तव में शूद्रक युद्धप्रिय, प्रमादशून्य, वेदवेत्ता में श्रेष्ठ और तपोधन, शत्रु के हाथी से हस्तयुद्ध में कुशल लोकप्रसिद्ध सार्वभौम सम्राट् था।'[1] उसकी कीर्ति न केवल सम्पूर्ण भारत बल्कि चीन, अरब, ईरान, अफ्रीका, मिस्र जैसे बाह्य सुदूर देशों में भी फैली हुई थी और आज भी विक्रमादित्य और कालिदास की कीर्ति वैजयन्ती की तुलना कोई कलियुगी राजा और कवि नहीं कर सकता।[2]

शूद्रक एक या अनेक—प्राचीन वाङ्मय में शूद्रक विक्रम का उल्लेख—इस सम्राट् के प्राचीनकाल में अनेक विख्यात नाम थे, ज्योतिषग्रन्थों के आधार पर आजकल इसका केवल विक्रमादित्य नाम प्रचलित रह गया है। मृच्छकटिक नाटक में केवल शूद्रक नाम अवशिष्ट है और वहां वही प्रसिद्ध है। परन्तु इसके अनेक नाम समानरूप से विज्ञात थे, उदाहरणार्थ—अग्निमित्र, इन्द्राणिगुप्त, शूद्रक, विषमशील, श्रीहर्ष, आर्यक और विक्रमादित्य। यह पूर्णतः सम्भव है कि अग्निमित्र आदि नामों के राजा विक्रमशूद्रक से पूर्व और पश्चात् हुये हों और उनसे सम्बन्धित कोई ऐतिहासिक घटना इस विक्रम से जुड़ गई हो, क्योंकि नाम साम्य ही इतिहास में अनेक भ्रमों का जन्मदाता है, नामसाम्य के कारण ही अनेक कालिदास या शंकराचार्य एक कर दिये गये, यही भ्रम विक्रम के सम्बन्ध में हुआ तो कोई विचित्र बात नहीं।

---

(1) द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च ।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्वः ॥
ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षाम् ।
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ॥
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा ।
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ॥
समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुदं वेदविदां तपोधनश्च ।
परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव ॥

(2) द्र० भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें: पुरुषोत्तम नागेश ओक द्वारा विक्रमादित्य सम्बन्धी अरबी कवि बिन्तोई की विक्रमादित्य सम्बन्धी कविता जो मोहम्मद साहब से 165 वर्ष पूर्व काबा मन्दिर में उत्कीर्ण गई उससे सिद्ध होता है कि विक्रम का अरब देशों पर धर्मशासन था।

मालविकाग्निमित्र नाटक में महाकवि कालिदास ने अपने आश्रयदाता शूद्रकविक्रम के अग्निमित्र नाम का उल्लेख भरतवाक्य में किया है।[1] प्रसिद्ध शुङ्गनरेश अग्निमित्र इससे पृथक् था। अवन्तिसुन्दरीकथासार में शूद्रक का एक नाम इन्द्राणिगुप्त था।[2] कृष्णचरित और मृच्छकटिक में इसका एक नाम आर्यक था, क्योंकि शूद्रक नाम कुछ गर्हित या कुत्सित प्रतीत होता था अतः उसे शूद्रक (शूद्र) का विपरीत आर्यक (आर्य) भी कहते थे, जिस प्रकार दुर्योधन को कुछ लोग सुयोधन कहते थे। कथासरित्सागर के विषमशील लम्बक में इसी शूद्रक विक्रम का चरितवर्णित है। विषमशील या विषमादित्य नाम अनेकशः मिलता है।[3] कह्लण ने विक्रम का एक नाम श्रीहर्ष लिखा है।[4] शूद्रक और विक्रमादित्य नाम तो प्रसिद्ध हैं ही, जिनकी पुष्टि कृष्णचरित से होती है—

वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम् ॥
पुरंदरबलो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित् ।

शकों का नाश करके इसने प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् प्रवर्तित किया, अतः मृच्छकटिक और उसके कर्त्ता शूद्रक के समय के सम्बन्ध में भ्रान्ति आश्चर्य-जनक और कपटपूर्ण है, जो लोग यह कहते हैं कि शूद्रक के समय का बिल्कुल पता ही नहीं, वे लोग महान् अन्धकार में हैं और सूर्य पर थूककर कहते हैं कि यह रात है। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में एकमात्र शूद्रक ही अप्रतिम साहित्यकार और प्रसिद्धतम शासक ज्ञात है जिसकी तिथि पूर्णतः ठीक-ठीक ज्ञात है और कोई दूसरा व्यक्ति है ही नहीं।[5] अतः मृच्छकटिक और शूद्रक का समय निश्चित है, इसमें कोई विप्रतिपत्ति या शंका का स्थान ही नहीं है। इतिहास कल्पना से दूर भागता है।

---

(1) संपद्यते न खलु गोप्तरि नाग्निमित्रे (मालविकाग्निमित्र, भरतवाक्य)।

(2) इंद्राणिगुप्त इत्यासीद्यं प्राहुः शूद्रकं बुधाः, (अवन्तिसु० 4।175)।

(3) भवेद्गोष्ठीयानं न च विषमशीलैरधिगतम् (मृ० 7।6।4) विषमादित्येन हर्षपर्यायेण तदभिधानेन उज्जयिनीश्वरेण शकारिणा विक्रमादित्यदेवेन (गुरुरत्नमालिका टीका)

(4) तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराधिपः।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥ (राजतरंगिणी) 125)

(5) शूद्रक विक्रम को संवत् चलाये हुये ठीक आज (दि० 26-5-1978) 2035 वर्ष 2 महीने और 6 दिन हुये हैं, अतः शकारि शूद्रक विक्रम की एकदम ठीक तिथि हमें इतिहास में ज्ञात है, और किसी दूसरे ऐतिहासिक व्यक्ति की इतनी ठीक तिथि ज्ञात नहीं।

पं० भगवद्दत्त कहीं पर शूद्रक का समय 400 वि० पू० कहीं 699 वि० पू० मानते हैं, वह सर्वथा अनुचित और अप्रमाणिक है।[1] समुद्रगुप्त के कृष्णचरित सहित सभी प्राचीन प्रमाण शकारि विक्रम शूद्रक का ऐक्य सिद्ध करते हैं, फिर अन्य कल्पना की क्या आवश्यकता है ? हाँ मालवसंवत्, कृत संवत् आदि निश्चय ही पृथक्-पृथक् थे, इस सम्बन्ध में पाश्चात्य कल्पनायें अश्रद्धेय हैं।

शूद्रकविक्रमादित्य के समकालीन साहित्यकार—विक्रम की प्रधान राजधानी उज्जयिनी महाकवि उपवर्ष, पाणिनि, कात्यायन और पतञ्जलि से गुप्तों तक दीर्घकालपर्यन्त साहित्य का मधुस्रोत रहा, यहाँ पर अनेक अद्वितीय एवं विश्ववन्द्य प्रतिभाओं का पल्लवन हुआ, यहाँ की शास्त्रकार परीक्षा और काव्यकार परीक्षायें प्रसिद्ध थीं। क्योंकि शूद्रक विक्रम ने दीर्घकाल (सत्तर या अस्सी वर्ष) राज्य किया अतः राजा की अनेक साहित्यकारों से अजर्य सङ्गत हुआ। संस्कृत विद्यानुरागी होने के कारण शकारि विक्रम ने अपने अन्तःपुर में संस्कृत बोलने का नियम बनाया था—

श्रूयते चोज्जयिन्यां साहसाङ्को नाम राजा।
तेन च संस्कृतभाषात्मकमन्तःपुर एव प्रवर्तितो नियमः ॥[2]

विक्रमसभा के नवरत्न प्रसिद्ध थे—धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु वेतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररुचि।[3] इसके अतिरिक्त निम्न साहित्यकारों की ख्याति विक्रमकाल में थी - रामिल, सौमिल, कालिदास, मातृगुप्त, भर्तृमेण्ठ, मूलदेव और पादलिप्त।

रामिल-सौमिल—समुद्रगुप्तकृत कृष्णचरित के प्रमाण से लिखा जा चुका है कि रामिल-सोमिल शूद्रक सभा के प्रमुख कवि थे, जिन्होंने शूद्रकचरित लिखा था, अन्यत्र भी कविद्वयी का स्मरण किया गया है—

तौ शूद्रककथाकारौ वन्द्यौ रामिलसौमिलौ।
ययोर्द्वयोः काव्यमासीदर्धनारीश्वरोपमम् ॥

---

(1) भा० बृ० इ० भाग। (पृ० 166-170)
(2) काव्यमीमांसा, अ० 10, राजशेखर।
(3) धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य।

कालिदास— अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रसिद्ध नाटककार विश्वविख्यात महाकवि शूद्रक विक्रम की सभा का उज्ज्वलतम रत्न था, इनका विस्तृत परिचय आगे लिखेंगे।

मातृगुप्त—विक्रम शूद्रक ने अपने अनुजीवी महाकवि मातृगुप्त को कश्मीर का शासक नियुक्त किया था, 'राजतरंगिणी' में कल्हण ने विक्रम और मातृगुप्त के सम्बन्ध की विस्तार से चर्चा की है। समुद्रगुप्त ने लिखा है—

मातृगुप्तो जययि यः कविराजो न केवलम्।
कश्मीर राजोऽप्यभवत् सरस्वत्याः प्रसादतः॥
विधाय शूद्रकजयं सगन्तितानंदमद्भुतम्।
न्यदर्शयद्वीररसं कविरावन्तिकः कृती॥

उपर्युक्त श्लोक में आवन्तिक विशेषण मातृगुप्त का ही है, जिसने 'शूद्रक जय' (शकविजय) काव्य लिखा। इसी काव्य से प्रसन्न होकर शूद्रक ने मातगुप्त आवन्तिक को कश्मीर का राजा बनाया।

भर्तृमेण्ठ—राजशेखर ने बाल रामायण में लिखा है कि पूर्वकाल में उत्पन्न आदिकवि वाल्मीकि ही अन्य जन्मों में क्रमशः भर्तृमेण्ठ, भवभूति और राजशेखर हुये। यह भर्तृमेण्ठ पहिले मातृगुप्त का हस्तिपक (महावत) था जो अपनी प्रतिभा से कश्मीरराज का महाकवि बन गया। मेण्ठकृत महाकाव्य 'हयग्रीववध' की कीर्ति दिग्दिगन्त व्याप्त थी।

मूलदेव—पं० भगवद्दत्त ने शूद्रककालीन अतिविद्वान् मूलदेव कर्णीपुत्र का इतिहास कुछ विस्तार से लिखा है।[1] स्वयं शूद्रक ने अपने द्वितीय नाटक पद्मप्राभृतक में लिखा है—'अनेकशास्त्राधिगतनिष्पन्दबुद्धिः सर्वकलाज्ञानविचक्षणः व्युत्पन्नमतिः कामतन्त्रसूत्रधारः कर्णीपुत्रः।' अतः मूलदेव ने कामशास्त्र एवं अन्य ग्रन्थ लिखे थे।

पादलिप्त—प्रसिद्ध प्राकृत रचना तरंगवती कथा के लेखक ये जैनकवि शूद्रककालीन थे।

मृच्छकटिक का कथानक—इस नाटक का नाम भी गर्भितार्थक है—मृच्छकटिक का अर्थ है मिट्टी की गाड़ी—इस गर्भितार्थ में दारिद्र्यभाव ही

(1) भा० बृ० इ० भाग 2 (पृ० 300-302)।

प्रकट किया गया है, इससे पूर्व भास 'दरिद्रचारुदत्त' नाटक लिख चुके थे, जिसका कथानक भी प्रायः यही है जो मृच्छकटिक का है। नाटक दस अङ्कों में है और इसमें चारुदत्त और वसन्तसेना के अनन्यप्रेम की कथा वर्णित है।

नाटक के प्रारम्भ में मैत्रेय नामधारी विदूषक चारुदत्त के दारिद्रय की चर्चा करता है। विदूषक चारुदत्त के लिये, उसके मित्र जूर्णवृद्ध द्वारा प्रेषित प्रावरक (शाल) लेकर जाता है। मिलने पर चारुदत्त अपने दैन्य पर विलाप करता है और विदूषक को चतुष्पथ पर मातृबलि के लिये आग्रह करता है। विदूषक रात्रि में चतुष्पथ पर जाने से भयभीत होता है, एतदर्थं चारुदत्त विदूषक के साथ मदनिका नाम्नी दासी को भेजता है, इतने में ही राजपथ पर वसन्तसेना का पीछा करते हुये शकार, विट और चेट आ पहुँचते हैं। शकार के कथन से वसन्तसेना को ज्ञात होता है कि वह चारुदत्त के गृह के समीप ही आ गई है। अतः शकार से बचने के लिये वह चारुदत्त के घर में घुस जाती है। इधर विदूषक मदनिका दासी सहित मातृबलि के लिये आता है, शकार उसको (मदलिका) वसन्तसेना समझकर पकड़ लेता है, तब मैत्रेय (विदूषक) उसकी भर्त्सना करता है। वसन्तसेना चारुदत्त के घर में ही अपने स्वर्णभूषणादि रखती है और चारुदत्त उसे उसके घर पहुँचा देता है, यहीं पर गणिका वसन्तसेना कामदेवायतन के उद्यान में चारुदत्त के रूप और शील को देखकर उससे प्रेम करने लगती है।

द्वितीय अङ्क में प्रमुखतः दो घटनायें वर्णित हैं। संवाहक कितव (जुआरी) पाटलिपुत्र का संभ्रान्त नागरिक था, परन्तु दुर्भाग्य के प्रकोप से वह द्यूत में अपना सारा धन गंवाकर उज्जयिनी में पैर दबाने का काम सीखकर चारुदत्त का सेवक बन गया, जबकि वह (चारुदत्त) महान् श्रेष्ठी (सेठ) था, परन्तु चारुदत्त के दरिद्र हो जाने पर संवाहक द्यूतक्रीड़ा में पड़ जाता है। जुए में वह दश मुद्रायें हार जाता है और माथुर को नहीं चुका पाता। माथुर एवं अन्य कितव उसका पीछा करते हैं, वह वसन्तसेना के गृह में छिप जाता है। वसन्तसेना धूर्तों को स्वर्णभूषण देकर संवाहक को उनसे मुक्त कराती है। संवाहक इस घटना से महान् मानसिकक्लेश का अनुभव करता है और जीवन से उदास होकर बौद्ध भिक्षु बन जाता है। इसी समय वसन्तसेना का सेवक कर्णपूरक उसके पास यह संदेश लेकर आया कि आपके हाथी ने शृंखला तोड़कर उज्जयिनी में एक वृद्ध सन्यासी की हत्या की चेष्टा की, और मैंने लौहदण्ड से प्रताड़ित करके उसे दूर भगाकर सन्यासी की

प्राणरक्षा की। कर्णपूरक के शुभ कार्य से प्रसन्न होकर चारुदत्त ने उसे पारितोषकस्वरूप अपना प्रावरक (दुपट्टा) दे दिया।

तृतीय अंक में शर्विलक नाम का चोर दासी मदनिका को दास्यमुक्त कराने के लिये चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर चोरी करता है और न्यास रूप (धरोहर) में रखे हुये स्वर्णलंकारों को चुराता है। चतुर्थ अङ्क में शर्विलक उन गहनों को लेकर वसन्तसेना के घर पहुँचता है, इधर चारुदत्त वसन्तसेना के गहनों की चोरी से दुःखी होकर अपनी पत्नी की रत्नावली मैत्रेय-विदूषक को देकर वसन्तसेना के घर भेजता है। वसन्तसेना अपने घर चारुदत्त का चित्र बनाने में दत्तचित्त थी। इसी समय शर्विलक आ गया, वह वसन्तसेना को उसके आभूषण देने आया था। वसन्तसेना ने मदनिका और शर्विलक में प्रेम सम्बन्ध स्थापित करवा दिया। मार्ग में शर्विलक ने गोपालक (ग्वाला) आर्यक के सम्बन्ध में, जो राजा पालक का बन्दी था, भविष्यवाणी सुनी कि वह राजा बनेगा।

पञ्चम अङ्क में वसन्तसेना विट को साथ लेकर रात्रि में चारुदत्त के घर जाती है, चारुदत्त उसकी प्रतीक्षा में था ही, उस समय घनघोर मेघ गर्जते हैं, बिजली कड़कती है, मूसलाधार वर्षा होती है, पानी में तरोबार वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुँचती है। षष्ठ अंक में चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक उद्यान में जाता है और वसन्तसेना को अपना सन्देश पहुँचा देता है, इधर वसन्तसेना भ्रम से दूसरे शकट में बैठ जाती है जो शकार का था। इसी अंक में गोपाल आर्यक कारावास से छूटकर भागता है और चारुदत्त की खाली गाड़ी में बैठ जाता है, गाड़ीवान आर्यक को वसन्तसेना समझकर गाड़ी हाँक देता है। मार्ग में गुप्तचर गाड़ी की जाँच करना चाहते हैं, गुप्तचरों से मुक्त होकर आर्यक उद्यान में चारुदत्त से भेंट करता है। अष्टम अंक में वसन्तसेना उद्यान में प्रविष्ट होकर और शकार को पहिचानकर भयभीत होती है। अपनी वासना पूरी न होते देखकर शकार वसन्तसेना का गला घोंटता है और उसको मृत समझकर भाग जाता है। पूर्वोक्त बौद्धभिक्षु संवाहक उसे मृत समझकर पार्श्वस्थ बौद्ध विहार में ले जाता है, वहाँ वह पानी छिड़कने पर होश में आ जाती है। नवम अंक में शकार न्यायालय में जाकर चारुदत्त पर मिथ्या आरोप लगाता है कि उसने वसन्तसेना को मार डाला है, अपराध सिद्ध होने पर चारुदत्त को मृत्युदण्ड मिलता है। दशम अंक में चाण्डाल (जल्लाद) चारुदत्त को फाँसी देने के लिये ले जाता है इतने में ही बौद्ध भिक्षु संवाहक वसन्तसेना को लाता है। इधर राज्य में क्रान्ति होती है।

शर्विलक राजा पालक को मारकर आर्यक को राजा बना देता है और चारुदत्त को फांसी से छुट्टी मिल जाती है और शकार को फांसी होती है, परन्तु चारुदत्त उसे क्षमा करवा देता है। तदुपरान्त चारुदत्त और वसन्तसेना का विधिवत् विवाह होता है। भरतवाक्य के साथ नाटक का अन्त होता है।

नाटक की भाषा—मृच्छकटिक नाटक में प्रायेण भासतुल्य सरल जनभाषा संस्कृत का प्रयोग मिलता है और नाट्यशास्त्रानुसार विभिन्न प्राकृतरूपों का प्रयोग मिलता है। इसमें इन सप्त प्राकृतों को प्रयोग है—शौरसेनी, आवन्ती, प्राच्या, मागधी, शकारी, चाण्डाली और ठक्की। स्त्रीपात्र और सेवकादि शौरसेनी और मागधी को बोलते हैं। बौद्धभिक्षु और चेट केवल मागधी बोलते हैं, विदूषक प्राच्या (पूर्वी) भाषा बोलता है, चन्दनक और वीरक आवन्ती बोलते हैं। आवन्ती में 'ल' के स्थान पर रकार और प्राच्या में ककारबहुल प्रयोग होता था, शकार सर्वत्र श, ष, स के स्थान पर 'श' का उच्चारण करता है: यथा एशा (एषा), मूशिका (मूषिका) वेशिआ (वेश्या), मणुश्शे (मनुष्ये) इत्यादि रूपों में। कश्मीरी और सिन्धी 'उकारबहुला' भाषा ठक्की कही गई है—

> हिमवत्सिन्धुसौवीरान् येऽन्यदेशान् समाश्रिताः।
> उकारबहुला तेषु नित्यं भाषां प्रयोजयेत् (ना. शा. 18।47)

इसका उदाहरण निम्न है—मंशं च खादु तह तुष्टि कादं
चुहु चुहु चुक्कु चुहु चुहुत्ति ।8।22

सरल संस्कृत का प्रयोग द्रष्टव्य है—

> राजश्वसुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
> राजश्यालोऽहं राजश्यालोऽहं ममापि भगिनीपती राजा।
> (9.6)

शूद्रक की काव्यकला और नाट्यकला—यह संकीर्णसंज्ञक प्रकरणरूपक है जैसा कि नाट्याचार्यों ने कहा है—'संकीर्णं धूर्तसंकुलम्' संकीर्ण प्रकरण में धूर्तों—चोर, जुआरी, गणिका, विट, चेट, दासी दासादि की बहुलता होती है। यह वैसा ही नाटक है। इसमें काव्यकला, नाट्यसंरचना और घटना बहुलता अपने चरमोत्कर्ष पर मिलती है। नाटक की कथा या घटनाचक्र या क्रियान्वित कहीं भी शिथिल नहीं होती। इसमें उच्चवर्ग का स्पर्शपात्र ही है, मध्य और निम्नवर्ग का चित्रण है, इसे सच्चे अर्थों में सामाजिक नाटक कह सकते हैं।

नाटक के अधिकांश दृश्य अभिनेय हैं, परन्तु इसके मञ्चन के लिये विशाल साधनों की आवश्यकता होगी, साथ ही समय की दृष्टि से, विशाल

होने के कारण यह नाटक एक बैठक में मंच पर अभिनीत नहीं किया जा सकता। यह पूरा नाटक दो या तीन दिन (बैठकों) में प्रदर्शित किया जा सकता है। इस दृष्टि से भास के नाटक ही सर्वोत्तम हैं।

शूद्रक की काव्यकला भले ही कालिदास या भवभूति जैसी उच्चकोटि की न हो, परन्तु पर्याप्त सरस है, अभिनय की दृष्टि से भी सरल शैली वांछनीय है। पञ्चम अंक में वर्षा का प्रकृतिचित्रण अत्यन्त मनोहारि एवं अन्यत्र दुर्लभ है—

एक दो निदर्शन द्रष्टव्य हैं—यथा—

विद्युज्जिह्वेनेदं महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन
जलधरानिवृद्धहनुना विजृम्भितमिवान्तरिक्षेण। (5.51)

यह एक अद्भुत रूपकालङ्कार हैं जहाँ पर अन्तरिक्ष को एक पुरुष के रूप में चित्रित किया है—'अन्तरिक्षरूप पुरुष की विद्युत जिह्वा है, ऊँची उठी हुई भुजारूपी इन्द्रधनुष हैं, बादल उसकी ठोढ़ी (हनु) है, इस रूप में उसने अपना मुँख खोला है।'

जलधारा के पतन की तुलना वीणागान से की है जो एक अत्यन्त ही श्रेष्ठ काव्य का उदाहरण है—अलंकार भी द्रष्टव्य हैं—

तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं शिलासु रूक्षं सलिलेषु चण्डम्।
संगीतवीणा इव ताड्यमानास्तालानुसारेण पतन्ति धाराः। (5.52)

शूद्रक ने मेघाच्छन्न आकाश को चित्रपट के रूप में चित्रित किया है, जिसमें अनेक विचित्र चित्र बनते हैं --

संसक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव।
व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितैः।
तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः।
पत्रच्छेद्यमिह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना॥ (5.5)

'वायु द्वारा विश्लेषित मेघ पत्रच्छेद के समान कभी चक्रवाक मिथुन के रूप में कभी उड्डीयमान हंसरूप में कभी संघट्टित मीनमकर तुल्य, कभी उच्च अट्टालिकायुक्त महलों के समान प्रतीत होते हैं।' मृच्छकटिक में शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के अनेक उज्ज्वल चित्र मिलते हैं—यथा स्वरसाम्य का शब्दालंकार द्रष्टव्य है—

अन्यस्य दृष्टिरिव पुष्टिरिवातुरस्य।
मूर्खस्य बुद्धिरिव सिद्धिरिवालसस्य॥ (1·49)

उपमादि की योजना निम्न श्रृंगारमय वर्णन में द्रष्टव्य है—

किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती टङ्कैर्मनशिलगुहेव विदीर्यमाणा।
(1|20)

"हे वसन्तसेने ! वायु से लहराते हुये आन्दोलित लाल रेशमी दुपट्टे को धारण करती हुई, कम्पम्पना बालकदली के समान तीव्रगति से क्यों चली जा रही हो। अपनी पादमुद्रा से तुम रक्तकमल तुल्य चिन्ह राजमार्ग पर छोड़ती जा रही हो, मानो चोट से मनःशिल (मैनशिल काजल) की गुफा फटकर लाल रंग बिखर रहा है।"

उपमा का यह चित्र भी अवलोकनीय है—

भुजग इव गतौ गिरिः स्थिरत्वे पतगपतेः परिसर्पणे च तुल्यः।
शश इव भुवनावलोकनेऽहं वृक इव च ग्रहणे बले च सिंहः॥ (3·21)

शर्विलक कहता है—"मैं गति में सर्प के समान भुजंग (टेढ़ा) स्थैर्य में पर्वत तुल्य, वेग में गरुड़तुल्य, संसार देखने में खरगोश तुल्य, पकड़ने में वृक (भेड़िया) और बल में सिंह के समान हूं।"

चरित्रचित्रण—मृच्छकटिक चित्रणबाहुल्य नाटक है, महाकवि शूद्रक ने श्रेष्ठ और पतित—सभी का यथार्थ चरित्रचित्रण किया है। इस नाटक का सर्वोत्तम पात्र और नायक श्रेष्ठी चारुदत्त है जो दरिद्रता में भी अपने शील का परित्याग नहीं करता। उसके विषय में कवि ने कहा है—

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी।
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो।
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसतीव चान्ये॥
(1.48)

"दीनों का कल्पवृक्ष, स्वगुणरूपी फलों से नम्र, सज्जनों का कुटुम्बी, शिक्षित (सभ्यों) का आदर्श, सुचरित की कसौटी, समुद्रतुल्य मर्यादायुक्त, सत्कार करने वाला, किसी का अपमान नहीं करने वाला, पुरुषगुणनिधि, सीधा, उदारमनाः, प्रशंसनीय, अपने गुणों से एकमात्र जीवित पुरुष, अन्य तो केवल सांस ही ले रहे हैं।" वह शरणागत की प्राणों से भी अधिक रक्षा करता है—'अपि प्राणानहं जह्यां न तु शरणागतम्।' चारुदत्त को एकमात्र दुःख इसी बात का है कि नष्टधन समझकर अतिथि मेरे घर से दूर रहते हैं—'एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।' (1|12)

गणिका होते हुये भी वसन्तसेना का चारुदत्त से शुद्ध प्रेम है, वह धन के लिये नहीं गुणों से प्यार करती है। वसन्तसेना और चारुदत्त दोनों ही रत्न है—'रत्नं रत्नेन संगच्छते' (मृ०)

प्रारम्भ में चोररूप में चित्रित प्रबल इच्छाशक्ति वाला शर्विलक चाणक्य और यौगन्धरायण के समान राजा पालक का नाश करके ग्वाले और बन्दी आर्यक को राजा बना देता हैं—उसके चरित्र में निश्चय ही विरोधाभास है—

ज्ञातीन् विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान् ।
राजापमानकुपितांश्च नरेद्रभृत्यान् ।।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय ।
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः ।। (4।26)

नाटक में शकार और विदुषक का चरित्र भी ध्यातव्य है। यह नाटक का प्रतिनायक है जो अपने को देवपुरुष मनुष्य वासुदेव समझता है। विदूषक मैत्रेय की चारुदत्त से मैत्री आदर्श कही जा सकती है।

(आद्य कालिदास)

एको न जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ।।

महाकवि राजशेखर के उक्त पद्य से सिद्ध होता है कि उनके समय तक तीन महाकवि कालिदास हो चुके थे। आधुनिक विद्वानों ने सभी कालिदासों को एक जानकर उनके सम्बन्ध में कालसम्बन्धी अनेक भूलें की हैं।[1] गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने दो प्राचीन कालिदासों का स्पष्ट वर्णन किया है। इसमें अभिज्ञानशाकुन्तलनाटककार प्रथम कालिदास थे और रघुवंशकाव्यकार द्वितीय प्रसिद्ध कालिदास थे। समुद्रगुप्त ने कृष्णचरित में स्पष्टतः लिखा है—

तस्याभवन्नरपतेः कविराप्तवर्णः ।
श्रीकालिदास इति योऽप्रतिमप्रभावः ।
दुष्यन्तभूपतिकथां प्रणयप्रतिष्ठाम् ।
रम्याभिनेयभरितां सरसां चकार
शाकुन्तलेन स कविर्नाटकेनाप्तवान् यशः ।
वस्तुरम्यं दर्शयन्ति त्रीण्यन्यानि लघूनि च ।।

(कृ० च. 15-16)

(1) फर्गुसन, हार्नले प्रभृति पाश्चात्य लेखक कालिदास को रघुवंश में हूण वर्णन के कारण ई० षष्ठ शती में हुआ मानते थे और उनके मत में कालिदास यशोवर्मा के राजकवि थे, अब इस मत को कोई भी नहीं मानता।

"अतुलित प्रभावशाली ऋषितुल्य श्री कालिदास उस शूद्रक विक्रम की सभा के रत्न थे, उन्होंने राजा दुष्यन्त की प्रेमकथा से समन्वित सरस और रम्याभिनेय अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक की रचना की, जिससे कवि को महान् यश: की प्राप्ति हुई, उनके तीन लघु नाटक भी मनोरम हैं।"[1]

अत: प्रथम[2] आद्य कालिदास विक्रमादित्य शूद्रक के समय में (57 ई० पू० या लगभग 100 वर्ष ईसा पूर्व) हुये। अत: मृच्छकटिककर्त्ता शूद्रक और अभिज्ञानशाकुन्तलकार कालिदास समकालीन थे। शूद्रक विक्रम के प्रसङ्ग में इनके समय पर विस्तृत विवेचन किया जा चुका है अत: उसकी पुनरावृत्ति व्यर्थ होगी। अत: कालिदास शूद्रक विक्रमादित्य की राजसभा के रत्न थे, अब इसमें संशय के लिये कोई स्थान नहीं है।

कृष्णचरित के उपर्युक्त उल्लेख से कालिदास की आदर्शभूत एवं सर्वश्रेष्ठ रचना नाटकरत्न 'अभिज्ञानशाकुन्तल' ही है। कालिदास ने तीन और नाटक लिखे थे, जिनमें दो प्राप्य हैं—विक्रमोर्वशीयम् और मालविकाग्निमित्र। तृतीय अन्य नाटक अनुपलब्ध है, जिसका समुद्रगुप्त ने संकेत किया है। आगे तीनों नाटकों का संक्षिप्त परिचय एव समीक्षा प्रस्तुत की जाती है—

---

(1) एक मत में विद्वद्गण कालिदास को गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रम का समकालीन मानकर ई० पञ्चम शती में हुआ मानते हैं। इस मत में दो महान् भ्रम हैं, दो प्रसिद्ध कालिदासों को एक मानकर और गुप्तों का समय गलत गणना पर माना गया है, इसका स्पष्टीकरण द्वितीय कालिदास के प्रसङ्ग में किया है। एहोल शिलालेख में भी द्वितीय कालिदास का उल्लेख है—

स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।

'उपमा कालिदासस्य' में और बाणभट्ट के निम्न पद्य में भी द्वितीय कालिदास (रघुकार) अभिप्रेत है—निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सुक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मञ्जरीष्विव जायते॥
(हर्षचरित, प्रारम्भ)।

(2) कृष्णचरित—सम्पादक राजवैद्य कालिदासशास्त्री के मत में तीन ही नहीं अनेक कालिदास हुये हैं, यह एक उपाधि बन गई थी, जिस प्रकार 'व्यास' या 'शंकराचार्य' उपाधियाँ हैं, उसी प्रकार 'अस्माकं मते तु न केवलं त्रयोऽन्येऽपि कतिपये कालिदासनाम्ना प्रसिद्धप्रायाः कवयोऽभूवन्, येषां राक्षसनलोदयादीनिकाव्यानि सन्ति' (कृ० च० पृ० 57), एक प्रसिद्ध कालिदास भोजदेव (एकादशशती) के समय में हुआ, जिसकी संज्ञा 'परिमल पद्मगुप्त' थी, जिसने नवसाहसांकचरित लिखा।

मालविकाग्निमित्र—अनेक सङ्केतों से प्रतीत होता है कि मालविकाग्नि-मित्र कवि का प्रथम नाटक था। प्रथम, कालिदास ने इस नाटक को नवीन प्रयोग कहा है, द्वितीय इसमें ही अपने पूर्वकवियों का उल्लेख करते हुये लिखा है—'भाससौमिल्लकविपुत्रादीनां प्रबन्ध···किं कृतोऽयं बहुमानः' 'भास सौमिल्ल कविपुत्र आदि के नाटकों के रहते हुये, इसका (नाटक का) क्यों इतना बड़ा मान हो रहा है ? इस नाटक को अपनी प्रथम कृति होने के कारण ही कालि-दास ने लिखा—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते: मूढ़: परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥
(माल० 1·2)

"जो कुछ पुराना है वही सब कुछ अच्छा नहीं होता, नया काव्य सब निन्द्य नहीं होता। सज्जन या विद्वान् पुरुष परीक्षा के अनन्तर ही नवीन या पुरातन को ग्रहण करते हैं, परन्तु जो मूर्ख हैं वे दूसरों की बात पर विश्वास करके चलते हैं।" कालिदास की यह उक्ति अत्युत्साही पुराणपन्थी और कोरे नवीनपंथियों के लिये चेतावनी है।

क्योंकि प्रथम कालिदास शैव थे, अतः उन्होंने अपने प्रथम नाटक के प्रारम्भ (नान्दीपाठ) में शिववन्दना के अनन्तर प्रस्तावना में सूत्रधारद्वारा माल-विकाग्निमित्र के अभिनय की सूचना दी है। प्रथम अङ्क के प्रारम्भिक मिश्र-विष्कम्भक में शुंग राजा अग्निमित्र की महिषी धारिणी को दो दासियाँ बकु-लावलिका और कौमुदिका सूचित करती हैं कि महादेवी का भ्राता वीरसेन मालविका नाम की वनिता को उन्हें समर्पित करना चाहता है। एक दिन महाराज अग्निमित्र मालविका का चित्र देखकर उसकी ओर आकर्षित हो गये। राजपुत्री वसुलक्ष्मी बालचापल्य के कारण बता देती है कि यह मालविका है। नाट्याचार्य गणदास के द्वारा राजा को ज्ञात होता है कि मालविका आचार्य से संगीत और नृत्य सीख रही है।

प्रथम अङ्क में राजा के प्रधान नर्मसुहृत् विदूषक की अनुपस्थिति में अन्य कार्यवाहक सचिव (विदूषक) मालविका के दर्शन की युक्ति अग्निमित्र को बताता है। यहीं पर गणदास और हरदास नाम के दो नाट्याचार्यों के विवाद से पता चलता है कि गणदास की शिष्या मालविका है और हरदास की शिष्या इरावती है। दोनों की प्रतियोगिता के लिये भगवती कौशिकी (सन्यासिनी) प्राश्निक (निर्णायक) होती है, दोनों आचार्य अपनी शिष्याओं के माध्यम में

अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित चाहते हैं। द्वितीय अङ्क में शिष्याओं की परीक्षा नृत्य-प्रदर्शन द्वारा होती है और कौशिकी द्वारा मालविका श्रेष्ठतर नर्तकी घोषित कर दी जाती है। तृतीय अङ्क प्रवेशक से प्रारम्भ होता है, इसमें मधुकरिका और समाहितिका अग्निमित्र और मालविका के प्रेमसम्बन्ध की चर्चा करती हैं। प्रमदवन में राजा विदूषक और रानी इरावती के साथ प्रविष्ट होते हैं। वार्तालाप से पता चलता है कि मालविका अग्निमित्र से मिलने के प्रयत्न में है, परन्तु महिषी धारिणी की तीव्र प्रतिक्रिया के कारण वे मिल नहीं पाते।

चतुर्थ अङ्क के कथानक में सशंकित धारिणी ने मालविका और बकुलावलिका को गुहागृह में छिपाकर रखा और आदेश दिया कि जब तक मेरी नागमुद्रा न दिखाई जाय तब तक उन दोनों को मुक्त न किया जाय। इधर विदूषक अपने बुद्धिकौशल से महादेवी की नागमुद्रा, सांप के काटने के बहाने हथिया लेता है और उसे दिखाकर मालविका और उसकी सखी बकुलावलिका को मुक्त करवा देता है। तदनन्तर प्रमदवन के समुद्रगृह में मालविका और राजा के मिलन का आयोजन होता है। पञ्चम अङ्क में दो वैदर्भी सेविकायें रहस्योद्घाटन करती हैं कि मालविका विदर्भराजपुत्र माधवसेन की भगिनी है, माधवसेन के भ्रातृज यज्ञसेन ने उसे बन्दी कर लिया, अतः कौशिकी को मन्त्री सुमति और राजकुमारी मालविका के साथ यहाँ आना पड़ा। सिद्ध की भविष्यवाणी के अनुसार मालविका को दासीरूप में रहना था, अतः आप अब इसका पाणिग्रहण कीजिये। इसी अवसर पर अग्निमित्र के पास पिता पुष्यमित्र का पत्र आया कि अश्वमेध अश्व की रक्षा करते हुये कुमार वसुमित्र ने यवन सेना को सिन्धुदेश में परास्त कर दिया है और यज्ञ समाप्तप्राय है। तदनन्तर धारिणी की अनुमति से मालविका का पाणिग्रहण अग्निमित्र से होता है और भरतवाक्य के साथ नाटकान्त हो जाता है।

विक्रमोर्वशीय—यह कालिदास का प्रसिद्ध द्वितीय नाटक है। यह रूपक का त्रोटक भेद है।[1] इसमें भी पूर्वोक्त नाटक के समान पाँच अङ्क हैं। पुरूरवा

---

(1) अहमस्यां कालिदासग्रथितवस्तुना नवेन त्रोटकेनोपस्थास्ये (विक्रमोर्वशीय)

त्रोटक का लक्षण है—सप्ताष्टनवपञ्चाङ्कदिव्यमानुषसंश्रयम्।
त्रोटकं नाम तत्प्राहुः प्रत्यङ्कसविदूषकम्॥

विक्रमोर्वशीय में देव (इन्द्रादि) और मानुष (पुरूरवा आदि) पात्र हैं।

नाटक के 'विक्रम' अभिधान में शूद्रकविक्रम से कवि की तुल्यकालता आभासित होती है।

की कथा वैदिक एवं इतिहासपुराणों में प्रसिद्ध है, परन्तु कालिदास के नाटक की कथावस्तु इन ग्रन्थों की कथा से पर्याप्त भिन्न है।

नाटक के प्रथम अङ्क में कैलाश पर्वत विहारार्थ गई हुई अप्सरा उर्वशी का दैत्यासुर केशी अपहरण कर लेता है। अप्सराओं के करुणक्रन्दन सुनकर विक्रमशील राजा पुरूरवा ने उर्वशी की रक्षा की। इसी विक्रम (पराक्रम) के कारण नाटक का यह गर्भितार्थक नाम रखा गया। इसी प्रथम मिलन में राजापुरूरवा का उर्वशी से प्रेम हो गया। द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक में सूचना दी गई है कि राजा उर्वशी के प्रति आसक्त हो गया है। अङ्क के प्रारम्भ में पुरूरवा और विदूषक परस्पर उर्वशीविषयक वार्तालाप करते हैं जहाँ राजा उर्वशी के प्रति अपने अनुराग को प्रदर्शित करता है। उसी समय अदृश्य उर्वशी एक अन्य अप्सरा सखीसहित वहीं आती है और अपना प्रेमपत्र राजा की ओर फेंक देती है। यह भोजपत्र महिषी औशीनरी के हाथ पड़ जाता है, पत्र देखकर महारानी कुपित होती है, पुरूरवा रानी को मनाने का प्रयत्न करता है।

तृतीय अङ्क में वर्णित है कि नाट्यशास्त्र प्रणेता भरतमुनि ने उर्वशी को मर्त्यलोकनिवास का शाप दिया, क्योंकि उसने लक्ष्मी का अभिनय समुचित रूप से नहीं किया, उसने कहा था कि 'मैं पुरुषोत्तम (विष्णु) से प्रेम करती हूँ। परन्तु इन्द्र की कृपा से शाप में यह संशोधन हुआ कि पुत्रोत्पत्तिपर्यन्त ही वह मर्त्यलोक में रहेगी। चतुर्थ अङ्क में उर्वशी 'कुमारकार्त्तिकेयवन' में प्रविष्ट होते ही शिवशाप से लतारूप में परिणित हो गई। तदनन्तर अङ्क में राजापुरूरवा का प्रलापयुक्त विलाप है।[1] परन्तु राजापुरूरवा को संगमनीय मणि की प्राप्ति द्वारा उर्वशी पुनः लता से मानुषी बन जाती है।

'पञ्चम अङ्क में पुरूरवा उर्वशी को लेकर अपनी राजधानी प्रतिष्ठान लौटता है, यहीं एक गृद्ध मणि को लेकर उड़ जाता है, तत्काल ही एक बाण पर 'पुरूरवापुत्र' 'आयुः' का नाम लिखा हुआ था[2], इतने में ही एक तापसी 'आयुः,' को राजा के सम्मुख प्रस्तुत करती है क्योंकि उर्वशी ने पुत्र को च्यवना-

(1) विलाप का निर्देशन द्रष्टव्य है—

नीलकण्ठ ममोत्कण्ठा वनेऽस्मिन् वनिता त्वया।
दीर्घापाङ्गा सितापाङ्ग दृष्टा दृष्टिक्षमा भवेत्॥ (4।21)

(2) उर्वशीसम्भवस्यायमैलसूनोर्धनुष्मतः।
कुमारस्यायुषो बाणः संहर्ता द्विपदायुषाम्॥ (5।7)

श्रम में छिपाकर रखा था, जिससे कि पुत्रदर्शन होते ही राजा का उर्वशी से वियोग न हो। अब वियोग की चिन्ता से दोनों ही खिन्न होते हैं। इतने में ही नारद इन्द्रलोक से संदेश लाते हैं कि देवानुसार संग्राम में पुरूरवा के सहाय्य की देवों को आवश्यकता है।

ऋग्वेद, शतपथब्राह्मण, वायुपुराण, भागवतपुराण एवं हरिवंशपुराण की पुरूरवा-उर्वशी कथा और विक्रमोर्वशीय के कथानक में बहुत स्वल्प साम्य है। ऋग्वेद में केवल पुरूरवा उर्वशी संवाद मिलता है और उर्वशी केवल 4 वर्ष मर्त्यलोक में रही यह संकेत है। शतपथब्राह्मण, हरिवंश में गन्धर्वगण उर्वशी को पुरूरवा को समर्पित करते हैं। इसमें उरण (मेष) द्वयादिकथा का विस्तार है। केशी दैत्यादि की कोई चर्चा नहीं है। कालिदास ने कथा की शिल्परचना नाटक की दृष्टि से की है।

(अभिज्ञानशाकुन्तल)

नामकरण—शाकुन्तल का अर्थ है शकुन्तला का पुत्र भरत और अभिज्ञान का अर्थ है उसकी पहिचान। भरत की पहिचान के आधार पर यह गर्भितार्थक नाम इस नाटक का रखा गया। यह नाटक संस्कृत के समस्त काव्यों और नाटकों में श्रेष्ठतम माना जाता है[1]—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥

महाकवि कालिदास इस नाटक की रचना करके विश्वविश्रुत एवं विश्व-वन्द्य हुये और यह नाटक भी विश्वविख्यात हुआ। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक कवि गेटे की प्रशंसा उल्लेखनीय है[1]—"मेरे मित्र! यदि तुम तरुण वसन्त की पुष्पमञ्जरी की सुगन्ध और ग्रीष्मऋतु के मधुर फलों का परिपाक एक साथ देखना चाहते हो या उस वस्तु के दर्शन करना चाहते हो, जिससे आत्मा सम्मोहित और प्रसन्न हो जाती है अथवा तुम स्वर्ग और

---

(1) कालिदास और शूद्रक विक्रम के प्रायः एक शती पश्चात् होने वाले सम्राट् कवि समुद्रगुप्त के अनुसार भी कालिदास की ख्याति का मूल कारण यही नाटक था।

श्रीकालिदास इति योऽप्रतिमप्रभावः।
शाकुन्तलेन स कविर्नाटकेनाप्तवान् यशः। (कृ० च० 15,16)

पृथिवी की झलक एक ही स्थान पर देखना चाहते हो तो अभिज्ञान शाकुन्तल का रस पान करो।" इस पद्य का आंग्लभाषानुवाद द्रष्टव्य है—

> In case you desire to rejoice in blossoms of early year, the fruits of the age advanced,
> In case you want to have something that earns something that is enchanting, In case you want to call both the heaven and earth by a common name,
> I refer you to the Sakuntala

अतः कालिदास प्रथम, की यशःकीर्ति का प्रधान कारण अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक है, इसमें कोई संशय नहीं।

अब अभिज्ञान शाकुन्तल का कथानक, काव्यकला, नाट्यकला, रसयोजनादि समीक्षात्मक रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

कथावस्तु—भारतीय इतिहास में दुःषन्त (दुष्यन्त), शकुन्तला और भरत अत्यन्त प्रसिद्ध व्यक्ति रहे हैं। शतपथब्राह्मण (13।5।4।11-13) में शकुन्तला को नाडपिती अप्सरा कहा है। प्राग्महाभारतकाल में कोई बृहद् शाकुन्तलोपाख्यान सम्बन्धी काव्यमय इतिहास था, जिसका संक्षेप महाभारत आदिपर्व में मिलता है। महाभारत का शाकुन्तलोपाख्यान उसी प्रकार प्राचीन आख्यान का सार है जिसप्रकार वनपर्वान्तर्गत रामोपाख्यान वाल्मीकीयरामायण का। महाभारत आदिपर्व में शाकुन्तलोपाख्यान का सार इस प्रकार है—पौरव, राजा दुष्यन्त आखेट करते हुये काश्यप कण्व ऋषि के आश्रम मालिनीतट पर पहुँचे, उनके साथ मन्त्री, पुरोहित, सारथि और कुछ सेवक थे। राजा दुष्यन्त सबको आश्रम के बाहर छोड़कर अन्दर गये तो पता चला कि कण्व नहीं हैं, वहाँ शकुन्तला ने उनका स्वागत-सत्कार किया, तब राजा ने शकुन्तला का परिचय पूछा तो उसने अपनी जन्मकथा सुना दी कि मैं विश्वामित्र से मेनका अप्सरा की कन्या हूँ। राजा ने प्रस्ताव किया कि तुम मेरी महिषी बन जाओ, शकुन्तला ने प्रतीक्षा करने को कहा तो दुष्यन्त ने कहा कि तुम स्वयं अपने शरीर की स्वामिनी हो, गान्धर्वविवाह करके मेरी पत्नी बन जाओ। शकुन्तला ने शर्त रखी कि मेरे से जो पुत्र उत्पन्न हो वह ही तुम्हारे पश्चात् राज्य का अधिकारी हो, राजा ने शकुन्तला की शर्त स्वीकार कर ली। गान्धर्व विवाह करने के पश्चात् दुष्यन्त अपनी राजधानी लौट गया।

इधर जब कण्व आश्रम आये हो तो उन्होंने शकुन्तला के बिना बताये ही अपने दिव्यज्ञान से सब कुछ जान लिया, वे यह जानकर प्रसन्न हुये और

शकुन्तला को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा पुत्र सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् होगा। तीन वर्ष पश्चात् शकुन्तला से भरत का जन्म हुआ, वह बालक बाल्यावस्था में सिंह, व्याघ्र, वराह, महिष और गजों से खेलता था। उसका नाम सर्वदमन रखा गया। जब वह युवा होने लगा तो कण्वमुनि ने उसे शिष्यों और शकुन्तला के साथ दुष्यन्त के पास भेजा। शिष्य उसको महल के बाहर पहुँचाकर लौट गये, तब शकुन्तला राजसभा में जाकर राजा से बोली—'हे राजन्! यह आपका पुत्र है, इसको युवराज पद पर अभिषिक्त करो। राजा सब कुछ स्मरण रखते हुये भी लोकलज्जावश बोला—'हे तापसि! मेरा तुम्हारे साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, तुम जैसा चाहो सो करो।' बहुत वादविवाद के पश्चात् शकुन्तला वहाँ से चलने को जैसे ही उद्यत हुई तो आकाशवाणी हुई—'दुष्यन्त! शकुन्तला सत्य कहती है, यह तुम्हारा पुत्र है।' तदनन्तर राजा ने शकुन्तला और भरत को ग्रहण कर लिया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाभारत का शाकुन्तलोपाख्यान उतना सरस नहीं है जितना कि नाटक, परन्तु उसका मूल वही है। काव्य या नाटक में कवि द्वारा कुछ कल्पनायें करना स्वाभाविक है, अतः तदनुरूप कालिदास ने नाटक कथा में जो परिवर्तन या कल्पनायें की हैं, वे मुख्यतः ये हैं—:

(1) शकुन्तला की सखियों—अनसूया और प्रियंवदा की कल्पना अथवा ये ऐतिहासिक पात्र भी हो सकते हैं, क्योंकि कालिदास को रामायण सदृश 'बृहत्-शाकुन्तलोपाख्यानकाव्य' प्राप्य हो सकता है, जिसमें पात्रों का पूर्ण विवरण हो, महाभारत की कथा उसी बृहदुपाख्यान का संक्षेप है, अतः संक्षिप्त कथा में पात्रों की काटछाँट भी हो सकती है।

(2) तीर्थयात्रा के बहाने कालिदास ने कण्व की दीर्घानुपस्थिति दिखाई है, सम्भव है कि तीर्थयात्रा और फलाहरण दोनों ही तथ्यों में सत्यांश हो।

(3) शकुन्तला द्वारा अपने पुत्र को राजा बनाने की शर्त नाटक में नहीं है।

(4) दुष्यन्त द्वारा अभिज्ञानार्थ शकुन्तला को मुद्रिका (अंगुलीयक) देना विशिष्ट कल्पना या ऐतिहासिक घटना हो सकती है, महाभारत में यह संकेत नहीं है।

(5) दुर्वासा, शाप का उल्लेख महाभारत में नहीं, यह निश्चय ही कवि-कल्पना है।

(6) मुद्रिका सम्बन्धी समस्त कल्पना महाभारत में नहीं है।

(7) नाटक में शकुन्तला को अप्सरायें ले जाती हैं, परन्तु नाटक में वह कण्वाश्रम में लौट जाती है।

(8) स्वर्ग में दुष्यन्त द्वारा देवों की सहायता और कण्वाश्रम में शकुन्तला और भरत से मिलना—ये महाभारत कथा से पृथक् वस्तुयें हैं।

नाटक की कथावस्तु—प्रथम अङ्क में पौरवनरेश दुष्यन्त मृगयार्थ कण्वाश्रम में रथ पर सारथि के साथ-साथ जाते हैं, वे महर्षि कण्व को नमस्कार करने के लिये रथ से उतरकर आश्रम में प्रवेश करते हैं। वहाँ मुनि तो अनुपस्थित थे, परन्तु युवा राजा ने कन्यात्रयी को पादपों का जलसिंचन करते हुये देखा। एक भ्रमर शकुन्तला के चारों ओर मँडराने लगा, उससे पीछा छुड़ाने के लिये वह चिल्लाई। उसकी पुकार सुनकर राजा, लताओं में छिपा हुआ, भ्रमर को दूर भगा देता है और शकुन्तला के रूपरस का पान करता हुआ अनेक तर्कणायें करता है। तदनन्तर उसको विश्वास हो जाता है कि यह 'शकुन्तला' क्षत्रिय कन्या' है और मुझसे प्रेम भी करती है—

'असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा' (1।19)

'वाचं न मिश्रयति यद्यपि मद्वचोभिः
कर्णं ददात्यवहिता मयि भाषमाणे। (1।27)

द्वितीय अंक में राजा और विदूषक में वार्तालाप होता है, जिसमें वह विदूषक से अपने प्रेम की बातें बता देता है। कण्वाश्रम के मुनिगण राक्षसों से बचने के लिये राजा से प्रार्थना करते हैं, और राजा ने उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया, इसी मध्य राजा को देवी वसुमती का सन्देश मिलता है कि वह व्रतपारण के अवसर पर राजधानी अवश्य पहुंचे। ऐसी परिस्थिति में राजा की स्थिति त्रिशंकु के समान हो गई, वह द्विविधा में पड़ गया। राजा को शंका होती है कि कहीं माधव्य विदूषक देवी से मेरी शकुन्तलाविषयक बातें न कह दे, अतः वह कहता है कि 'हे सखे ! मैंने यह परिहास में कहा है, इसे सत्य मत समझना।'

तृतीय अंक में अनसूया और प्रियंवदा शकुन्तला के स्वास्थ्य की चिन्ता करती हैं। शकुन्तला राजा को पत्र लिखना चाहती है, राजा छिपकर सबकुछ देखता है और ठीक अवसर पर प्रकट होकर शकुन्तला से बातचीत करता है। गौतमी तपस्विनी के आगमन से वह अतृप्त अधरपान से ही पूर्व शकुन्तला से विमुक्त हो जाता है। चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में राजा राजधानी लौट जाता है। इसी मध्य चिन्तामग्न शकुन्तला के सम्मुख दुर्वासा ऋषि प्रकट होते हैं,

चिन्ता के कारण शकुन्तला उनकी ओर ध्यान नहीं देती, अतः असत्कृत दुर्वासा शकुन्तला को शाप देते हैं—

विचिन्तयन्ती यमनन्यमनसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव ॥

"तुम जिसको अनन्यमन से चिन्तन करने के कारण, मुझ उपस्थित तपोधन को नहीं देख रही हो, वह पुरुष तुम्हें याद दिलाने पर भी भूल जायेगा। वह प्रमत्त के समान पूर्ववृत्तान्त को विस्मृत कर देगा।" शाप सुनकर प्रियंवदा ऋषि को प्रसन्न करने की चेष्टा करती है, तब प्रसन्न दुर्वासा शाप में संशोधन करते हैं कि राजा 'अभिज्ञान' (अंगुलीयक) द्वारा शकुन्तला को पहिचान लेगा। तीर्थयात्रागत कण्व लौटकर शकुन्तला को दुष्यन्त के पास शिष्य शारङ्गरव, शारद्वत और गौतमी के साथ भेजते हैं। अंक यहीं का दृश्य अत्यन्त हृदय-विदारक और करुणाजनक है, इसका चित्र आगे विशेषरूप से उपस्थित किया जायेगा।

पञ्चम अंक से शकुन्तला और दुष्यन्त का विवाह वर्णित है, जहाँ राजा शकुन्तला के बार-बार स्मरण दिलाने पर भी गान्धर्वविवाह की बात भूल जाता है, राजा के द्वारा अस्वीकृत शकुन्तला को दैवीशक्ति ऊपर आकाश में ले जाती है।

षष्ठ अंक में दाश (धीवर) के पास अंगूठी मिलने, उसे राजभटों द्वारा पकड़ने, राजा द्वारा मुद्रिका पहिचानने, शकुन्तला विषयक स्मृति, तज्जन्य विरह में दुःखी होने आदि का वृतान्त है। इधर इन्द्र का सारथि मातलि माधव्य को छिपकर पीटता है, उसके रोने की आवाज सुनकर राजा आकर देखता है। मातलि राजा से कालनेमि के इन्द्र के ऊपर आक्रमण की सूचना देकर प्रार्थना करता है कि आप इन्द्र की सहायता करें। राजा मातलि के साथ इन्द्रलोक जाता है।

सप्तम और अन्तिम अंक में दानवविजय के अनन्तर दुष्यन्त के स्वर्ग से लौटने का दृश्य है। गन्धमादन पर्वत पर महर्षि मारीच (कश्यप) का आश्रम था, ऋषि के दर्शनार्थ राजा वहाँ जाता है तो एक बालक को सिंह के साथ खेलते हुये देखता है, उसी समय वीर बालक के हाथ में बँधी अपराजिता औषधि गिर जाती है, राजा उसे उठाता है, यह देखकर मुनि कन्यायें अचम्भे में पड़ जाती हैं, क्योंकि उस औषधि को माता-पिता के अतिरिक्त कोई स्पर्श नहीं कर सकता, अन्यथा वह गण्डा नाग बनकर उठाने वाले को ही डस लेता। इसी अवसर पर कुचैलधारिणी शकुन्तला आती है और करुण वार्तालाप के

अनन्तर दोनों का पुनर्मिलन होता है और मारीच ऋषि तथा भरतवाक्य के साथ नाटक का अन्त होता है—आखण्डलसमो भर्ता जयन्तप्रतिमः सुतः।

आशीरन्या न ते योग्या पौलोमीसदृशी भव। (7।29)

"इन्द्र तुल्य तुम्हारा पति हो और जयन्तप्रतिम तुम्हारा पुत्र (भरत) हो। इसके अतिरिक्त अन्य कोई आशीर्वाद नहीं कि तुम इन्द्राणी शची के समान हो।"

भरत वाक्य है—

प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः।
सरस्वती श्रुतिमहतां महीयताम्॥
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः।
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः॥ (7।36)

"शासक (राजा) प्रजाहित में लग जायें, वेदवेत्ताओं की वाणी पूजित हो और स्वयम्भू, शक्तिरूप में परिणित होकर भगवान् शंकर मेरे पूर्व जन्म का नाश करें (मुझे मोक्ष प्रदान करे)।"

कालिदास के तीनों नाटकों में अभिज्ञान शाकुन्तल सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वप्रिय है। इसमें नाट्यकला और काव्यकला का सर्वोत्तम परिपाक (चरमोत्कर्ष) मिलता है, उसमें भी चतुर्थ अंक की विशेष महिमा गाई जाती है, अतः आगे संक्षेप में इस नाटक की काव्यकला नाट्यकला की समीक्षा करते हैं, विशेषतः चतुर्थ अंक की श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुये।

नाट्यकाव्यसमीक्षा और चतुर्थ अंक की श्रेष्ठता—समुद्रगुप्त ने श्री कालिदास को आप्तवर्ण अर्थात् ऋषितुल्य कवि कहा है, वह सार्थक है। महाकवि कालिदास वेदों, वेदाङ्गों, विविध दर्शनों, इतिहासपुराणों, साहित्यशास्त्र एवं नाट्यशास्त्रादि के पारंगत विद्वान् थे। केवल अभिज्ञानशाकुन्तलनाटक से ही उनके एतादृश ज्ञान की पुष्टि होती है। महाकवि वेदवाक्छान्दसी मानुषी (लौकिक) संस्कृत एवं विविध प्राकृतों के धुरन्धर विद्वान् थे। उनके वैदिक दैवतविज्ञान और छान्दसी भाषाज्ञान का आभास निम्न श्लोक से होता है—

अमी वेदिं परितः कलृप्तधिष्ण्याः समिद्वन्तः प्रान्तसंस्तीर्णदर्भाः।
अपघ्नन्तो दुरितं हव्यगन्धैर्वैतानास्त्वां वह्नयः पावयन्तु॥-(4।8)

यज्ञ की त्रिविध अग्नियाँ (आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि), जिनके धिष्ण्या (स्थान) वेदी के चारों ओर बनाये गये हैं, जो काष्ठाग्नियुक्त हैं, जिनके प्रान्तों पर कुशा बिछाये हुये हैं, वे अपनी हव्यगन्धों से आपके पाप नष्ट करें।" इस पद से कवि का वैदिकज्ञान भी प्रकट होता है कि हव्यगन्धों से जगत् में

पवित्रता फैलती है। नान्दी पाठ के श्लोक (या स्रष्टुः सृष्टिराद्या···वस्ताभिरष्टाभिरीशः) में कवि के वैदिक दर्शन, शैवदर्शन और अष्टप्रकृतिमय सांख्यदर्शन के दर्शन होते हैं। श्री कालिदास शास्त्रों के विशेषज्ञाता होने के साथ मनोविज्ञान और मानसिक भावों के विशेष पण्डित और सहृदय मानव थे, यह तथ्य नाटक के पदे-पदे पर प्रकट होता है।

कवि के प्राकृत और संस्कृत भाषाज्ञान के उदाहरण देने की आवश्यकता ही नहीं, कवि ने सर्वत्र नाट्यशास्त्र विधानानुसार प्रत्येक पात्र से भाषा का प्रयोग करवाया है, स्त्री पात्र सदा प्राकृत बोलते हैं और राजा, ऋषि आदि साहित्यिक संस्कृत, ऋषि से तो कवि ने ऋक्छान्दसी भाषा का प्रयोग करवाया है।[1]

रसयोजना—अभिज्ञान मुख्यतः श्रृङ्गाररसभरित सरस नाटक है। यह पूर्णत अभिनय सरस नाटक है जैसाकि समुद्रगुप्त ने कहा है।[2] श्रृङ्गार अङ्गी रस होते हुये भी करुणरस का (विशेषतः चतुर्थ अंक में) पूर्ण परिपाक है। वात्सल्यरस और वीररस का भी कवि ने विशेष प्रदर्शन किया है। रसिक भ्रमर के व्याज से कवि ने शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रणय का मनोहारि चित्र खींचा है—

चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं
रहस्याख्यामीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकगोचरः।
करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती॥ (1।20)

"हे मधुकर! तुम कम्पनशीला शकुन्तला के चञ्चल नेत्रों को स्पर्श करते हो, उसके कानों में गुप्तवार्ता कर रहे हो, जो कर्ण अत्यन्त मृदुल हैं, वह तुमको हाथों से हटाती है, परन्तु तुम उसके रतिसर्वस्व अधर का पान करते हो, तुम धन्य हो, हम तो केवल तथ्यान्वेषण में ही मारे गये।" यह पद्य कवि की व्यञ्जनावृत्ति का अपूर्व उदाहरण है भ्रमर के बहाने कवि ने दुष्यन्त की कामी हृदय के व्यञ्जित किया है कि वह शकुन्तला के साथ किस प्रकार रतिलीला करना चाहता है। शकुन्तला के लोभनीय लावण्य का कवि ने मूर्तिमान् चित्रण किया है—अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्॥ (1।18)

---

(1) काश्यपः (ऋक्छन्दसाऽऽशास्ते) अमी वेदिं परितः·· पावयन्तु॥ (4।8)
(2) दुष्यन्तभूपतिकथां प्रणयप्रतिष्ठां रम्याभिनेयभरितां सरसां चकार।
(कृ० च. 15)

शकुन्तला ने यौवन के कवचतुल्य अपने यौवन को संनद्ध (पहन) कर रखा है, पुष्पपराग तुल्य चिकने अधर, कोमल विटपनतुल्य बाहु, पुष्पसदृश प्रिय यौवन अंगों में लगा हुआ है। ऐसे कमनीय यौवन रूप को ऋषि कण्व तपोवनवास द्वारा काटना चाहते हैं—

ध्रुवं स नीलोत्पलधारया समित्लतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति। (1।16)

दुष्यन्त की दृष्टि में काश्यपकण्व द्वारा वन में रखना असाधुदर्शिता है, यह रूप तो राजप्रासादों में रहने योग्य है, यह तात्पर्य है। शकुन्तला वल्कल वस्त्र धारण से भी अधिक मनोज्ञा (सुन्दर) लग रही थी—

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी।
किमिव ही मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥ (1।17)

सुन्दररूपों के लिये अलंकारों की क्या आवश्यता है ?

चतुर्थ अंक में दुर्वासा शाप से करुण दृश्य का प्रादुर्भाव होता है, जब कि ऋषि शाप को सुनकर शकुन्तला की सखीद्वयी अनसूया और प्रियंवदा इस शाप को सुनकर विषण्ण (दुःखी) हो जाती हैं—

विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन्
कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव॥ (4।1)

कवि का प्रकृतिवर्णन नाटक की एक अतुलनीय विशेषता है।

चतुर्थ अंक का सर्वश्रेष्ठ काव्य है प्रकृतिवर्णन और शोकवर्णन। इसके निदर्शन अवलोकनीय हैं—

कर्कन्धूनामुपरि तुहिनं रञ्जयत्यग्रसंन्ध्या।
दार्भं मुञ्चत्युटजपटलं वीतनिद्रो मयूरः॥
वेदिप्रान्तात्खुराविलिखितादुत्थितश्चैष सद्यः।
पश्चादुच्चैर्भवति हरिणो गात्रमायच्छमानः॥ (4।2)

"प्रातःकालीन सन्ध्या के समय ककन्धू (फलों) को ओस रंग रही है, सूर्य निकलने से पूर्व निद्रा छोड़कर मोर कुशानिर्मित पटल (छत) को त्याग रहा है। वेदि के निकट खुरों से कुरेदी भूमि से हिरन खड़ा होकर अंगड़ाई ले रहा है।" इस वर्णन में वृक्ष, पशु, पक्षी, तपोवनादि का रमणीय चित्र प्रदर्शित किया गया है।

दुष्यन्त के पास जाने से पूर्व शकुन्तला की सखियाँ उसकी प्रिय मण्डना (श्रृङ्गार) करती हैं, वह प्रसाधन और किसी से नहीं वन्य पुष्पों और औष-

धियों से किया गया, उस समय सखियों और शकुन्तला का रोदन हृदय विदारक होता है।[1] तदनन्तर कण्व की मानसी सिद्धि से शकुन्तला के लिये अनेकविध मांगलिक प्रसाधन प्रकट हुये—

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा मांगल्यमाविष्कृतम् ।
निष्ठ्युतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै ।
र्दत्तान्याभरणनि नः किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।। (4।5)

स्वपोषिता शकुन्तला के वियोग में काश्यप कण्व ऋषि का निम्न श्लोक वर्णित परिवेदन (दुःख) संस्कृतसाहित्य और अभिज्ञानशाकुन्तल की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है— यांस्त्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम् ।।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः ।
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नः ।। (4।6)

"आज शकुन्तला जायेगी, यह सोचकर हृदय को उत्कण्ठा ने झकझोर दिया हैं। मेरे कण्ठ में थूक जम जाने से वह कलुष हो गया है और दृष्टि जम गई है, मुझ वनवासी को कन्या त्याग में इतनी विकलता है तो गृहस्थों को कन्या के अलग होने का कितना दुःख होता होगा :" यहाँ पर कण्व का आशीर्वाद उपमा अलंकार का एक श्रेष्ठ उदाहरण है—

ययातेरिव शर्मिष्ठा भर्तुर्बहुमता भव ।
सुतं त्वमपि सम्राजं सेव पुरुमवाप्नुहि ।। (4।7)

ययाति द्वारा शर्मिष्ठा के समान तुम सम्मानित हो और उसी के समान "सम्राट् पुत्र को प्राप्त करो, जैसे उसने पुरु को प्राप्त किया।" इस उपमा में एक ऐतिहासिक साम्य निहित है। जिस प्रकार ययाति ने छिपकर वार्षपर्वणी शर्मिष्ठा के साथ गान्धर्वविवाह किया और उसका कनिष्ठ पुत्र राज्याधिकारी हुआ, उसी प्रकार शकुन्तला और उसका पुत्र भरत थे।

शकुन्तला के गमन से तपोवन के न केवल पुरुष या पशु-पक्षी बल्कि लता-पत्र भी कातर हो गये…'न केवलं न तपोवनविरहकातरा सख्येव, त्वयोपस्थितवियोगस्य तपोवनस्यापि तावत् समवस्थां प्रेक्षस्व। शकुन्तला के वियोग में मृगों ने दर्भकवल उगल दिया, मयूरों ने नृत्य छोड़ दिया, पीले पत्तों वाली लतायें पत्ते गिराने से बहाने मानों आँसू गिरा रही है। पुत्रकृतक

(1) 'आभरणार्हरूपमाश्रमसुलभप्रसाधनैः विप्रकार्यते।' (च० अ०)

मृगशावक शकुन्तला का मार्ग नहीं छोड़ता, जिसको उसने पाला-पोसा था और पैर के घाव में तेल से उपचार किया था।

सप्तम अंक में वात्सल्यरस का उत्तम निदर्शन है, बालक भरत का स्पर्श करके दुष्यन्त अत्यन्त सुख का अनुभव करता है—

अनेन कस्यापि कुलांकुरेण स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममेदम्। (1।20)

दुष्यन्त, शकुन्तला और भरत का त्रितयसमागम—श्रद्धा, वित्त और विधि का प्रादुर्भाव करता है—

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम्॥ (7।30)

(राजनीतिज्ञ नाटककार विशाखदत्त)

विशाखदत्त—चन्द्रगुप्त विक्रम के समकालीन—विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य की विश्रुतकृति है। संस्कृतसाहित्यान्वेषण की प्रारंभिक अवस्था में पाश्चात्य एवं तदनुयायी भारतीय इतिहास लेखकों ने अन्य साहित्यकारों के समान विशाखदत्त के समय निर्धारणादि में गड़बड़ी और भ्रष्ट कल्पनायें कीं। जर्मन संस्कृतज्ञ याकोबी ने एक ज्योतिषविषयक कल्पना करके मुद्राराक्षस और उसके रचयिता विशाखदत्त का समय 2 दिसम्बर 860 ई० में माना, क्योंकि मुद्राराक्षस की प्रस्तावना में एक चन्द्र-ग्रहण का उल्लेख है।[1] यह ग्रहण एक ऐतिहासिक घटना भी हो सकती है—मौर्यकाल या गुप्तकाल में अथवा केवल कविकल्पना (श्लेषालंकार) भी हो सकती है जिसका भाव यह है कि मलयकेतु से चन्द्रगुप्तमौर्य की रक्षा बुधरूपी (विद्वान) चाणक्य कर रहा है।

कीथादि दूसरे विद्वान् नाटक को नौवीं शती से पूर्व की रचना मानते हैं। भरतवाक्य के 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्त' के स्थान पर कुछ पाठों में 'दन्तिवर्मा या रन्तिवर्मा' लिखा मिलता है, इस आधार पर पल्लवनृपति दन्तिवर्मा (779-830 ई०) के समकालीन इस नाटक के कर्त्ता विशाखदत्त को मानते हैं। कुछ लोग स्थाणेश्वर प्रभाकरवर्द्धन के सहायक कान्यकुब्जेश्वर मौखरिनरेश अवन्तिवर्मा का उल्लेख मानकर मुद्राराक्षस का समय 583 ई० में मानते

(1) क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रमसं पूर्णमण्डलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः॥ (मु० रा० 1।7)

हैं। विण्टरमित्स का भी यही मत है।[1] भरतवाक्य[2] में निश्चितरूप से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (साहसांक) का उल्लेख मिलता है, अतः सर्वप्रथम साहसांक का कालनिर्धारण करते हैं; जो समय चन्द्रगुप्त साहसांक का था, वही समय विशाखदत्त था, क्योंकि चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध हूणविजय से न होकर शकविजय से था और भारतवर्ष में शकसाम्राज्य का अन्त करके शक सम्वत् प्रवर्तक भी वही चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य था। इस सम्बन्ध में पण्डित भगवद्दत्त ने गुप्तकाल के प्रारम्भ और चन्द्रगुप्त साहसांक के विषय में प्रभूत ऐतिह्य सामग्री एकत्रित कर दी है, उसको यहां साररूप में प्रस्तुत करते हैं।[3]

इस सम्बन्ध में मूलाधारभूत प्रमाण प्रसिद्ध मुस्लिमयात्री और इतिहासकार अलबेरूनी का है—"शककाल विक्रम सम्वत् के 135 वर्ष पश्चात् आरम्भ हुआ। यह संवत् शकनाश से प्रारम्भ हुआ। "अधव ग्रन्थ में महादेव लिखता है कि संवत् वाले विक्रमादित्य का नाम चन्द्रबीज था" (अलबेरूनी का भारत, अ०49)। अतः शककाल या शकान्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में हुआ। भारत में शक सामाज्य का अन्तिम विजेता और उच्छेता

---

(1) हिस्टोरिकल ड्रामाज इन सं० लि० क्र० आ काम० वा; पृ० 360।

(2) म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः॥ (7।19)

(3) भारतवर्ष का वृहद् इतिहास, भाग 1 पृ० 171-176 तथा द्वितीय भाग, पृ० 335-350।

इतनी प्रभूत प्रामाणिक सामग्री संकलित करके भी पं० भगवद्दत्त उचित निर्णय पर नहीं पहुँच सके बल्कि उनका झुकाव चन्द्रगुप्त साहसांक को विक्रम सम्वत् प्रवर्तक विक्रम (57 ई० पू०) मानने का था—'भारतीय इतिहास में गुप्तों का वंश विक्रमों का वंश है'"अतः इस प्रसिद्ध विक्रम सम्वत् का सम्बन्ध इन्हीं विक्रमों (गुप्तों) से है। (भा० बृ० इ० भाग० पृ० 171) तथा 'हम जानते हैं कि विक्रम साहसांक चन्द्रगुप्त ही प्रसिद्ध विक्रम था, अतः सुबन्धु आदि का काल विक्रम-संवत् वाले प्रसिद्ध विक्रम का ही काल था'। (भा० बृ० इ० द्वि० भाग, पृ० 338)।
ऐसी ही अस्पष्टता और त्रुटि पण्डित जी ने शूद्रक विक्रम के सम्बन्ध में की है जबकि मृच्छकटिकर्त्ता शूद्रक कालिदास का आश्रयदाता था।

यही गुप्त सम्राट् था, अतः वही शकसम्वत्सर प्रवर्तक था, इसकी पुष्टि एक नहीं अनेक प्रमाणों से होती है, कुछ प्रमाण निदर्शनार्थ द्रष्टव्य है—विशाखदत्त ने ही अपने द्वितीय नाटक देवीचन्द्रगुप्त में लिखा है—

(1) यथा देवी चन्द्रगुप्ते शकपतिना परकृच्छ्रमापादितं रामगुप्तस्कन्धावारमनुजिघृक्षुरुपायन्तरगोचरे प्रतीकारे निशिवेतालसाधनमध्यवसन् कुमारश्चन्द्रगुप्त आत्रेयेण विदूषकेणोक्तः ।' (अभिनवगुप्त, अभिनवभारती)।

(2) अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्तःशकपतिमशातयत् (हर्षचरित, सर्ग 22) ।

(3) स्त्रीवेषनिह्नुतश्चन्द्रगुप्तः शत्रोः स्कन्धावारमरिपुरं शकपतिवधायागमत् (शृङ्गारप्रकाश, भोजदेव) ।

(4) हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो लक्षं कोटिसलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वयः ।" (एपिग्राफिक इण्डिया, भाग 18, पृ० 248) इस प्रकार के अनेक उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों और शिलालेखादि पर मिलते हैं। अतः इस तथ्य का अपलाप नहीं किया जा सकता कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकपति का वध किया, भ्राता, रामगुप्त का वध किया, भ्रातृपत्नी ध्रुवदेवी से विवाह किया और प्रसिद्ध शकसंवत्—शकविजय के उपलक्ष में चलाया जैसी कि चिरन्तत भारतीय परम्परा रही है, महायुद्ध या क्रान्ति के पश्चात् विजय के उपलक्ष में एक नवीन सम्वत् चलाया जाता था। (वृत्रवध) के पश्चात् महेन्द्र (इन्द्र) ने कृत (युग) सम्वत् चलाया, परशुराम, दाशरथि राम, भरत दौष्यन्ति, सगर, युधिष्ठिर, शूद्रक, आदि ने ऐसा ही किया। चन्द्रगुप्त साहसांक अन्तिम शकविजेता था, अतः उसने विजय के अनन्तर शक सम्वत् चलाया इसमें कोई सन्देह नहीं, ज्योतिष ग्रन्थों से इसकी पूर्ण पुष्टि होती है—"शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते, यस्मिन्काले विक्रमादित्य देवेन व्यापादिताः स कालो लोके शक इति प्रसिद्धः। (बृहत्संहिता, टीका तथा खण्डखाद्यक (टीक)। अलबेरूनी के प्रमाण से लिखा जा चुका है कि यह विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त था और 135 ई० में हुआ। इतने प्रमाणों के रहते हुये इसे सत्य न मानना या तो अज्ञान की पराकाष्ठा, या जान बूझकर उपेक्षा या किसी घोर षड्यन्त्र का परिणाम है।

अतः चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का राज्यारोहणकाल 135 विक्रम संवत् था। इसी के समकालीन मुद्राराक्षस के रचयिता विशाखदत्त हुये। ये सम्भवतः गुप्तसम्राट् के सामन्त थे, जैसा कि नाटक के अन्तरङ्ग प्रमाण से सिद्ध होता

है कि कवि के पिता महाराज पृथु और पितामह बटेश्वरदत्त सामन्त थे।[1] अतः मुद्राराक्षस के भरतवाक्य का 'पार्थिव चन्द्रगुप्त, उपर्युक्त गुप्तसम्राट्, शकसंवत् प्रवर्तक साहसांक विक्रमादित्य था। इसका कोई भ्राता भट्टार हरिश्चन्द्र अतियशस्वी कवि था—'भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गन्धबन्धो नृपायते;' (हर्षचरितः बाण)।

देवीचन्द्रगुप्तनाटक—यह विशाखदत्त का द्वितीय नाटक था जो इस समय अनुपलब्ध है, इसके उद्धरणमात्र रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण, अभिनवगुप्तकृत अभिनवभारती और भोजदेव कृत शृंगारप्रकाश में मिलते हैं। अभिनवगुप्त द्वारा उद्धृत पूर्वपृष्ठ पर उद्धृत किया जा चुका है। नाट्यदर्पण में पञ्चम अंक से एक प्राकृत गाथा उद्धृत की है, जिसका संस्कृत रुपान्तर है—

एष सितकरसार्थप्रणाशिताशेषवैरितिमिरौघः ।
निजविभवकेन चन्द्रो गगनं ग्रहलंघितो विशति ।।

इससे सिद्ध होता है कि नाटक में न्यूनतम पाँच अंक अवश्य थे। देवीचन्द्रगुप्त में उसका रचयिता विशाखदेव लिखा है। यह नामान्तर विशाखदत्त का ही था। राजा विशाखदेव की कुछ मुद्रायें पुरातत्त्व विभाग को मिली हैं, जिससे सिद्ध होता है कि वह अयोध्या का राजा था और ईस्वी सम्वत् के आसपास हुआ। इस प्रमाण से भी विशाखदत्त का समय विक्रम की प्रथम या द्वितीय शती में प्रमाणित होता है।

देवीचन्द्रगुप्त में विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त द्वारा रामगुप्तवध, शकपतिवध और ध्रुवस्वामिनी से विवाह का वर्णन था, इसमें शकपति पर विजय का विशेष चित्रण होगा, जैसा कि मुदाराक्षस में चन्द्रगुप्तमौर्य की विजेय का वर्णन है।

विशाखदत्त के तृतीय नाटक 'राघवानन्द' के कुछ उद्धरण सुभाषित ग्रन्थों से ढूढ़कर कुछ विद्वानों ने प्रकाशित किये हैं।

मुद्राराक्षस नाटक—इसमें सात अंक हैं। इसकी कथा वस्तु नन्दवंश के नाश के पश्चात् चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्तमौर्य को निर्विघ्न शासक बनाने से सम्बन्धित है। नाटक का मुख्य घटनाचक्र है—नन्द का प्रधानमन्त्री राक्षस (वररुचि कात्यायन) नन्द की मृत्यु के पश्चात् भी उसका सच्चा विश्वासपात्र

(1) अद्य सामन्तबटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपद्भाक्पृथुसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिमुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यम् (मु० रा० प्रस्तावना)

या स्वामिभक्त था, उसको अपनी ओर मिलाये बिना चंद्रगुप्त मौर्य का राज्य सुस्थिर नहीं हो सकता था, अतः चाणक्य ने कूटनीति द्वारा मलयकेतु और राक्षस में फूट करवा दी। अपने मित्र चन्दनदास की रक्षार्थ राक्षस को चाणक्य के समक्ष आत्मसमर्पण करना पड़ा और वह पुनः मौर्य का मन्त्री बन गया।

नाटक का नामकरण राक्षस की मुद्रा (मुहर) के आधार पर मुद्राराक्षस रखा गया है। राक्षस की मुद्रा चाणक्य के हाथ लग गई, इसी के बल पर चाणक्य ने राक्षस को अपने वश में कर लिया।

कथानक—नाटक के प्रारम्भ में कुछ लम्बी प्रस्तावना है, जिसमें चाणक्य की गर्वोक्तियां सुनाई पड़ती हैं। वह कहता है कि उसने नन्दवंश का समूलोच्छेद तो कर दिया, परन्तु नन्द के प्रधानमन्त्री राक्षस को अपने पक्ष में किये बिना चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन सुदृढ़ कैसे होगा। इसी प्रस्तावना में चाणक्यकथन से ज्ञात होता है कि उसने विषकन्या द्वारा पर्वतक को मरवा दिया। पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर मलयकेतु राक्षस की मन्त्रणा से म्लेच्छसेना से सज्जित होकर पाटलिपुत्र पर आक्रमण की योजना बनाता है। चाणक्य ने यह अफगाह फैला दी कि पर्वतक को राक्षस ने मरवाया है, जिससे मलयकेतु जान बचाकर भाग गया। प्रथम अंक में क्षपणक जीवसिद्धि, जो वस्तुतः चाणक्य का गुप्तचर था, राक्षस से जा मिला, जीवसिद्धि ने ही राक्षस की मुद्रा चाणक्य को दी। इसी अंक में कायस्थ शकटदास तथा सेठ चंदनदास की चर्चा है। चन्दनदास की शरण में राक्षस का परिवार रहता था—कि सेठ राक्षस के परिवार को उसे सौंप दे, जिससे राक्षस उसके वश में हो जाये, परन्तु चन्दनदास उसके आग्रह को ठुकरा देता है।

द्वितीय अंक में सँपेरे के रूप में राक्षस का एक गुप्तचर पाटलिपुत्र आता है, यहाँ राक्षस अपनी कूटनीति खेलता है, वह किसी प्रकार भी चाणक्य और चन्द्रगुप्त में फूट डालना चाहता है। राक्षस समझता है कि चन्द्रगुप्त सार्वभौम नरेश बनकर और चाणक्य अपनी प्रतिज्ञा में उत्तीर्ण होकर मदोन्मत्त है, अतः उनमें फूट डालना सुकर है, परन्तु चाणक्य, राक्षस की कूटनीति को अपनी कूटनीति से काट देता है।

तृतीय अंक में ऐसा दिखाया गया है कि मानो राक्षस की चालबाजी सफल हो रही है, ऐसा आभास कराया गया है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त—दोनों में मनोमालिन्य है। कौमुदीमहोत्सव मनाने के लिये निषेध करने कारण

चाणक्य और मौर्य में फूट पड़ी हुई जान पड़ती है। चाणक्य द्वारा उत्सव निषेध का कारण यह था कि आनन्दोत्सव में भूले हुये पाटलिपुत्र नगर पर मलयकेतु आक्रमण न कर दे। चाणक्य का क्रोधित रूप और मौर्य द्वारा शासन सूत्र अपने हाथ में लेने से यह प्रतीत होता है कि दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हो गये हैं। परन्तु अंक के अन्त में पता चलता है कि वह सब विष्णुदत्त चाणक्य की कूटनीति थी।

चतुर्थ अंक में चाणक्य की मन्त्रणानुसार पुष्पपुर से भागकर भागुरायण भद्रभटादि मलयकेतु की शरण में चले गये। करभक नामक गुप्तचर की वार्ता से मलयकेतु के शंका की पुष्टि हुई कि राक्षस चंद्रगुप्त और चाणक्य से मिल गया है, इधर पुष्पपुर से आकर सूचना देता है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त में गहन मतभेद हैं, राक्षस प्रसन्न होकर कहता है कि अब तो चन्द्रगुप्त हमारे वश में हो जायेगा। मलयकेतु और राक्षस ज्योतिषी क्षपणक से मुहूर्त पूछकर पुष्प-पुर पर आक्रमण की योजना बनाते हैं।

पंचम अंक में क्षपणक पुष्पपुरप्रयाणार्थ भागुरायण से मुद्रा चाहता है। क्षपणक भागुरायण से कहता है कि मेरे जिघांसु राक्षस ने ही पर्वतक को मरवाया था। सिद्धार्थक, जो चाणक्य का मुद्रित पत्र और आभूषण लिये हुये था, पकड़ा जाकर मलयकेतु के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। पत्र पढ़ने पर मलयकेतु को पक्का विश्वास हो जाता है कि राक्षस उसे मरवाना चाहता है, मलयकेतु राक्षस की इस दुष्कृत्य के लिये उसकी भर्त्सना करता है। चाणक्य-नीति से राक्षस और मलयकेतु में गहरी फूट पड़ जाती है। षष्ठ अंक में राक्षस अपनी असफल नीति के कारण अपने को कोसता है, इसी समय उसके सामने चाणक्य का एक गुप्तचर आत्महत्या का प्रयत्न करता है, उसकी रक्षा में तत्पर राक्षस को पता चलता है यह अपने मित्र चन्दनदास की फाँसी से शंकित होकर मरना चाहता है। राक्षस चंदनदास को बचाने के लिये चल दिया।

सप्तम अंक में दो गुप्तचर मिथ्या चाण्डाल बनकर चन्दनदास को शूली पर चढ़ाने ले जाते हैं। उसी अवसर मन्त्री राक्षस वहाँ जा पहुँचा और बोला—चंदनदास को छोड़ो, मैं फाँसी पर चढ़ूँगा। एक चाण्डाल चाणक्य को बुला लाया और सब भेद खोलते हुये चाणक्य कहता है कि मेरी सब चाल आपको चन्द्रगुप्त मौर्य का मन्त्री बनाने की थी। राक्षस नतमस्तक होकर चन्द्रगुप्त और चाणक्य के सम्मुख खड़ा हो जाता है और चाणक्य के आदेशानुसार वह चन्द्रगुप्त का मन्त्री बन जाता है। इसी समय बद्ध मलय-

केतु वहाँ लाया गया। राक्षस की सम्मति से मलयकेतु को मुक्त कर दिया गया, चन्दनदास पुनः श्रेष्ठी बन गया और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर अपनी शिखा बाँधी।

समालोचन—मुद्राराक्षस वीररस प्रधान नाटक है जिसमें युद्ध न होकर केवल कूटनीति का प्रबलतम चित्र उपस्थित किया गया है। नाटक में शृङ्गार रस एवं प्रणयप्रसङ्ग का पूर्णतः अभाव है, यहाँ तक कि इसमें केवल नायकादि ही हैं, नायिका का अस्तित्व तक नहीं। समालोचकों में इस बात पर विवाद और मतभेद है कि नाटक का नायक कौन है, चाणक्य या चंद्रगुप्त मौर्य ? सम्पूर्ण नाटक के गूढ़ परिशीलन से चाणक्य ही इस नाटक का नायक सिद्ध होता है और मन्त्री राक्षस प्रतिनायक। वैसे नाट्यशास्त्रानुसार चन्द्रगुप्त ही नायक होना चाहिये। आधुनिक समालोचकों में डा० कुन्हन राजा के अनुसार चंद्रगुप्त ही नायक है, परन्तु विन्टरनित्स चाणक्य को नायक मानता था।

नाटक के प्रमुख पात्र हैं—चाणक्य, चन्द्रगुप्त, राक्षस, मलयकेतु, क्षपणक जीवसिद्धि और गौणपात्र है—चन्दनदास, शकटाल, सिद्धार्थक, विरुद्धक आदि। नाटक के प्रमुख पात्र चाणक्य और चंद्रगुप्त हैं तथा समस्त नाटक में चाणक्य की कूटनीति का ही मायाजाल प्रदर्शित किया गया है—

जयति जलदनीलः केशवः केशिघाती जयति सुजनदृष्टिचन्द्रमाश्चन्द्रगुप्तः।
जयति जयनसज्जं या अकृत्वा च सैन्यं प्रतिहतप्रतिपक्षा आचार्यचाणक्यनीतिः।

आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य चाणक्य प्राचीन भारतीय इतिहास के एक, अप्रतिम कूटनीतिज्ञ और राजनिर्माता (Kingmaker) थे। भारतीय इतिहास में ऐसे निस्पृह, निःस्वार्थ, दृढव्रती और कुशलनीतिवेत्ता थोड़े ही हुये हैं। शुक्राचार्य, बृहस्पति, कृष्ण और यौगन्धरायण से उनकी तुलना की जाती है। चन्द्रगुप्त के सोते हुये भी कार्यजागरूक गुरु चाणक्य के होने पर वह राज्यतन्त्र के प्रति निश्चित है—'स्वपतोऽपि ममैव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति-कार्यजागरूकाः; (मु० ना० 3।15)। चाणक्य की बुद्धि सैकड़ों सेनाओं से भी बढ़कर है—

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमाः बुद्धिस्तु मागान्मम। (1।25)

वह पौरुष में विश्वास करता है—मूर्ख ही भाग्य को रोते हैं—देवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति'। चाणक्य ने मदमस्त वन्यहाथी के समान स्वतन्त्र विचरण

करने वाले मन्त्री राक्षस को अपने बुद्धिबल से बाँधकर वश में कर लिया—

स्वच्छन्दमेकचरमुज्वलदानशक्तिमुत्सेकिना बलमदेन विगाह्मानम् ।
बुद्धया निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायामारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि
(मु० रा० 1।27)

भारत के सार्वभौम सम्राट् को बनाने वाला आचार्य चाणक्य एक सन्यासी के रूप में रहता था, उसकी कुटिया में एक ओर उपले तोड़ने का उपशकलक (पत्थर) और दूसरी ओर शिष्यों द्वारा लाई गई कुशायें पड़ी रहती थीं। कुटिया सूखी लकड़ियों के भार से झुकी रहती थी और कुण्ड्या टूटी-फूटी हैं—

उपशकलमेतद्भेदकं गोमयानां बटुभिरुपहृतानां बर्हिषां स्तोम एषः ।
शरणमपि समिद्भिश्शुष्यमाणभिराभिर्विनमितपटलान्तं दृश्येतजीर्णकुण्ड्यम् ।
इस प्रकार चाणक्य का एक निःस्वार्थ और आदर्श चरित्र था ।

मन्त्री राक्षस का चरित्र भी श्रेष्ठ है, वह एक स्वामिभक्त पुरुष था, कूटनीति भी खूब जानता था, परन्तु चाणक्य के सम्मुख उसकी चालें न चल पाईं । चन्द्रगुप्त के दर्शन प्रत्येक अंक में नहीं होते । नाट्यशास्त्र के अनुसार नायक को प्रत्येक अंक में दिखाया जाना चाहिये । विशाखदत्त ने उसे सुजन-दृष्टि, तेजस्वी एवं गुणग्राहक रूप में चित्रित किया है । नाटक में चतुर्थ चरित्र मलयकेतु का है जो एक म्लेच्छशासक था, उसको कवि ने विवेकशून्य कहा है—

'अहो विवेकशून्यता म्लेच्छस्य,' (पंचम अंक)
अन्य पात्रों के चरित्र गौण हैं ।

काव्यगुण—नाटक की भाषा ओजस्विनी, रसमयी एवं प्रवाहमान संस्कृत है । नाटक के दृश्य अधिकांशतः वार्तालाप द्वारा कथित हैं, नाटक के अभिनय में निश्चय काठिन्य अनुभव किया जायेगा । यह नाटक का एक बड़ा दोष कहा जा सकता है । परन्तु मुद्राराक्षस नाटक सम्भवतः अपनी शैली और ढंग का एक ही नाटक है । भाषा और वाक्यविन्यास प्रभावोत्पादक, रसमय एवं उत्तेजक है । विशाखदत्त ने स्वल्पशब्दों द्वारा गम्भीर एवं विस्तृत भावों को प्रकट किया है ।

अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः ।
कायस्थ इति लघ्वी मात्रा ।
मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि ।
शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः ॥

(हर्षवर्धन)

प्राचीन भारत में अनेक सम्राट् श्रेष्ठतम कवियों की श्रेणी में हुये हैं, यथा शूद्रक विक्रम, समुद्रगुप्त, भट्टार हरिश्चन्द्र, विशाखदत्त इत्यादि, इसी परम्परा में भारत के अन्तिम श्रेष्ठ सम्राट् हर्ष हुये, जिन्होंने तीन संस्कृत नाटक लिखे—रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द। सम्भवतः हर्ष ही प्राचीन भारतीय महापुरुष और सम्राट् है, जिसका जीवनचरित—हर्षचरित बाणभट्ट से लिखा गया, इससे पूर्व भी अनेक सम्राटों के जीवनचरित लिखे गये, परन्तु इस समय अनुपलब्ध हैं। हर्ष का वर्धनवंश इतिहास में प्रसिद्ध है और इसका समय निश्चित है। हर्ष का राज्य काल 606 ई० से 647 ई० सन् तक 41 वर्ष रहा, अतः इसके समय के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है।

हर्ष की राजसभा का सर्वश्रेष्ठ रत्न तो महाकवि बाण थे ही, अन्य अनेक कवि भी उनकी सभा की शोभा बढाते थे, यथा, मयूर, मातंग, दिवाकर और लोकभाषा कवि ईशान। बाणभट्ट ने राजाधिराज हर्ष का जीवनचरित—हर्षचरित लिखा जिससे प्रसन्न होकर सम्राट् ने कवि को कोटिशत स्वर्णमुद्रायें दान में दीं—

श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पार्थिवेषु नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु ।
श्रीहर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजितः कनकोटिशतेन बाणः ॥[1]

हर्ष राजसंसद् के अन्य कवियों का उल्लेख निम्न श्लोक में द्रष्टव्य है—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातंगदिवाकरः ।
श्रीहर्षस्याभवत् : सभ्य : समो बाणमयूरयोः ॥

कवियों का महान् आश्रयदाता होने के साथ श्रीहर्ष स्वयं महान् कवि था, जैसाकि बाण ने हर्षचरित में लिखा है—

'अस्य कवित्वस्य वाचो न पर्याप्तो विषयः,'

कुछ विद्वान् उपर्युक्त तीन नाटकों को हर्ष की रचना न मानकर ऐसा मानते हैं कि हर्ष ने धन देकर 'धावक' नामक कवि से ये नाटक लिखवाये थे,

(1) काव्यमीमांसा, पृ० 10।

इस कल्पना का मूल मम्मटाचार्य का काव्यप्रकाश में यह वचन है—श्रीहर्षादेर्धा-वकादीनामिव धनम्' श्रीहर्षादि ने धन देकर धावकादि से (काव्य लिखवाये)। इस प्रकार तो बाण ने भी हर्षचरितादि ग्रन्थ लिखे, लेकिन उनका लेखक हर्ष नहीं माना जाता, यद्यपि हर्ष ने बाण को विपुल धन दिया था, अतः धाव-कादि से नाटक लिखवाने की कल्पना निराधार है।

नाटकत्रयी परिचय

प्रियदर्शिका—यह एक नाटिका है, जिसमें चार अङ्क हैं। यह सम्भवतः हर्ष की प्रथम कृति है। इस नाटक में उदयनसम्बन्धिलोककथा का आख्यान है। उदयनकथा के आधार पर अनेक प्राचीन कवियों ने नाटक लिखे थे, जिनमें भास प्रमुख और प्राचीनतम थे[1]। श्रीहर्ष ने इस सम्बन्ध में भासादि प्राचीन कवियों से प्रेरणा ली होगी। कालिदास के नाटकों का प्रभाव भी हर्ष के नाटकों पर स्पष्ट है। इस नाटक में उदयन के साथ राजकुमारी प्रिय-दर्शिका के प्रणयबन्धन की मनोरमा कथा है। अङ्गराज दृढ़वर्मा की पुत्री प्रियदर्शिका को वत्सदेश का सेनापति विजयसेन उदयन के पास धरोहर रूप में रख देता है। विवाह से पूर्व कलिंगराज ने अङ्गराज को बन्दी बना लिया था। राजा उदयन अपनी सेना भेजकर दृढ़वर्मा को मुक्त कराता है और रहस्य खुलने पर आरण्यिका नाम से रह रही प्रियदर्शिका का उदयन से विवाह हो जाता है।

रत्नावली—यह भी चार अङ्कों की नाटिका है। स्वप्न नाटक के समान इस नाटक में भी यौगन्धरायण लावाणक में वासवदत्ता के जलने की खबर उड़ाकर सिंहल देश की राजकुमारी रत्नावली की उदयन के लिये इसलिये याचना करता है कि इससे उदयन को चक्रवर्तित्व प्राप्त होगा। पोत के डूबने पर भी रत्नावली उदयन के दरबार में बचकर पहुँच गई। दीर्घ ऊहापोह के पश्चात् रत्नावली का उदयन के साथ विवाह होता है। इस नाटक पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र का प्रभाव है।

---

(1) भास के अतिरिक्त ये तीन काव्य प्राचीन और प्रसिद्ध थे—

(1) भीमटरचित मनोरमावत्सराज;

(2) तापस वत्सराज; और

(3) उदयन चरित।

हर्ष के दो नाटकों—प्रियदर्शिका और रत्नावली का सम्बन्ध उदयनकथा से है।

नागानन्द— इसमें पाँच अङ्क हैं। इस नाटक में विद्याधरपुत्र जीमूतवाहन के आत्मबलिदान की कथा वर्णित है। इस नाटक का उल्लेख चीनी यात्री इत्सिंग ने भी किया है। सर्पों के स्थान पर जीमूतवाहन स्वयं गरुड़ के सम्मुख भक्षणार्थ उपस्थित हो गये। वे एक बोधिसत्व के अवतार थे, जिनके कारण गरुड़ ने सर्पों का भक्षण त्याग दिया और जीमूतवाहन भी पुनर्जीवित कर दिये गये।

(भट्टनारायण)

समय— भट्टनारायणकृत वेणीसंहार नाटक संस्कृत का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है और उतनी ही प्रसिद्धि उसके कर्त्ता की है, परन्तु कविजीवनवृत्त प्रायः अन्धकार में है। वेणीसंहार नाटक के उद्धरण वामनकृत काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, आनन्दवर्धन कृत ध्वन्यालोकलोचन आदि में प्राप्त होते हैं, ये सभी ग्रन्थकार आठवीं शती के आसपास हुये हैं, अतः भट्टनारायण का समय इनसे पूर्व होना चाहिये। निम्नलिखित दो-तीन प्रमाणों के आधार पर भट्टनारायण बाणभट्ट और हर्ष के समकालीन (सप्तमी शती के पूर्वार्द्ध में) सिद्ध होते हैं।

प्रवाद है कि भट्टनारायण उन ब्राह्मणों में से एक थे, जिनको बंगाल के राजा आदिसूर ने कान्यकुब्ज (कन्नौज) से बंगाल में बुलाया था। यह पालवंश से पूर्व की घटना है और आधुनिक इतिहासकारों के मतानुसार पालवंश का प्रारम्भ अष्टमी शती के मध्य में हुआ था। एक प्रसिद्ध पाश्चात्य इतिहासकार स्टेनकोनो के अनुसार अंतिम गुप्त नरेश माधवगुप्त का ही पुत्र आदिसूर था, जिसने आदित्यसेन नाम धारण करके मगध में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की और हर्ष की अधीनता अस्वीकार कर दी। आदित्यसेन हर्ष के समकालीन था अतः आदित्यसेन और भट्टनारायण का भी वही समय निश्चित होता है।

प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्ति कृत रूपावतार ग्रन्थ की एक प्राचीन टीका में लिखा है कि बाणभट्ट की सम्मति से भट्टनारायण एक बौद्ध मठाधीश का शिष्य बन गया और रूपावतार की रचना धर्मकीर्ति और भट्टनारायण ने मिलकर की, इस प्रमाण से भी सिद्ध होता है कि भट्टनारायण धर्मकीर्ति, बाण और हर्ष समकालीन थे।[1] इसके अतिरिक्त भट्टनारायण के विषय में और

(1) कुछ विद्वान् भट्टनारायण का समय पाँचवीं शती ई० में मानते हैं, यथा द्रष्टव्य—डा० कुन्हन राजा—'सर्वे आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० 83। यह मत निराधार एवं अलीक है।

कोई विशेष सूचना नहीं मिलती, सिवाय कि इनकी एक उपाधि 'मृगराजलक्ष्मा' थी।

भट्टनारायण की एक मात्र प्रसिद्धि इसी वेणीसंहार नाटक के कारण है, द्वितीयग्रन्थ रूपावतार धर्मकीर्ति के साथ लिखा गया।

नाटकपरिचय—वेणीसंहार नाटक का कथानक महाभारत ग्रन्थ से लिया गया है। इस नाटक की रचना पूर्णतः नाट्यशास्त्रीय विधानानुसार हुई है, अङ्क गर्भांक, सन्ध्यादि की रचना इसी रीति के अनुसार हुई है, इसीलिये इसके उद्धरण लक्षणग्रन्थों में मिलते हैं। नाटक का नाम भी गर्भितार्थक है—वेणी (चोटी) का संहार (संयमनया बांधना)। द्रौपदी ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुःशासन के खून से अपनी वेणी गूथूँगी। इसी प्रतिज्ञापूर्ति के कारण नाटक का नाम वेणीसंहार है। विद्वानों के अनुसार नाटक की कथा शिथिल एवं क्रियान्विति का अभाव है। नाटक का मुख्य रस वीररस है परन्तु हास्य और करुणरस का प्रयोग भी है, अन्तिम अङ्क में भावगौरव एवं भावद्योतकता का प्राचुर्य है।

वेणीसंहार में काव्य (पद्यों) का प्राचुर्य है, दृश्यकाव्य की दृष्टि से यह दोष है। भट्टनारायण की शैली में कृत्रिमता का बाहुल्य है। यह गौडी शैली में लिखा गया है जिसमें दीर्घ समासों का प्राचुर्य है। नाटक में अलंकारों की भी बहुलता है, ये सब बातें अभिनेयता के लिये दोष हैं। नारायणकृत पात्र-चित्रण की रीति श्रेष्ठ है। फलभोक्ता होने से नाटक का नायक युधिष्ठिर है, परन्तु सम्पूर्ण नाटक में भीम का चरित्र इतनी अधिकता से है कि वही नायक प्रतीत होता है।

नाटक में शैली, अलंकार, भाषा, भावादि के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं। गौडी शैली के विशिष्ट उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

> चंचद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघातसंचूर्णितरुयुगलस्य सुयोधनस्य ।
> स्त्यानावरुद्धघनशोणितशोणपाणिरुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः ॥

"हे देवि ! भीम प्रतिज्ञा करता है कि चंचलभुजयुगल से घुमाई गई प्रचण्ड गदावेग से दुर्योधन के उरुयुगल को भंग करके जमे हुये गाढ़रक्त से रंजित हाथों से तुम्हारी वेणी गूंथेगा।"

---

(1) यदिदं कवेर्मृगराजलक्ष्मणो भट्टनारायणस्य कृतिं वेणीसंहारनाम-नाटकं प्रयोक्तुमुद्यता वयम् (वे. सं. प्रथम अङ्क)।

मन्थायस्तार्णवाम्भःप्लुतकुहरवलन्मन्दरध्वानधीरः ।
कोणघातेषु गर्जत्प्रलयघनघटान्योन्यसंघट्टचण्डः ॥
कृष्णाक्रोधाग्रदूतः कुरुकुलनिधनोत्पातनिर्घातवातः ।
केनास्मत्सिंहनादप्रतिरसितसखो दुन्दुभिस्ताडितोऽयम् ॥ (1|22)

"हमारे सिंहनाद के तुल्य यह रणदुंदुभि किसने ताडित किया है। इसका रव गम्भीर समुद्रमन्थन के समान है जो कि मन्दराचल के प्रचण्ड गर्जन के समान है, यह शतशः एवं सहस्रशः दुन्दुभियों की रणकर्कश ध्वनि द्रौपदी के क्रोधरूपी अग्रदूत और कुरुकुल के विनाश की सूचक प्रलयकालीन वायु-ध्वनि है।"

(भवभूति)

जन्मसमयादि—संस्कृत साहित्याकाश में कालिदास और भवभूति सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य हैं जब तक पृथिवी और आकाश है, तब तक ये साहित्यिक सूर्यचन्द्रमा चमकते रहेंगे। भवभूति की यशःप्रशस्ति[1] उनके जीवन के अन्तिम दिनों में समस्त भारत में व्याप्त हो गई थी।

दक्षिण भारत में विदर्भ (बरार) के अन्तर्गत पद्मपुर नगर में कृष्ण-यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखीय काश्यपगोत्रीय उदुम्बर कुल में इनका जन्म हुआ था। भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जातूकर्णी था। इन्होंने अपना परिचय स्वयं महावीरचरित में

(1) राजशेखर से पूर्व भवभूति की कीर्तिदिगदिगन्तव्याप्त हो गई थी, उन्होंने अपने को भवभूति का अवतार कहा—

बभूव वल्मीकभवः पुरा कविः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम् ।
स्थितः पुनर्यो भूवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः ।
(बालरामायण 1|16)

अन्यत्र इनकी प्रशंसा में कहा गया है—

भव्यां विभूतिं त्वंतातकामयसे तदा ।
भवभूतिपदे चित्तमविलम्बं निवेशय ॥
सुकवितयं मन्ये निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्तु तृतीयकः ॥
भवभूते सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति ।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ॥

लिखा है।[1] इनका प्रारम्भिक या वास्तविक नाम श्रीकण्ठ था। एक श्लोक में भवभूति पद के सुन्दर प्रयोग के कारण विद्वानों में इनकी प्रसिद्धि भवभूति नाम से हुई, ऐसी किंवदन्ती है।[2] यह श्लोक भवभूति ने पार्वती की वन्दना के लिये रचा था।

महाकवि भवभूति विविध शास्त्रों के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनके नाटकों में वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों, कल्पसूत्रों, षड्दर्शनों एवं कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहासपुराणादि के अनेक समान वचन मिलते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि इन्होंने उपर्युक्त शास्त्रों का विशेष अध्ययन किया था।[3] इन्होंने अपने परिचय में अपने को पदवाक्यप्रमाणज्ञ (मीमांसक) कहा भी है जिससे सिद्ध होता है कि ये महान् दार्शनिक भी थे। कुछ विद्वान् इन्हीं को उम्बेकाचार्य मानते हैं जो प्रसिद्ध मीमांसकाग्रणी कुमारिल भट्ट के शिष्य थे। मालतीमाधव की एक हस्तलिखित प्रति में इस नाटक को उम्बेकाचार्य की रचना माना है। परन्तु अन्य प्रमाणों के अभाव में इस विषय में अभी निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

भवभूति का समय निर्धारण कुछ सुकर है, यद्यपि अभी पूर्ण निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता, परन्तु इनका समय प्रायः ई० 700–750 या अष्टमी शती के प्रारम्भ में माना जाता है, क्योंकि कल्हण ने लिखा है कि कविवाक्पतिराज और श्रीभवभूति कान्यकुब्जेश्वर यशोवर्मा (750 ई०) के सभारत्न थे। इस यशोवर्मा को कश्मीरनरेश ललितादित्य ने विजित किया

---

(1) तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेयपायिनो महाकवेः पञ्चमः सुग्रहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसंभवः श्रीकंठपदलांछनपदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः कविर्मित्रनामधेयमस्माकमिति विदांकुर्वन्तु।

(महावीरचरित, प्रारम्भ)

(2) गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ।
तपस्वी कांगतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव॥

(3) यद्वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च।
ज्ञानं तत्कथनेन किं न हि ततः कश्चिद्गुणो नाटके।
यत्प्रौढत्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं।
तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्धयोः॥

था ।[1] अतः भवभूति और कवि वाक्पतिराज यशोवर्मा के आश्रित थे, स्वयं वाक्पतिराज ने गउडवह (श्लोक 799) में भवभूतिकाव्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है ।[2] वाक्पतिराज ने 'अद्यापि' (आज) का प्रयोग किया है, इससे प्रतीत होता है कि वाक्पतिराज से कुछ पूर्व ही भवभूति का यश: संसार में फैल चुका था ।

भवभूति के नाटक सम्भवत: उज्जयिनी में कलाप्रियनाथ या महाकाल मन्दिर में खेले जाते थे । विदर्भनिवासी होने के कारण सम्भवत: इनकी शिक्षा-दीक्षा भी उज्जयिनी में हुई हो । कुछ लोग कालपी ग्राम को कलाप्रियनाथ मानते हैं, परन्तु यह मत संदिग्ध है ।[3]

यह प्रसिद्ध ही है कि महाकवि भवभूति का प्रारम्भिक कवि जीवन सुखद नहीं था, सम्भवत: उनको बहुत बाद में राजाश्रय मिला हो, तभी तो उन्होंने लिखा—

ये नाम केचिदिह प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा ।
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी ॥

(मा० मा० 1।6)

"जो लोग हमारा अपमान करते हैं' वे जान लें कि यह प्रयत्न (कृति) उनके लिये नहीं है । मेरा समानधर्मा कभी पैदा होगा, क्योंकि समय निरवधि और पृथिवी विशाल है ।" उपर्युक्त श्लोक में कवि की हार्दिक वेदना प्रकट होती है कि जीवन में उन्हें दुःख और निराशा ही हाथ लगी, कम से कम मालतीमाधव की रचनापर्यन्त तो यही अवस्था थी, वैसे उनकी अन्तिम रचना उत्तररामचरित में भी करुणा के दृश्य ही हैं और वहाँ करुणरस का परिपाक है ।

---

(1) कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥ (रा० त० 4।144)

(2) भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यमृतरसकण इव स्फुरन्ति ।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ॥

(3) द्र० संस्कृतसाहित्य का आलोचनात्मक इतिहास :
(रामजी उपाध्याय, पृ० 416)

कृतियाँ

महाकवि भवभूति के तीन नाटक विख्यात हैं— मालतीमाधव, महावीर-चरित और उत्तररामचरित। इनमें अन्तिम कृति के कारण भवभूति अमर हैं। आगे इन तीनो नाटकों का कथानक संक्षेप में लिखा जाता है।

मालतीमाधव—इसकी कथा बृहत्कथा से ली गई है। यह प्रकरण कोटि का रूपक है, और इसमें दस अंक हैं। इसमें मालतीमाधव के प्रणयबन्धन की कथा है। भूरिवसु और देवरात क्रमशः पद्मावती और विदर्भ के राजमन्त्री थे, वे दोनों ही विद्यार्थीजीवन से घनिष्ठ मित्र थे। इन दोनों ने प्रतिज्ञा की थी वे अपनी पुत्रपुत्रियों का परस्पर विवाह करेंगे। यथासमय देवरात के पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम माधव रखा गया और भूरिवसु के पुत्री हुई, जिसका नाम मालती हुआ। माधव तापसी कामन्दकी के आश्रम में न्यायशास्त्र का अध्ययन करता था। वह तापसी मालवी और माधव के प्रणय में सहायिका भी हुई। उसने यह कार्यभार अपनी शिष्या अवलोकिता को समर्पित किया, क्योंकि उनके प्रणयबन्धन में बूढ़ा राजश्याल नन्दन बाधा था, जो स्वयं मालती से विवाह करना चाहता था।

प्रथम अंक में कामोद्यान के मदनोत्सव में मालती और माधव एक-दूसरे को देखकर मोहित हो जाते हैं और मालती के चले जाने पर माधव विरह में डूब जाता है।

द्वितीय अंक में अतिवयस्क राजश्याल नन्दन के साथ मालती के विवाह का उपक्रम होता है, परन्तु कामन्दनी मालती को छिपाकर माधव के साथ मालती का गान्धर्वविवाह करा देती हैं। तृतीय अंक में मालतीमाधव शिवमन्दिर के निकट अशोकवन में मिलते हैं, वहाँ पर माधव का मित्र मकरन्द एक सिंह को मार डालता है, परन्तु वह मूच्छित हो जाता है। चतुर्थ अंक में मकरन्द को देखकर माधव भी मूच्छित हो जाता है, कुछ क्षणों में वे दोनों होश में आते हैं। पाँचवे अंक में कपालकुण्डला और कापालिक का प्रवेश होता है। कापालिक अघोरकण्ठ मालती को अपने चंगुल में फँसाकर बलि देने के लिये देवीमन्दिर में जाता है। इधर माधव भी श्मशान में घूम रहा था, वह अकस्मात् किसी नारी का करुण क्रन्दन सुनकर उसकी सहायता के लिये दौड़ता है। माधव और कापालिक में युद्ध होता है, जिसमें माधव उसका वध कर देता है और मालती मुक्त हो जाती है।

षष्ठ अंक में कपालकुण्डला अपने गुरु कापालिक के वध का बदला लेने की घोषणा करती है, इधर राजभट मालती को ढूंढ़ते हुये श्मशान पहुँचते हैं,

उनको मालती मिल जाती है और नन्दन के साथ उसके विवाह की तैयारी होती है, परन्तु चालाकी से मकरन्द मालती के वेश में नन्दन के साथ विवाह करता है। इधर मंदिर में मालती और माधव का गान्धर्वविवाह हो जाता है। सप्तम अंक में मालती बना हुआ मकरन्द रात्रि में नन्दन की पिटाई करता है। नन्दन की भगिनी मदयन्ती मकरन्द से प्रेम करती थी, मदयन्ती को मकरन्द के साथ देखकर सिपाही उन्हें घेर लेते हैं, तभी माधव मकरन्द की सहायतार्थ आ जाता है। इसी मध्य कपालकुण्डला मालती को पकड़ कर बल्यर्थ श्रीपर्वत ले जाती है। राजभटों से संघर्ष के पश्चात् माधव को मालती दिखलाई नहीं पड़ती तो वह विक्षिप्त-सा होकर मालती को ढूंढ़ने निकल पड़ता है, उधर कामंदकी की शिष्या सौदामिनी मालती की रक्षा कर उसे बचा चुकी थी और वह उसी की कुटिया में रह रही थी।

दशम अंक में मन्त्री भूरिवसु, कामन्दकी, मदयन्ती आदि सभी मालती के शोक में आत्महत्या करना चाहते हैं। मकरन्द आकर उन्हें मालतीमाधव के समाचार सुनाता है, इतने में वे भी वहाँ पहुँच जाते हैं। तदनन्तर मकरन्द और मदयन्ती का विवाह सम्पन्न होता है। मालतीमाधवी का गान्धर्वविवाह पहिले ही हो चुका था।

महावीरचरित—इसमें सात अंक हैं और सीतास्वयंवर से रामराज्याभिषेक तक की रामकथा नाटकरूप में कथित है। कवि ने रामकथा को नाटकीय योजनानुसार पर्याप्त परिवर्तित किया है। नाटक में राम को ही 'महावीर' के रूप में चित्रित किया है, अतः इसका नाम महावीरचरित रखा गया है।

जनक द्वारा सीतास्वयंवर की घोषणा को सुनकर रावण का दूत मिथिला में आकर रावण के लिये सीता की याचना करता है और वह रावण के उच्च पुलस्त्यकुल की कत्थना करता है। न तो रावण वहाँ आया और न ही जनक ने उसकी याचना पर विचार किया। स्वयंवर में सीता का विवाह राम से हो जाता है।

रावण का मन्त्री माल्यवान् षड्यन्त्र और कूटनीति के द्वारा राम को परास्त करना चाहता था, उसने परशुराम को राम के विरुद्ध उत्तेजित किया। परशुराम युद्ध में राम से परास्त हुये, तब माल्यवान् ने शूर्पणखा को मन्थरा के रूप में राम को यह सन्देश देने भेजा कि कैकेयी उनको चतुर्दश वर्ष का वनवास देना चाहती है। सन्देश सुनकर राम, लक्ष्मण और सीता सहित वन में चले गये। माल्यवान् को खर द्वारा राम की पराजय की आशा थी। परन्तु खर अपने प्रयत्न में असफल होकर मारा गया। तदनन्तर मारीच के साहाय्य से

रावण ने सीता का हरण कर लिया। पुनः माल्यवान् ने वानरराज वाली को राम के विरुद्ध भड़काया। वाली मरते समय सुग्रीव और अंगद को राम की शरण में दे गया। निराश होकर माल्यवान् ने राम-रावण युद्ध करवाया। सुग्रीव की सहायता से रावण को राम ने युद्ध में परास्त किया। विभीषण के राज्याभिषेक के अनन्तर राम पुष्पकविमान द्वारा ससख अयोध्या लौटे और उनका राज्याभिषेक हुआ।

भवभूति ने अभिनय के अनुरूप स्वकल्पना से रामायण कथा का यथोचित परिवर्तन किये हैं, यह स्पष्ट है कि पञ्चसन्धि आदि के समावेशार्थ कथा में यह परिवर्तन किया। पात्रों के चरित्रचित्रण में भी भवभूति ने कुछ वैशिष्ट्य का समावेश किया है। राम का उदात्तचरित नाटक में सर्वत्र छाया रहता है। रावणादि अन्य पात्र हीनकोटि के प्रतीत होते हैं।

नाटक में कवि की काव्यकला और नाट्यकला का अच्छा प्रस्फुटन हुआ है, तथापि कुछ दोष भी दृष्टिगोचर होते हैं।

(उत्तररामचरित)

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते

कथानक—उत्तररामचरित न केवल भवभूति का बल्कि संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से एक है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल को छोड़कर स्यात् उत्तररामचरित से बढ़कर और कोई नाटक नहीं है। परन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल सरसप्रणय एवं शृंगाररस का नाटक है, जबकि उत्तररामचरित में करुणरस का पूर्ण परिपाक है, जिस प्रकार आदिकवि वाल्मीकि[1] के शोक से करुणरस की रामकथारूपी सरस्वती बही, उसी प्रकार सीता के शोक से भवभूति की वाक्सरस्वती प्रवाहित हुई।

स्वयं भवभूति करुणरस को काव्य का प्रधानरस मानते थे—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुद्तरङ्गमयान् विकारानम्भो
यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्॥ (उ० रा० 3।47)

---

(1) निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः
(रघुवंशे 14।70)

तथा च — काव्यास्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः।
(ध्वन्यालोके 1।5)

"एक करुणरस ही निमित्त (कारण) भेद से पृथक्-पृथक् होकर विभिन्न रूप धारण करता है, यथा जल के बुलबुले तरङ्गरूप में अनेक विकाररूप धारण करते हैं, परन्तु जल तो एक ही है।"

उत्तररामचरित में राम और सीता का शोक ही साक्षात् मूर्तिमान् हो गया है, जैसा कि कवि ने व्यक्त किया है—

करुणस्य मूर्तिरथवाशरीरिणी
विरहव्यथेव घनमेति जानकी ॥ (उ. रा. 3।4)

'पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥'[1]
राम का करुणरस पके हुये फोड़े के समान हो गया था।

उत्तररामचरित में सात अंक हैं। रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा के आधार पर यह नाटक रचा गया है, परन्तु भवभूति ने मूलकथा में नाटकोचित अनेक परिवर्तन किये हैं, यथा चित्रपट में रामकथा के दृश्य सीता द्वारा देखना, वासन्तीरामवार्तालाप को सीता द्वारा छिपकर सुनना, राम द्वारा वासन्ती के समक्ष सीताप्रेम को स्वीकारना, शम्बूक का मरने पर दिव्यमूर्ति बन जाना, लव और चन्द्रकेतु का युद्ध, छाया सीता के साथ राम का मिलन, वसिष्ठादि का वाल्मीकि आश्रम में आना, राम के उत्तरचरित का उनके समक्ष अभिनय आदि वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड में नहीं है। उपर्युक्त दृश्य भवभूति के उत्तररामचरित की विशेषतायें हैं।

प्रथम अंक में रावणवध के अनन्तर अयोध्या लौटने पर राम का राज्याभिषेक होता है। यथासमय गर्भवती होने पर सीता को राम चित्रशाला में स्वचरित से सम्बद्ध घटनाओं को चित्रपट पर प्रदर्शित करते हैं, जिससे उसका मन प्रसन्न रहे, परन्तु इन चित्रों को देखकर सीता के मन में एक बार पुनः तपोवनों देखने की इच्छा होती है। इसी समय दुर्मुख नामक गुप्तचर प्रजाजनों में फैली हुई राम की निन्दा की बात राम को सुनाता है, यह सुनकर राम

---

(1) सीतावियोग में राम का शोक मृत्यु से भी बढ़कर हो गया—

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा न तु भिद्यते।
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्।
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥
(उ० रा० 3।31)

को तीव्र आघात होता है।[1] राम के आदेशानुसार लक्ष्मण गर्भवती सीता को तपोवन में छोड़ आते हैं। परन्तु राम को इस सीतात्याग का गहन दुःख है—

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातलज्जामुन्मुच्य प्रियगृहणीं गृहस्य शोभाम्।
आतंकस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं क्रव्याद्भ्यो बलिमिव निर्घृणः क्षिपामि ॥(1।49)

"विश्वास के कारण मेरी छाती पर सोई हुई लज्जाशील प्रियगृहिणी, घर की शोभा को हटाकर, आतंक से स्फुरित, कठोरगर्भवाली सीता को मैं निष्घृण होकर बलि के समान मांसभक्षी पक्षियों को डाल रहा हूं।"

द्वितीय अंक में कवि द्वारा द्वादशवर्ष बाद की घटनाओं का चित्रण है, जबकि सीता के पुत्र लवकुश बारह वर्ष के हो गये और वाल्मीकि आश्रम में अध्ययन करते थे। इसी अंक में राम द्वारा दण्डकवन में शूद्रकवध का उल्लेख है। यहीं पर कवि ने प्रकृति का सुन्दर एवं अतुल्य चित्र उपस्थित किया है।[2] तृतीय अंक में प्रकृतिचित्रण के साथ राम के विरह का वर्णन है,जबकि वे रोते हुये आँसुओं की झड़ी लगा देते हैं। इस अंक में करुणरस का उत्तम चित्र मिलता है।

चतुर्थ अंक में एक ओर जनक और कौशल्या सीता के दुःख में शोकमग्न हैं, तो दूसरी ओर लव का वीरतापूर्ण उद्घोष सुनाई पड़ता है। पंचम अंक में भी लव का वीर उद्घोष चलता है। षष्ठ अंक में विद्याधरों द्वारा लव और चन्द्रकेतु के युद्ध का दृश्य वर्णित है, इसी अंक में राम का प्रवेश होता है और उनसे प्रभावित होकर लव युद्ध रोक देता है। अन्तिम सप्तम अंक का दृश्य अत्यन्त हृदय विदारक है। एक ओर वियोगिनी सीता का राम से मिलन होता है तो दूसरी ओर राम लवकुश को पहिचान कर राज्य प्रदान करते हैं। इस अंक में कवि ने करुणरस का पूर्णपरिपाक किया है।

कलापक्ष और भावपक्ष—उत्तररामचरित में भवभूति के कलापक्ष और भाव पक्ष दोनों का ही चरमोत्कर्ष मिलता है। चित्रपट के प्रदर्शन में जनस्थान में रहते हुये रामसीता का अद्वितीय प्रेम इस श्लोक द्वारा व्यक्त किया गया है—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगादविलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकदोष्णोरविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीता ॥
(1।27)

---

(1) अहह अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः (प्रथक अंक)
(2) कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन सम्पातिभिर्धर्मस्रंसितबन्धनैः स्वकुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम् ॥ (2।9)

राम ने सीता के प्रति कभी कहा था—

> त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं ।
> त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे ॥ (3।26)

परन्तु प्रजारञ्जन राम के जीवन का आदर्श था—

> स्नेहं दया च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
> आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

लव की वीरता का वर्णन करते हुये भवभूति ने गौडी (समासबहुला) काव्यरीति का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत किया है—

> ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रमुद्गारिघोरघनघर्घरघोषमेतत् ।
> ग्रासप्रसक्तहसदंतकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥
> (4।29)

भवभूति के निम्न पद्य विज्ञान और मनोविज्ञान के श्रेष्ठ ज्ञान के निदर्शन हैं—

> व्यतिषिजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतुर्न ।
> खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ॥
> विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं ।
> द्रवति च हिमरश्मावुदगते चंद्रकान्तः (6।12)
> न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
> तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥ (2।19)

(मुरारि)

समय—भवभूति के अनन्तर अनर्घराघव नाटक के रचयिता मुरारि की संस्कृतललित साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्धि रही है। कुछ आलोचक तो पदचिन्ता (शब्द प्रयोग) में मुरारि को भवभूति से बहुत बढ़चढ़ कर मानते थे—

> मुरारिपदचिन्तायां भवभूतेस्तु का कथा ।
> भवभूतिं परित्यज्य मुरारिमुररीकुरु ॥

"मुरारि की पदचिन्ता के सम्मुख भवभति की क्या महत्ता है, भवभूति को छोड़कर मुरारि को स्वीकार करो।"

अतः यह निश्चित है कि मुरारि भवभूति के पश्चात् हुये। हरविजय काव्य के रचयिता रत्नाकर ने एक श्लेषप्रयोग में मुरारि का उल्लेख किया है—

अंकोत्थनाटकइवोत्तमनायकस्य नाशं कविर्व्यधित यस्य मुरारित्थम् ।(37।167)

रत्नाकर का समय कश्मीरनरेश अवन्तिवर्मा के समकालीन नवीं शताब्दी में हुये, अतः मुरारि इससे पूर्व और भवभूति के पश्चात् हुये अतः इनकी तिथि के सम्बन्ध में कोई निश्चित सूचना नहीं है। इसी प्रकार इनके जन्म-स्थानादि भी अनिश्चित हैं। कीथ के मत में मुरारि माहिष्मती (महाराष्ट्र) में किसी राजा के सभासद् थे।

मुरारि का परिचय केवल अनर्घराघव नाटक की प्रस्तावना में मिलता है, तदनुसार उनके पिता का नाम श्रीवर्धमानक और माता का नाम तन्तुमती था, उनका गोत्र, मौद्गल्य था। वे महाकवि बालवाल्मीकि" भी कहलाते थे।[1]

अनर्घराघव नाटक में सात अंक हैं और इसमें नाट्य रूप समस्त रामकथा को उपनिबद्ध किया है। अभिनेयता की दृष्टि से यह नाटक पर्याप्त दोषपूर्ण है उदाहरणार्थ प्रथम अंक में ही दीर्घ प्रस्तावना है जो नाटक (दृश्यकाव्य) के अनुरूप नहीं। कथान्विति एवं कालान्विति आदि अनेक दोषों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया है। परन्तु मुरारि के वाग्वैभव एवं पाण्डित्य में कोई सन्देह नहीं, इस नाटक के व्याज से कवि ने उच्चकोटि के काव्य की रचना की है।

अनंगहर्ष—इसने 'तापसवत्सराज' नाटक लिखा, अनंगहर्ष की एक उपाधि 'मातृराज' थी। नाटक प्राचीन होना चाहिये, परन्तु इसका समय निश्चित नहीं है, राजशेखर और आनन्दवर्धन ने इसका उल्लेख किया है अमः अनंगहर्ष का समय इनसे पूर्व निश्चित है। तापसवत्सराजनाटक प्रकाशित हो चुका है, इसमें उदयनकथा है।

---

(1) अस्य हि मौद्गल्यानां ब्रह्मर्षीणामन्वयमूर्धन्यस्यस्य मुरारिनामधेयस्य बाल वाल्मीकेर्वाङ्मयामृतबिन्दुनिष्यन्दि कन्दलयि कौतुकं मे' (प्रथम अंक) अस्ति मौद्गल्यगोत्रसंभवस्य महाकवेर्भट्टश्रीवर्धमानतनूजजन्मनस्तन्तुमतीनन्दनस्य मुरारेः कृतिरभिनवमनर्घराघवनाम नाटकम्।

(प्रथम अंक)

कुछ विद्वान् अनंगहर्ष का नाम मायुराज मानते हैं, जिसने उदात्तराघव, नाटक लिखा। कुछ विद्वान् इनको अलग-अलग मानते हैं।

शक्तिभद्र—'आश्चर्यचूड़ामणि' नाटक मद्रास से प्रकाशित हुआ है। इनका समय आठवीं नौवींशती माना जाता है, क्योंकि ये शंकराचार्य के शिष्य माने जाते हैं, परन्तु शंकराचार्य एक उपाधि थी, अतः इस आधार पर समय निश्चित नहीं किया जा सकता।

हनुमन्नाटक—इस नाटक के रचयिता का नाम अज्ञात है। यह नाटक अष्टमीशती से पूर्व का है। इसका निश्चय ही मूलपाठ लघु होगा। इस समय इसका पाठ बहुत विशाल है और दो प्रमुखपाठ मिलते हैं—दामोदरकृत और मधुसूदनकृत। इसको 'महानाटक' भी कहते हैं और इसके उद्धरण ध्वन्यालोक में मिलते हैं। यह नाटक सम्पूर्ण रामायण के अभिनय की दृष्टि से लिखा गया है।

राजशेखर—ह्रासोन्मुखी संस्कृतललित साहित्य के राजशेखर सम्भवतः अन्तिम श्रेष्ठ महाकवि थे। इनका समय दशमी शती के प्रारम्भ में माना जाता है, क्योंकि राजशेखर ने अपने ग्रन्थों में आनन्दवर्धन (ध्वन्यालोककार), उद्‌भट आदि का उल्लेख किया है और अपने राजशेखर का उल्लेख सोमदेव ने यशस्तिलकचम्पू (960 ई०) में और धनंजय ने तिलकमंजरी में किया है। अतः राजशेखर का समय नवमींशती के अन्त या दशमीं शती के प्रारम्भ में था।

राजशेखर का जन्म एक कविपरिवार में हुआ। इनके पितामह का नाम अकालजलद, पिता का नाम दूर्दुक और माता का नाम शीलवती था। इनकी पत्नी अवन्तिसुन्दरी एक क्षत्रियकन्या थी जो एक श्रेष्ठ विदुषी भी थी। स्वयं राजशेखर ने अपने पूर्वज कवियों—सुरानन्द, तरल, कविराज, अकालजलद आदि का उल्लेख अपने नाटक बालरामायण में किया है। राजशेखर अपने को वाल्मीकि और भवभूति का अवतार मानते थे और 'बालकवि' तथा 'कविराज' इनकी उपाधियाँ थीं। राजशेखर प्रतिहारवंशीय कान्यकुब्जेश्वर महेन्द्रपाल के सभासद् और राजगुरु थे। राजशेखर ने बालरामायण के रचना काल तक छः ग्रंथों की रचना की थी —

'विद्धि नः षट्प्रबन्धान्' (बा० रा० 1।12)

इनमें चार नाटक हैं—कपूरमञ्जरी (सट्टक), विद्धशालभंजिका, बालरामायण और बालभारत, पञ्चम ग्रंथ है, लक्षणग्रंथ—काव्यमीमांसा। षष्ठ ग्रंथ अप्राप्य है—'हरविलास' जिसका उल्लेख हेमचंद्राचार्य ने काव्यानुशासन

में किया है। काव्यमीमांसा में राजशेखर ने स्वरचित 'भुवनकोश' ग्रंथ का उल्लेख किया है एवं सुभाषित ग्रन्थों में इनकी अनेक सूक्तियाँ मिलती हैं, अतः राजशेखर ने अन्य काव्य भी लिखे थे। राजशेखर के ग्रन्थों में उनकी उच्चकोटि की काव्यकला एवं पाण्डित्य के दर्शन होते हैं।

दिङ्नाग—'कुन्दमाला' नाटक के रचयिता को कुछ विद्वान् प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग समझते थे, जो कि गुप्तयुग के प्रारम्भ में हुये। परन्तु यह स्पष्टतः ही भ्रम था। क्योंकि नाटक के कुछ पाठों में लेखक का नाम धीरनाग भी मिलता है और नाटक पर भवभूति के उत्तररामचरित का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है अतः नाटककर्त्ता बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग न होकर अन्य अर्वाचीन कवि था। नाटक के सर्वप्रथम उद्धरण भोजदेव के शृंगार प्रकाश और रामचन्द्रगुचन्द्रकृत नाट्यदर्पण में मिलते हैं, अतः कुन्दमाला की रचना एकादश शती में हुई थी।

नाटक में छः अंक हैं और इसमें भवभूतिकृत उत्तररामचरित के समान उत्तरकाण्ड की कथा वर्णित है। राम ने वाल्मीकि आश्रम में गोमती में प्रवाहमान कुन्दपुष्पों को देखकर सीता का पता लगा लिया, इसलिये नाटक का नाम 'कुन्दमाला' रखा गया।

कृष्णमिश्र—प्रबोधचन्द्रोदय नाटक एक विशिष्ट प्रतीकात्मक रचना है जिसकी रचना कृष्णमिश्र ने की थी। नाटक में राजा कीर्तिवर्मा द्वारा राजा कर्णदेव की पराजय के उल्लेख के आधार पर कवि का समय 1065 ई० के लगभग निश्चित किया गया है। नाटक की रचना मन्दप्रज्ञ व्यक्ति को अद्वैत वेदान्त की शिक्षार्थ की गई है।

क्षेमीश्वर—इनके दो नाटक प्राप्य है—चण्डकौशिक और नैषधानन्द। क्षमीश्वर को राजशेखर के समकालीन माना जाता है।

क्षेमेन्द्र—कश्मीर के प्रसिद्ध कवि क्षेमेन्द्र संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे, इन्होंने संस्कृत के अनेक ग्रंथ लिखे। इनके द्वारा रचित चित्रभारत और कनक-जानकी—नामक दो नाटक अप्राप्य हैं। क्षेमेन्द्र का समय एकादश शती था।

रामचन्द्र—प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र के शिष्य रामचन्द्र ने द्वादशशती में अनेक नाटक लिखे, जिनमें प्रसिद्ध हैं—सत्यहरिश्चन्द्र, नलविलास, निर्भय-भीम और यादवाभ्युदय। इन्होंने रामकथा पर रघुविलास और राघवाभ्युदय नाटक लिखे। रामचन्द्र ने सभी श्रेष्ठ कथानकों पर नाटक लिखे। इनके कुल ग्रन्थों की संख्या प्रायः सौ है।

सोमदेव—चौहानवंशीय विग्रहराज ने 'हरकेलिनाटक' और उसके आश्रित सोमदेव ने 'विग्रहराज' नाटक लिखा। यह नाटक अजमेर में शिलालेख पर उत्कीर्ण रूप में मिलता है। दोनों ही नाटककार द्वादशती में हुये।

जयदेव—इनका अपर नामधेय पीयूषवर्ष और पक्षधरमिश्र था, इन्होंने चन्द्रालोक प्रसिद्ध लक्षणग्रंथ और 'प्रसन्नराघव' नाटक लिखा। इस नाटक में उत्तमगीतकाव्य मिलता है। इनकी अन्य प्रसिद्ध रचना गीतगोविन्द संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध है। इनका समय त्रयोदश शती था।

अर्जुनवर्मा—इन्होंने इसी त्रयोदश शती में 'पारिजातमंजरी' नाटिका लिखी, जो धारानगरी की भोजशाला के पत्थरों पर उत्कीर्ण है।

हस्तिमल—त्रयोदश शती में यह एक प्रसिद्ध नाटककार हुआ, जो कर्णाटक के राजा पांड्यराज का राजकवि था। इसके आठ नाटक मिले हैं—सुभद्रा, विक्रान्तकौरव, मैथिलीकल्याण, अंजनापवनंजय, उदयनराज, अर्जुनराज, भरतराज और मेघेश्वर।

विद्यानाथ—चतुर्दशती में इन्होंने प्रतापरुद्रीयकल्याण नाटक लिखा। इनके समकालीन अन्य नाटककार थे—विश्वनाथ, विरुपाक्ष, माणिक और वेदान्तदेशिक जिन्होंने क्रमशः सौगन्धिकाहरण, नारायणविलास, भरतानन्द और संकल्पसूर्योदय नाटक लिखे।

वामनभट्टबाण—इन्होंने पंचदशती में पार्वतीपरिणय, कनकलेखाकल्याण और श्रृंगारभूषण नाटक लिखे। कुछ लोग इसको और बाणभट्ट को एक समझते हैं जो भ्रम है।

गोकुलनाथ—इसने मुदितमदालसा और अमृतोदय नाम के दो नाटक लिखे। यह षोडशी शती में गढवाल के नरेश का राजकवि था।

जैन नाटक—सत्रहवीं शती में जैनकथानकों पर कुछ प्रसिद्ध नाटक लिखे गये, जिनमें वादिचन्द्र कृत 'ज्ञानसूर्योदय' दार्शनिक नाटक है तथा प्रसिद्ध जैन कथा भविष्यदत्तकथा के आधार पर पद्मसुन्दर ने 'भविष्यदत्तचरित' लिखा, जो अधूरा प्राप्य है। इनका अन्य नाटक है—पार्श्वनाथचरित।

भाणसाहित्य—रूपक के अनेक भेदों में भाण एकांकी प्रकार के नाटक थे। इस भाण[1] संज्ञक रूपक भेद पर संस्कृत में विशाल साहित्य रचा गया। इस समय भी अनेक भाण मिलते हैं जिनमें प्राचीनतम चतुर्भाणी हैं जिसका संक्षिप्त परिचय यहाँ लिखा जायेगा। चतुर्भाणी में चार प्राचीन कवियों के चार भाण हैं—शूद्रक विरचितपद्मप्राभृतक, ईश्वरदत्तविरचित धूर्तविट-संवाद, वररुचिकृत उभयाभिसारिका और श्यामलिकरचित पादताडितक। इस सम्बन्ध में यह श्लोक प्रसिद्ध है—

वाररुचिरीश्वरदत्तः श्यामलिकः शूद्रकश्च चत्वारः।

एते भाणान् बभणुः का शक्तिः कालिदासस्य।

"वररुचि, ईश्वरदत्त, श्यामलिक और शूद्रक ने इन भाणों की रचना की है इनके सामने कालिदास की भी क्या बिसात है।"

यह मृच्छकटिक के प्रसंग में सिद्ध किया जा चुका है कि उसका रचयिता प्रसिद्ध विक्रम संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य ही शूद्रक था, जिसका राजकवि कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तलकार) था। वररुचि, धन्वन्तरि आदि इसी शूद्रक विक्रम के नवरत्न थे। अतः वररुचि और शूद्रक सहित चारों ही लेखक समकालीन थे और इनका समय विक्रमपूर्व प्रथम शती था। इस सम्बन्ध में पहिले ही लिखा जा चुका है कि इतिहास या तिथिनिर्णय में स्वकल्पना के लिये कोई स्थान नहीं होता, अतः इनका काल निश्चित है।

शूद्रककृत पद्मप्राभृतक भाण में शश नामक विट कामुक कर्णीपुत्र की कामुकता का वर्णन करता है। ईश्वरदत्तकृत धूर्तविटसंवाद में विट श्रेष्ठिपुत्र कृष्णिलक की कामुकता का वर्णन संवादरूप में करता है। उभयाभिसारिका भाण में विट अभिसारिकाओं की चर्चा करता है। पादताडितक में विट ने अनेक वेश्याओं के चक्र में पड़कर अभिनय किया।

उत्तरकालीन अथवा अर्वाचीन भाणों में वत्सराजकृत (द्वादशशती) कर्पूर-चरित, वामनभट्टबाणकृत (षोडशीशती) शृङ्गारभूषण, रामभद्रदीक्षित

(1) आचार्यभरतमुनि ने भाण का लक्षण लिखते हुए लिखा है कि यह धूर्त विट के द्वारा नागरिकों के मनोरंजनार्थ अभिनीत किया जाता है जिसमें आत्मानुभूत वाक्यकथन, परवचनों का स्वयं उत्तरोत्तर कथन होता है, अनेक अवस्थाओं का यह धूर्तविट एकांकी भाण में अनेक चेष्टाओं से अभिनय करता है। (द्र० ना० शा० 18।107-110) हिन्दी में विट को को ही भाण (वाचाल) कहते हैं।

(सत्रहवीं शती) कृत शृङ्गारतिलक, वरदाचार्यकृत वसन्ततिलक, घनश्याम कृत मदनसंजीवनभाण प्रसिद्ध हैं ।

रूपकों के अन्य प्रसिद्ध रचयिता

प्रहसन—ये एक प्रकार के व्यंग्य नाटक होते हैं, जो समाज या व्यक्तियों की कुरीतियों पर प्रहार करते हैं । प्रहसन में संधि, संध्यंग, लास्यांग और अंकों सहित हास्य-व्यंग्य होता है । इसमें अनेक अंक होते हैं ।

प्राचीनतम प्रहसन बौधायनकृत 'भगवदज्जुक' उपलब्ध है इसका ठीक-ठीक समय ज्ञात नहीं परन्तु यह विक्रमपूर्व की रचना है। पल्लवनरेश महेन्द्र विक्रम या वर्मा कृत 'मत्तविलास' प्रहसन संस्कृत का प्रसिद्ध रूपक है। इसकी रचना सप्तमी शती के प्रारम्भ में हुई, क्योंकि महेन्द्रवर्मा 600 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ । इस प्रहसन में बौद्ध, जैन, पाशुपत, कापालिक आदि सामुदायिक पाखाण्डियों पर प्रहार किया गया है।

अन्य प्रसिद्ध प्रहसन हैं—शंखधरविरचित (द्वादशशती) लटकमेलकम्, ज्योतिरीश्वरकृत (त्रयोदशशती) धूर्तसमागम, कवितार्किक कृत कौतुकरत्नाकर और सामराजदीक्षित कृत धूर्तनर्तक इत्यादि ।

वत्सराज—रूपक के प्रायः सभी भेदों पर कालिंजर के राजा परमर्दिदेव के सभारत्न और सचिव वत्सराज ने रचनायें रचीं, यथा हास्यचूडामणि प्रहसन, कर्पूरचरितभाण, किरातार्जुनीय व्यायोग, त्रिपुरदाह डिम, समुद्र-मन्थन समबकार शर्मिष्ठाययाति अंक और रुक्मिणीपरिणय ईहामृग । इनका समय द्वादश एवं त्रयोदश शती के मध्य था ।

भास्कर—चौदहवीं शती में भास्कर ने उन्मतराघव एकांकी नाटक लिखा । इस नाटक का कथानक कालिदास के विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक से प्रभावित है । यह भास्कर प्रसिद्ध विजयनगर का प्रख्यात विद्वान् विद्यारण्य ही था, जिसने वेदान्त पर पञ्चदशी ग्रंथ लिखा।

अन्य एकांकी नाटकों में कुछ ये प्रसिद्ध हैं—कनकाचार्य (द्वादशती) कृत धनंजयविजय, प्रह्लाददेव (त्रयोदश शती) कृत परार्थपराक्रम और मोक्षादित्य कृत भीमविक्रम ।

संस्कृत के नाटक, प्रहसनादि अठारहवीं उन्नीसवीं एवं बीसवीं शती—आजतक लिखे जा रहे हैं, इस लघु इतिहास में न तो सबका परिचय संभव है और न अपेक्षित । अतः यह प्रकरण समाप्त करते हैं ।

अष्टम अध्याय

ऐतिहासिक अभिलेखों में ललितकाव्य

(संक्षिप्त ऐतिह्यदर्शन)

संस्कृत, प्राकृत (पाली आदि) में अभिलेख—शिला, भवन, स्तम्भ कूप, ताम्रपत्र, आदि पर अत्यन्त प्राचीन काल से—कृतयुग, त्रेता, द्वापर में भी लिखे जाते थे, यथा मुद्रिका (अङ्गुलीयक), बाण आदि पर प्राचीन राजाओं के नाम अङ्कित रहते थे, ऐसा इतिहासपुराणों से सिद्ध है, अतः लेखन (रेखन) प्राचीन भारत के लिये कोई नवीन आविष्कार नहीं था। परन्तु अभी तक अशोकमौर्य से पूर्व के कोई अभिलेख पुरातत्व की खोजों में प्राप्त नहीं हुये हैं, इसका कुछ भी कारण हो परन्तु इसका कारण लेखनाभाव नहीं था।

अलंकृत ललितसंस्कृत का सर्वप्रथम उल्लेखनीय शिलालेख शक क्षत्रप रुद्रदामा का प्राप्त हुआ है। अन्य प्रसिद्ध अभिलेख हैं—

(1) पुलुमावि सातवाहन का नासिकशिलालेख।

(2) समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति—हरिषेणकृत (कालिदासद्वितीय)।

(3) चन्द्रगुप्त का मिहिरावली लौहस्तम्भ।

(4) चन्द्रगुप्त का उदयगिरि गुहालेख।

(5) वत्सभट्टिकृत मन्दसौरप्रशस्ति।

(6) स्कन्दगुप्त का गिरनारशिलालेख।

(7) यशोधर्मराज का दशपुरशिलालेख।

(8) पुलकेशी द्वितीय का एहोलशिलालेख।

उपर्युक्त शिलालेखों की तिथि आदि के विषय में पर्याप्त भ्रम या मतभेद है, यहाँ इसके निराकरण का प्रयत्न किया जायेगा। वैसे तो प्राचीन अभिलेखों में विपुलकाव्य मिला है जिस पर विशाल ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, परन्तु हम केवल उपर्युक्त शिलालेखों का ही संक्षिप्त पर्यालोचन करेंगे। इससे पूर्व यह ध्यातव्य है कि ये शिलालेख संस्कृतकाव्य के उत्तम निदर्शन इसलिये

हैं, क्योंकि इनकी रचना तत्कालीन किसी राष्ट्रकवि या सर्वश्रेष्ठ कवि ने की थी, उदाहरणार्थ समुद्रगुप्त की प्रयागप्रशस्ति का लेखक हरिषेण ही रघुवंश-कार कालिदास द्वितीय था, जो विश्ववन्द्य एवं सर्वश्रेष्ठ कवि हुआ है, यह हम समुद्रगुप्तकृत कृष्णचरित के प्रमाण से इसी पुस्तक में अन्यत्र सिद्ध कर चुके हैं। अन्य इसी प्रकार अन्य कवियों के सम्बन्ध में समझना चाहिये।

क्या अभिलेख ऐतिहासिक तिथियों के निर्णायक हैं—अभिलेखों में अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्यों के साथ लेखकारयिता राजाओं के संवत् या अन्य प्रसिद्ध सम्वत् का उल्लेख हुआ है। परन्तु उसमें तुलनात्मक दूसरे सम्वत् का उल्लेख न होने के कारण आधुनिक इतिहासकारों ने मनमानी गणनायें कर या कल्पनाएं कर रखी हैं। क्योंकि संवत् अनेक प्रकार से प्रचलित होते थे, इनमें तीन चार कारण प्रमुख थे—(1) वंशप्रवर्तन (2) वंशसमाप्ति, (3) युद्धविजय और (4) राज्याभिषेक। इस सम्बन्ध में पर्याप्त भ्रम उत्पन्न किया गया है, यथा शूद्रक विक्रम ने 57 ई० पू० शकों पर विजय प्राप्त करके एक सम्वत् चलाया, उस सम्वत् को ही अनेक इतिहासलेखक मालव सम्वत् या कृत सम्वत् मानते हैं। क्या शूद्रक विक्रम मालवजाति का मूलवंश प्रवर्तक था, फिर मालव सम्वत् और विक्रमसम्वत् एक कैसे हो सकते हैं? इसी प्रकार द्वितीय विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त साहसांक ने 135 वि० में एक शकविजय के उपलक्ष में एक पृथक् सम्वत् चलाया जिसे शकसम्वत् कहते हैं, परन्तु आधुनिक विद्वान् उसका सम्बन्ध शकराज्य (क्षत्रपों) से जोड़कर 135 वि० में शकों का प्रारम्भ मानते हैं। एक सम्वत् गुप्तों के प्रारम्भ से चला और एक सम्वत् गुप्तों के अन्त से चला, इन दोनों को गुप्त सम्वत् ही कहा जाता था, जिस प्रकार शक सम्वत् अनेक थे, परन्तु आधुनिकों ने उन सबको एक मान रखा है, अतः सम्वतों की गणना के सम्बन्ध में आधुनिक इतिहासों में महान् भ्रम हैं, हठवश अंग्रेजों ने ऐसा मान रखा था, परन्तु आज स्वतन्त्र भारत में भी कोई सत्य इतिहास के विषय में नहीं सोचता। इसका कारण अज्ञान तो है ही, दासमनोवृत्ति और स्वार्थ भी है, निहितस्वार्थ के कारण ही सत्य को छिपाया जा रहा है। सत्य प्रकट होने पर राजनीति, उद्योग, शिक्षा, संस्कृति आदि क्षेत्रों के मठाधीशों का एकाधिकार और आसन डोल जायेगा, इसीलिये सत्य को जानबूझकर छिपाया जा रहा है, अतः प्रबुद्ध विद्वानों को सत्य प्रकट करने लिये उठ खड़ा होना चाहिये क्योंकि अन्त में सत्य की जीत होती है, "सत्यमेव जयते नानृतम्" यह ऋषिवाक्य है। अतः सत्य का निर्णय होने पर ही शिलालेख भी सत्य के निर्णायक होंगे।

रुद्रदामा का गिरनार शिलालेख— गोतमीपुत्र शातकर्णि (सातवाहनवंश का 23 वां राजा) के समकालीन क्षहरातशकों का चष्टन नहपान हुआ। नहपान के वंश में क्रमश: जयदामा और रुद्रदामा हुये। रुद्रदामा की पुत्री वशिष्ठीपुत्र श्री शातकर्णि को विवाही। पुराणों के अनुसार शकों के 18 राजाओं ने 380 वर्ष राज्य किया और शकों का अन्त 135 वि० में चन्द्रगुप्त साहसांक ने किया, अत: शकराज्य का प्रारम्भ 245 वि० पू० और शकराज्यान्त 135 विक्रम सम्वत् में हुआ। प्रसिद्ध शकसम्वत् का सम्बन्ध शकराज्य के अन्त से है—शका नाम म्लेच्छजातयो राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिता: स कालो लोके शक इति प्रसिद्ध:।" (बृहत्संहिता उत्पलटीका 8।20, तथा खाद्यखाद्यक आमराजटीका, पृ० 2) अत: चष्टनशकों से इस शक सम्वत् का सम्बन्ध इतना ही है कि उनके वंश का अन्त इस वर्ष हुआ। अत: पुराणगणना से रुद्राक्षमा का समय 212 वि० पू० था। यही मत पं० भगवद्दत्त का है।[1] अत: गिरनार शिलालेख 150 ई० या शकसम्वत् 72 का नहीं; 212 वि० पू० का है। अतः इस सम्बन्ध में यह भ्रम मिट जाना चाहिये।

यह शिलालेख गद्य में है और इसमें लेखक का नाम नहीं है, परन्तु यह किसी श्रेष्ठ गद्यकवि ने लिखा था, क्योंकि इसमें स्फुट, मधुर, कान्त और उदार गद्य मिलता है। इसमें उत्तम अलंकृत भाषा का श्रेष्ठ निदर्शन है। इस शिलालेख में सुदर्शन सरोवर के जीर्णोद्धार का उल्लेख मात्र है किसी राजा की प्रशस्ति नहीं परन्तु रुद्रदामा ने इसमें वासिष्ठीपुत्र पुलोमावि सातवाहन की पराजय और अपनी पुत्री के पुलोमावि के साथ विवाह का उल्लेख किया है। अत: इसमें कई ऐतिहासिक तथ्य भी कथित हैं।

हरिषेणकृत प्रयागप्रशस्ति— इसका लेखक रघुकार कालिदास द्वितीय था, यह पहिले सिद्ध किया जा चुका है। समुद्रगुप्त ने 51 वर्ष और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने 36 वर्ष राज्य किया, अतः चन्द्रगुप्त ने 135 वि० स० में शक-विजय करके सम्वत् चलाया, अत: प्रशस्ति का समय वि० सम्वत् 52 वि० स० से 135 वि० के मध्य में समझनी चाहिये। अत: इसका समय 350 ई० न होकर 100 ई० के आस-पास था।

प्रयागप्रशस्ति गद्यमिश्रित है। इसमें कालिदास ने अपने प्रसिद्ध मन्दाक्रान्ता और स्रग्धारा छन्दों का प्रयोग किया है। अनेक अलंकारों यथा रूपक,

(1) भा० वृ० इ० भाग 2, पृ० 315।

उपमा, अनुप्रास, और यथासंख्य अलंकारों का प्रयोग है, समासमयी भाषा द्रष्टव्य है, जो समुद्रगुप्त के विशेषणों के रूप में है—

निशितविदग्धमतिगान्धर्वललितैर्व्रीडितत्रिदशपतिगुरुतुम्बरुनारदादेर्विद्वज्जनोपजीव्यनकेकाव्यक्रियाभिः प्रतिष्ठितकविराजशब्दस्य। इसमें समुद्रगुप्त को संगीतज्ञ और कविराज बताया गया है। अपने काव्य रघुवंश से स्वरचित प्रयागप्रशस्ति की तुलना द्रष्टव्य है—

रघुवंश	**प्रयागप्रशस्ति**
चरणायोर्नखरागसमृद्धिभिः।	चरणतलप्रमृष्टान्यनरपतिकीर्तेः।
क्षितावभूदेकधनुर्धरोऽपि सः।	पृथिव्यामप्रतिरथस्य।
स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूति।	स्वभुजबलपराक्रमैकबन्धोः।
प्रणीतप्रतिकारःसंरम्भोहि महात्मनाम्।	भक्त्यवनतिमात्रग्राह्यमृदुहृदयस्य।

इस तुलना से स्पष्ट है कि दोनों का रचयिता एक ही कालिदास था।

चन्द्रगुप्तसाहसांक सम्बन्धी शिलालेख—यह शूद्रक विक्रम के पश्चात् का सर्वाधिक प्रसिद्ध विक्रमादित्य था, जिसका द्वितीय विरुद साहसांक भी प्रसिद्ध था—

विक्रमादित्यः साहसाङ्कः शकान्तकः (अमरटीका 2।8।2)

प्राचीनकाल में साहसांकचरितकाव्य अति प्रसिद्ध था।

चन्द्रगुप्त के शिलालेख मथुरा, साँची, उदयगिरि, मेहरौली आदि में मिल चुके हैं। मेहरौलीस्तम्भ लेख में इसका केवल चन्द्र नाम मिलता है। चन्द्र स्वयं महान् कवि और काव्य प्रेमी था। एक-दो उदाहरण शिलालेखकाव्य का द्रष्टव्य है—

प्रांशुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः।

वत्सभट्टिकृत मन्दसौरप्रशस्ति—इतिहास में यह अत्यन्त काव्यप्रशस्ति है जिसको वत्सभट्टि नाम के प्रसिद्ध कवि ने लिखा। रावणवधकाव्य है के कर्त्ता भट्टि और प्रशतिकर्त्ता वत्सभट्टि एक हो सकते हैं, क्योंकि 375 विक्रम सम्वत् में अन्तिम गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त द्वितीय का अन्त हो गया था, क्योंकि इसी समय वलभी के मैत्रकों ने गुप्तसाम्राज्य का अन्त कर दिया था, अतः पहिले वत्सभट्टि गुप्तसम्राट् का राजकवि था। पुनः वह वलभी के राजा श्रीधरसेन का राजकवि बन गया। अतः यह प्रशस्ति कुमारगुप्त द्वितीय के राज्यकाल में 331

वि० से 375 वि० स० के मध्य लिखी गई। इसी समय दशपुर (मंदसौर) में विश्ववर्मा का पुत्र बन्धुवर्मा शासन करता था, उसके प्राचीन सूर्यमन्दिर का निर्माण 493 मालव् सम्वत् में निर्माण हुआ और जीर्णोद्धार (529 वर्ष पश्चात्)।

इस प्रशस्ति में दशपुर का मनोहारी वर्णन है—

> तटोत्थवृक्षच्युतैकपुष्पविचित्रतीरान्तजलानिभान्ति।
> प्रफुल्लपद्माभरणानि यत्र सरांसि कारण्डवसंकुलानि।

"तटवर्ती वृक्षों से गिरे हुये पुष्पों के कारण रंगरंजित जलतट सुशोभित है तथा प्रफुल्लितकमलभूषणों से अलंकृत तालाव कारण्डव पक्षियों से भरे पड़े हैं। वत्सभट्टि के प्रशस्तिकाव्य पर मेघदूत का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है—

तडिल्लताचित्रसिताभ्रकूटतुल्योपमानि गृहाणि यत्र (वत्सभट्टि विद्युद्वन्तं··· तुंगमलिहाग्राः।

प्रसादास्त्वं तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः॥ (उत्तरमेघ) प्रशस्ति में कुल 44 पद्य हैं, जिसमें रसव्यञ्जना ललितभाषाप्रयोग के साथ उपमा, रूपक, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा आदि के उत्तम निदर्शन प्राप्त होते हैं—

'स्मरवंशगततरुणजनवल्लभाङ्गनाविपुलकान्तपीनोरू।'

इस पद्य में ललितपद्य का दर्शन होता है।

स्कन्दगुप्त के शिलालेख—इस गुप्तसम्राट् का 216 वि० स० से 241 वि० तक शासन था। इसके अनेक शिलालेख मिल चुके हैं, जिनमें गिरनार शि०, भीटारी शि०, जूनागढ़ शि० प्रसिद्ध है, इन शिलालेखों के काव्यकर्त्ताओं के नाम अज्ञात हैं, परन्तु हैं ये काव्य के उत्तमनिदर्शन।

जू० शि० का उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

> नरपतिभुजगानां मानदर्पात् फणानाम्।
> प्रतिकृतिर्गरुडाज्ञाम् निर्विषीं चावकर्त्ता॥

भिटारी शिलालेख का काव्य एकदम किसी महाकाव्य का सा अंश प्रतीत होता है—

---

(1) "वल्लभ का संवत् वलभी के राजा बलभ के नाम पर है। यह संवत् शककाल के 241 वर्ष पश्चात् है। शककाल विक्रम से 135 वर्ष पश्चात् है।" (अलबेरुनी का भारत, भाग 1, पृ० 182)।

पितरि दिवं उपेते विप्लुतां वंशलक्ष्मीम् ।
भुजबलविजितारिर्यः प्रतिष्ठाप्य भूपः ।
जितमिति परिपोषान् मातरं साश्रुनेत्राम् ।
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपेतः ॥

गिरनार शि० का काव्य अति प्रसिद्ध है। उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'नदीमयहस्त इव प्रसारितः।'

इसी प्रकार मन्दसौर में प्राप्त शि० चन्द्रगुप्त विक्रमाङ्क के पुत्र गोविन्द-गुप्त (कुमारगुप्त) की प्रशस्ति मिलती है। इसका (रचयिता) कवि था।

यशोधर्मराज का दशपुर शिलालेख—हूणविजेता यशोधर्मा भारतदिग्विजय करके दशपुर में विजयस्तम्भ स्थापित किया। आधुनिक इतिहास इसमें उल्लिखित मालव सम्वत् को विक्रम सम्वत् मानकर यशोधर्मा का समय 589 वि० में मानते हैं। पं० भगवद्दत्त के अनुसार मालव सम्वत् 400 वि० पू० चला, इस दृष्टि से यशोधर्मा का समय 189 वि० निश्चित होता है। यह समय थोड़ा ही इधर उधर हो सकता है, अधिक नहीं क्योंकि हूणों का प्राबल्य गुप्त काल में ही था। अतः यशोधर्मा का विजयस्तम्भ छठी शती का नहीं विक्रम की द्वितीय शती का है। इस स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख की काव्यकला उच्चकोटि है, वसन्तवर्णन का एक अंश अवलोकनीय है—

यस्मिन् काले कलमृदुगिरा कोकिलानां प्रलापाः।
भिन्दन्तीव स्मरशरनिभाः प्रोषितानां मनांसि ॥

'इस वसन्त ऋतु में कोयल का सुन्दर एव मृदुल प्रलाप कामदेव के बाणों के सदृश प्रवासिनीकामनियों के मन को भेदता है।"

इनके अतिरिक्त और विपुल ऐतिहासिक शिलालेखों पर काव्य हैं।

पुलकेशी द्वितीय का एहोल शिलालेख—यह दाक्षिणात्य प्रसिद्ध नृपति पुलकेशी द्वितीय के समय श्रेष्ठ कवि रविकीर्ति ने लिखा। रविकीर्ति ने अपने को कालिदास और भारवि का अनुकर्त्ता कहा है—इसका समय 624 ई० माना जाता है—

येनायोजि नवेऽश्मनि अर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः ।।

पुलकेशी प्रथम की प्रशस्ति में कवि ने उत्तम काव्य रचा—

रणपराक्रमलब्धजयश्रिया सपदि येन विघ्नमशेषतः ।
नृपतिगजगन्धेन महौजसा पृथुकदम्बकदम्बकम् ।।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक शिलालेख मिले हैं जो राजपूत राजाओं के समय तक लिखे गये । इसी प्रकार बृहत्तर भारत में यवद्वीप, बालिद्वीप, कम्बोज, सुमात्रा, सिंहलादि में अनेक संस्कृत शिलालेख मिले हैं, जिनमें उत्तम काव्य है । इस विषय का इस पुस्तक में अधिक विस्तार अभीप्सित नहीं ।

प्राचीन भारत में काव्यों और नाटकों को शिलाओं पर उत्कीर्ण कराया जाता था । दो नाटक अजमेर में 12वीं शती में उत्कीर्ण किये हुये मिले हैं— एक 'हरकेलिनाटक' और दूसरा 'विग्रहराज' नाटक । द्वितीय का रचयिता सोमदेव कवि था । ये दोनों नाटक विग्रहराजदेव विशालदेव के राज्यकाल (द्वादशीशती) में उत्कीर्ण हुये ।

नवम — अध्याय

ऐतिहासिक काव्यसाहित्य

इतिहास पुराण प्रकरण में लिखा जा चुका है कि स्वयम्भू से कृष्णद्वैपायन पर्यन्त 28 व्यासों एवं अनेकों अथर्वाङ्गिरस ऋषियों ने विपुल ऐतिहासिक काव्य का निर्माण किया, इनमें कवि उशना शुक्राचार्य महत्तम माने जाते थे। कृतयुग, त्रेता और द्वापर में पुरूरवाचरित,[1] ययातिचरित,[2] नहुषचरित्र,[3] देवर्षिचरित,[4] रघुचरित,[5] रामचरित (रामायण) जैसे ऐतिहासिक काव्य लिख गये थे इनमें से केवल अन्तिम रामचरित ही उपलब्ध और प्रसिद्ध है। महाभारत में ययाति, मान्धाता अम्बरीष, पितृगण, शुक्र, इन्द्र आदि द्वारा रचित गाथायें मिलती हैं, इससे सिद्ध होता है कि इन विद्वानों ने भी ऐतिहासिक काव्य लिखे थे, इन्हीं पुरातन इतिहासों में से अनेक गाथायें अथर्ववेद, शतपथब्रा०, ऐतरेयब्रा० जैमिनीयब्रा०, ताण्ड्यब्रा० आदि में मिलती हैं। ऋग्वेद में भी इतिहास मिश्र गाथाओं का उल्लेख मिलता है, अतः ऐतिहासिक काव्य भारत में सनातनकाल से लिखा जाता रहा है, यह कोई नवीन आविष्कार नहीं था।

महाभारतयुग के अनन्तर व्याडि ने 'बलचरित' महाकाव्य, पाणिनि ने 'पातालविजय' या 'जाम्बवतीजय' काव्य, वररुचि कात्यायन ने 'स्वर्गारोहण' काव्य लिखे, ये सभी ऐतिहासिक काव्य थे। पतञ्जलि ने संभवतः 'महानन्द'

---

(1) मत्स्यपुराण (24/28) (२) महाभारत आदिपर्व (3) मत्स्यपुराण (42/29), (4) शान्तिपर्व (212/33) (5) कालिदास (द्वि०) ने रघुवंश में रघु का चरित किसी प्राचीन इतिहास काव्य के आधार पर लिखा था, रघुचरित प्राचीनकाल में प्रसिद्ध था, इसका सङ्केत महाभारत, आदिपर्व में मिलता है—
'विक्रमी रघुः' (आदिपर्व 1।172), इनके अतिरिक्त यहाँ सैकड़ों राजाओं के नाम हैं—विद्वद्भिः कथ्यते लोके पुराणैः कविसत्तमैः, (आदि० 1/182)।

काव्य लिखा था, जो संभवत नन्दचरित ही हो। इसके साथ मौर्ययुग के प्रारम्भ में चन्द्रगुप्त के जीवनकाल में ही आदिमौर्य सम्राट का चरित 'चन्द्रचूडचरित' नाम से लिखा गया। इसके उपलक्ष में आचार्य चाणक्य ने इस काव्य के रचयिता अन्तरङ्ग कवि को तीन स्वर्ण रत्नावली, तप्तस्वर्ण की दो लाख स्वर्ण मुद्राएं और तीन लाख रुपए और सौ ग्राम पुरस्कार में दिये, यह उल्लेख श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत ग्रन्थ में मिलता है—

निष्पन्ने सति चन्द्रचूडचरितैस्तत्तन्नृपप्रक्रियाजातैः
सार्द्धममरातिराजकशिरोरत्नावलीनां त्रयम्।
तप्तस्वर्णशतानि विंशतिशती रूपस्य लक्षत्रयं ग्रामाणां।
शतमन्तरङ्गकवये चाणक्यचन्द्रो ददौ॥

बौद्धों के ललितविस्तर, अश्वघोषकृत बुद्धचरित, दिव्यावदान मञ्जुश्रीमूलकल्प आदि भी ऐतिहासिक काव्य हैं।

शूद्रक विक्रम पर अनेक ऐतिहासिक काव्य लिखे गये, रामिल सौमिल ने 'शूद्रककथा' लिखी। 'विनयवतीशूद्रकम्' भी एक ऐतिहासिक कथा थी। एक 'शूद्रकजय' काव्य आवन्तिक कवि मातृगुप्त ने लिखा, जिसके पुरस्कार में मातृगुप्त को कश्मीर का राज्य मिला—

मातृगुप्तो जयति यः कविराजो न केवलम्।
काश्मीरराजोऽप्यभवत् सरस्वत्याः प्रसादतः।
विधाय शूद्रकजयं सर्गान्तानन्दमद्भुतम्।
न्यदर्शयद्वीररसं कविरावन्तिकः कृती॥ (कृष्णचरित 21,22)

दण्डी के मित्रकवि ललितालय ने एक 'शूद्रकचरित' लिखा था।

साहसाङ्कचरित—चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य साहसांक का जीवनचरित 'साहसांकचरित' संभवतः कालिदास ने लिखा था—

'व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्कोनृपः।[1]

शूद्रक के अनन्तर यही संस्कृत और संस्कृतकाव्यों का सर्वाधिक गुणग्राही सम्राट था—

केऽभूवन्नाद्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः।
काले श्रीसाहसांकस्य के न संस्कृतवादिनः॥[2]

वह स्वयं भी कवि था और उसके पूर्वज पाञ्चालाधिपति हरिश्चन्द्र ने 'कर्णकीर्ति' काव्य लिखा था—

---

(1) सुभाषितरत्नावली। (2) भोजराजकृत सरस्वतीकण्ठाभरण (215)

निजकीर्तेर्वै जयन्ती कर्णकीर्ति चकार यः ।
हरिश्चन्द्रो विजयते पाञ्चालक्षितिपः कविः ।। (स०च० 20)

यही भट्टार हरिश्चन्द्र नाम से प्रसिद्ध है—

पदबन्धोज्ज्वलोहारी कृतवर्णक्रमास्थितिः ।
भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गन्धबन्धो नृपायते ।। (हर्षचरित)

शकारि चन्द्रगुप्त साहसांक के चरित 'साहसांकचरित्र' के अनुकरण पर उत्तरकाल में अनेकों राजाओं ने यह उपाधि-धारण की और इस समय पद्मगुप्त (कालिदास तृतीय) का नवसाहसांकचरित और विल्हण का विक्रमाङ्कदेव चरित काव्य मिलता है जो प्राचीन 'साहसांकचरित्र' के ही अनुकरण पर लिखे गये, इनका परिचय आगे लिखा जायेगा ।

कुन्तलेश प्रवरसेन ने 'सेतुबन्ध' काव्य लिखा । कहते हैं कि कालिदास ने इसके रचने में प्रवरसेन की सहायता की थी । आर्यमंजुश्रीमूलकल्प भी एक ऐतिहासिक काव्य है । यह ग्रन्थ गुप्तराज्य के अन्त (375 वि०) में लिखा गया, इसमें बुद्ध से गुप्तराज्यकाल तक की ऐतिहासिक घटनाओं का विवरण है ।

वाक्पतिराज का प्राकृत काव्य गउड़वह (गौडवध) एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य है । इसमें यशोवर्मा द्वारा गौडवध का इतिवृत्त वर्णित है, यह कवि भवभूति के समकालीन था ।

बाणभट्टकृत 'हर्षचरित' एक प्रसिद्धतम ऐतिहासिक गद्यकाव्य है। प्राचीनतम उपलब्ध ऐतिहासिक गद्यकाव्य यही है, इसका परिचय अन्यत्र लिखा जा चुका है, अतः पुनरावृत्ति अवांछनीय है ।

परिमलपद्मगुप्त (कालिदास) कृत नवसाहसांकचरित—ये महाकवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हुये । इन्होंने धारानगरी के प्रतापी राजा वाक्पतिराज, प्रथम का ऐतिहासिक चरित 'नवसाहसांकचरित्र' में लिखा है । इस काव्य में 18 सर्ग हैं । कवि के पिता का नाम श्री मृगांकगुप्त था और के नाम 'परिमल', 'पद्मगुप्त' और 'कालिदास' प्रसिद्ध थे । कवि ने प्रारम्भ में श्रीभर्तृमेण्ठ का नाम लिया है और वैदर्भी रीति का उल्लेख किया है । काव्य में धाराधिपति, भोज के पिता नवसाहसांक, सिन्धुराज का चरित्र वर्णित किया है इसका मुख्य नाम वाक्पतिराज था अन्य नाम उल्लिखित हैं—

मुञ्ज, उत्पलराज, नवसाहसांक और सिन्धुराज। कवि ने प्रारम्भ में वाक्पतिराज को नमस्कार किया है—

सरस्वतीकल्पलतैककंदं वन्दामहे वाक्पतिराजदेवम्।

उसके पुत्र सिन्धुराज भोज के कहने पर कवि ने वाक्पतिराज का चरित 'नवसाहसांकचरित' के नाम से 18 सर्गों में लिखा। पद्मगुप्त ने काव्य की रचना 1005 ई० के आस-पास की, पद्मगुप्त ने काव्य के प्रारम्भ में शिवन्दना के अनन्तर प्राचीन कवि की प्रशंसा की है, तदनन्तर उज्जयिनीवर्णन और नायक वर्णन किया है। महाकाव्य में कालिदास, भर्तृमेण्ठ, भारवि, बाण आदि के काव्य का प्रत्यक्ष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, वह अपने समय का राष्ट्रकवि था, इसीलिये उसे कालिदास की महार्ह उपाधि मिली। मम्मट जैसे साहित्यालोचक ने पद्मगुप्त के काव्य को उच्चकोटि का माना तथा अलंकारों के उदाहरणार्थ में श्लोक उद्धृत किये हैं—

मम्मट ने पर्यायालंकार का यह उदाहरण लिया है—

बिम्बोष्ठ एव रागस्ते तन्वि पूर्वमदृश्यत।
अधुना हृदयेऽप्येष मृगशावाक्षि लक्ष्यते॥

पहिले यह राग (काम राग-रति) ओष्ठबिम्ब में दिखलाई पड़ा, तदनन्तर अब यह है मृगयनयनि! हृदय में परिलक्षित हो रहा है। विषमालंकार का उदाहरण है—

शिरीषादपि मृद्वङ्गी क्वेयमायतलोचना।
एष क्व च कुकूलाग्निकर्कशो मदनानलः॥ (16।28)

'यह विशालनेत्रा कामलाङ्गी शिरीष से भी अधिक कोमल है और कहाँ यह कामाग्नि दावाग्निसदृश कठोर।

कविकल्पना और मनोहरकाव्य का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है—जिसमें श्रेष्ठ उपमा और रूपक मिलते हैं—

उच्छिन्दतः क्ष्मासरसीं विगाह्य धर्मक्रियापङ्कजिनीवनानि।
स्वैरप्रचारः कलिकुञ्जरस्य येनांकुशेनेव बलान्निरुद्धः॥ (1।85)

'पृथिवीरूपीसरोवर में मन्थन करके धर्मक्रियारूपी कमलिनीवन का विनाश करने वाले कलिरूपी मदमत्तहस्ती के स्वच्छन्दविचरण का जिस राजा ने बलपूर्वक अंकुश से रोक दिया।'

कवि ने बाण की कल्पनाओं का अनुकरण किया है—

यस्मिन् वहत्यम्बुधिनेमिमुर्वीम् मौर्वीकिणश्यामलदीर्घदोष्णि ।
विभाव्यते पौरवराङ्गनानाम् मध्यं परं धाम दरिद्रतायाः ॥ (1173)

'जिस प्रतापी मुञ्ज की धनुषकोटि से चिह्नित दीर्घभुजा वाले, सागरान्ता पृथिवी का शासन करते हुये केवल पौर वनिताओं के कटिभाग में दरिद्रता (क्षीणता-पतली) दिखलाई पड़ती थी, अन्यत्र राज्य में नहीं।"

महाकवि बिल्हणकृत विक्रमांकदेवचरित—इस महाकाव्य में प्रसिद्ध काश्मीरी महाकवि बिल्हण ने चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ का चरितवर्णन किया है, जिसका राज्यकाल 1076 ई० से 1127 ई० तक था। बिल्हण कालिदासादि के अनुकरण पर चालुक्यराज को साहसांक और विक्रमादित्य पदवी से विभूषित करता है।[1] ये उपाधियाँ निश्चय शूद्रक विक्रम और चन्द्रगुप्त साहसांक के अनुकरण पर रखी गई थीं।

बिल्हण के प्रपितामह का नाम मुक्तिकलश, पितामह का नाम राजकलश, पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागदेवी था। कवि ने अपना परिचय स्वयं महाकाव्य के अन्तिम एवं अठारहवें सर्ग में लिखा है। तदनुसार श्रीनगर (प्रवरपुर) के निकटवर्ती खोनमुष ग्राम में इनका जन्म हुआ था। इनका परिवार विद्वानों का परिवार था, अतः बिल्हण ने व्याकरण, इतिहास, पुराण, वेदादिशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। वे यशस्वी विद्वान् के रूप में कश्मीर से निकल कर भारत यात्रा पर निकले। उन्होंने प्रसिद्ध विद्वत्केन्द्रों और तीर्थों पर कुछ दिन वास किया, यथा मथुरा, वृन्दावन, कान्यकुब्ज, प्रयाग, काशी अयोध्या आदि। वे जब धारानगरी पहुंचे (1055 ई०) तब भोज का देहान्त हो चुका था। सोमनाथ का दर्शन करते हुये वे रामेश्वर तक देखने गये। उस समय चालुक्य विक्रमादित्य कल्याण का राजा था। अन्तिम दिनों में वे उसी के आश्रम में रहे और उसकी कीर्ति गाने के लिये उन्होंने 18 सर्गों का महाकाव्य 'विक्रमाङ्कदेवचरित' लिखा।

चालुक्यवंश की चार शाखायें थी, इनमें कल्याण के चालुक्य प्रसिद्ध थे, अन्य चालुक्य थे—वातापि, वेगि और गुर्जर। इसी वंश कुछ प्रमुख पूर्व पुरुषों का उल्लेख बिल्हण ने किया है, यथा चुलुक से चालुक्यवंश चला।

---

(1) श्री विक्रमादित्यथावलोक्य स चिन्तयामास नृपः कदाचित् ।
अलंकरोत्यद्भुतसाहसांकः सिंहासनं चेदयमेकवीरः ॥ (3।2627)
त्वद्भिया गिरिगुहाश्रये स्थिताः साहसांकगलितत्रपा नृपः ।
(वि० च० 5।40)

इसी वंश में तैलप और आहवमल्ल राजा प्रतापी हुये। तदनन्तर कवि ने विक्रमांकदेव का जन्म आदि विस्तार से लिखा है—अठारह सर्गों की संक्षिप्त विषयानुक्रमणी इस प्रकार है—

(1) मंगलाचरण और चालुक्यवंश वर्णन
(2) राजधानीवर्णन, आहवमल्ल की तपस्या
(3) विक्रमांकदेव—बालचरित
(4) दिग्विजय
(5) द्रविड कन्या से विवाहवर्णन
(6) युद्धवर्णन
(7) वसन्तवर्णन
(8) करहाटकन्यारूपवर्णन
(9) चन्द्रलेखास्वयंवर
(10) विहारवर्णन
(11) सन्ध्यावर्णन
(12) ग्रीष्मवर्णन
(13) वर्षावर्णन
(14) शरद्वर्णन
(15) जयसिंहपराजयवर्णन
(16) हेमन्तादिवर्णन
(17) विक्रमशासनवर्णन
(18) कविवंशवर्णन

महाकवि बिह्लण ने काव्य में वैदर्भीरीति को ग्रहण किया है—

सहस्रशः सन्तु विशारदानां वैदर्भलीलानिधयः प्रबन्धाः ।
तथापि वैचित्र्यरहस्यलुब्धाः श्रद्धां विधास्यन्ति सचेतसोऽत्र ।। (1।13)

"वैदर्भीरीति के विशारदकवियों के सहस्रों काव्य होते हुये भी विचित्र-रहस्यों (चमत्कारों) के लोभी सहृदय पाठक इस काव्य में श्रद्धा रखेंगे।" रस, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि की आत्मश्लाघा करते हुये कवि ने लिखा है—

रसध्वनेरध्वनि ये चरन्ति संक्रान्तवक्रोक्तिरहस्यमुद्राः ।
तेऽस्मत्प्रबन्धानवधारयन्तु कुर्वन्तु शेषाः शुकवाक्यपाठम् ।।

"जो सहृदय ज्ञानी पाठक रसध्वनि मार्ग पर चलने वाले हैं और वक्रोक्ति रहस्य के वेत्ता हैं वे ही हमारे काव्यपाठ के अधिकारी हैं, शेष केवल तोता-रटन्त करने वाले हैं।"

बिल्हण के काव्य में रस, ध्वनि और वक्रोक्ति के साथ श्लेष, यमक, अनुप्रास, उपमादि अलंकारों की अद्भुत छटा दृष्टिगोचर होती है। कवि ने प्रायः उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग करके काव्य के प्रारम्भिक आठ पद्यों में देवस्तवन किया है—प्रथम पद्य में—

> भुजप्रभादण्ड इवोर्ध्वगामी स पातु वः कंसरिपोः कृपाणः ।
> यः पाञ्चजन्यप्रतिबिम्बभङ्ग्या धाराम्भसः फेनमिव व्यनक्ति ।।

'कंसरिपु' श्रीकृष्ण का ऊर्ध्वगामी भुजदण्ड के तुल्य कृपाण तुम्हारी रक्षा करे जो पांचजन्य शंख की प्रतिच्छवि के व्याज से खड्गधारा रूपी जल को प्रकट करता है।"

अर्थान्तरन्यास का उदाहरण प्रेक्षणीय है—

> लंकापतेः संकुचितं यशो यद् यत् कीर्तिपात्रं रघुराजपुत्रः ।
> स सर्व एवादिकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ।।

"लंकापति रावण का जो अपयश और राम का जो परम यश हुआ, वह आदिकवि वाल्मीकि के कारण ही हुआ, अतः राजाओं द्वारा कवि का अपमान नहीं होना चाहिये।'

रूपकालंकार का सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है—

> एषास्तु चालुक्यनरेन्द्रवंशसमुद्रगतानां गुणमौक्तिकानाम् ।
> मद्भारतीसूत्रनिवेशितानामेकावली कण्ठविभूषणं वः ।।

"मेरी सरस्वतीरूपी, सूत्र में निवेशित यह चालुक्य नरेन्द्र वंश की गुण-मय मौक्तिकों की एकावली आपके कण्ठ का आभूषण हो।"

निम्न पद्य में कवि चालुक्यनरेश को इन्द्र से भी बढ़कर बताया है, उपमान से उपमेय बढ़ाने से यहाँ व्यतिरेक अलंकार है—

> शतक्रतोर्मध्यमचक्रवर्ती क्रमादनेकक्रतुदीक्षितोऽपि ।
> ऐन्द्रात्पदादभ्यधिके पदे यस्तिष्ठन्न शङ्कास्पदतामयासीत् ।।(1।97)

"जो मध्यम (पृथिवी) लोक का चक्रवर्ती अनेक यज्ञों का कर्त्ता इन्द्र से भी उच्चतर पद पर विराजमान होते हुये भी शतक्रतु इन्द्र की भाँति शंकाशील नहीं हुये।"

कवि को आत्मप्रशंसा का बड़ा शौक था, उसने अनेकत्र अपने काव्य की प्रशंसा की है—

'कर्णामृतं सूक्तिरसं विमुच्य दोषे प्रयत्नः सुमहान् खलानाम्।'

'न जल्पमल्पप्रतिभाः क्षमन्ते।'

'अलौकिकोल्लेखसमर्पणेन कण्ठाभरणत्वमेतु।'

'न यस्य पार्श्वे कवीश्वरास्तस्य कुतो यशांसि।

परन्तु बिह्लण का काव्य निश्चय ही उत्तम है।

कल्हणकृत राजतंरगिणी—कल्हण जैसे इतिहासकाव्यकार और राजतरंगिणी जैसे शतशः ग्रन्थ प्राचीन भारत में हो चुके थे, परन्तु दुर्भाग्यवश वे सब लुप्त हो चुके हैं। स्वयं कल्हण ने जिन प्राचीन ग्यारह इतिहासकारों के ग्रन्थ आधार पर राजतरंगिणी लिखी, वे सबके सब लुप्त हैं। कल्हण ने नीलमत-पुराण का भी उपयोग किया था, जो उपलब्ध है।

कल्हण का समय निश्चित है, उसने 1127 से 1151 ई० के मध्य अपना ग्रन्थ लिखा। वे कश्मीरनरेश विजयसिंह के मन्त्री चंपक के पुत्र थे। कल्हण ने राजतरंगिणी में कश्यप से अपने समय तक का इतिहास सविस्तार लिखा है। विशेषतः महाभारतकाल के राजाओं से विशुद्ध इतिहास प्रारम्भ होता है। इसके इतिहास अखिल भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ज्ञानवृद्धि होती है, यद्यपि तिथिविषयक एवं नाम-साम्य सम्बन्धी अनेक भूलें कल्हण ने की हैं जो कि प्रायः प्राचीन इतिहासलेखन में संभव है।

कल्हण का ग्रन्थ केवल नीरस इतिहास नहीं है। उसमें सरस काव्य है। इसमें उपमा, श्लेष, विरोधाभास, उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रचुर प्रयोग है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—अनुप्रास अवलोकनीय है।

'प्रसर्पतः करिटिभिः कर्नाटकटकान्तरे'

देवी का अलंकृत सोपम वर्णन सुन्दर बन पड़ा है—

भास्वद्बिम्बाधरा कृष्णकेशी सितकरानना।
हरिमध्या शिवाकारा सर्वदेवमयि सा॥

रूपक का उदाहरण—'जलधिरशना मोदिन्यासीदसावकुतोभया।

नीतिवाक्य हृदयस्पर्शी एवं धर्मभावना से ओत-प्रोत हैं—

यो यं जनापकरणाय सृजत्यपायं तेनैवतस्य नियमेन भवेद् विनाशः।

अन्य ऐतिहासिक काव्य—इनके अनन्तर अन्य कुछ महत्त्वपूर्ण या अप्रसिद्ध काव्य लिखे गये, यथा—हेमचन्द्राचार्य (1088 ई०) कृत कुमारपालचरित, अज्ञातकवि कृत पृथिवीराजचरित, जल्हणकृत सोमपालचरित, सन्ध्याकरनन्दी-कृत रामपालचरित सोमेश्वरकृत कीर्तिकौमुदी, वररुचिकृत पत्रकौमुदी इत्यादि।

इनके अतिरिक्त अनेक जैन ग्रन्थ भी ऐतिहासिक काव्यों की उत्तम श्रेणी में है, यथा प्रभावकचरित इत्यादि। इनके विस्तार में जाना यहाँ अवांछनीय है, अत अलम् करते हैं।

दशम—अध्याय

(लोककथासाहित्य)

गुणाढ्यकृत बृहत्कथा (बड्डकहा)—भारतीयवाङ्मय के इतिहास में व्यास के पश्चात् महाविद्वान् एवं कथाकार पण्डित गुणाढ्य का सर्वोच्च स्थान है। गुणाढ्य की मूल बृहत्कथा यद्यपि संस्कृत में न रची जाकर पैशाचीभाषा में रची गई थी, परन्तु वहाँ संस्कृत के अनेक काव्यों, नाटकों, गद्यकाव्यों, कथाओं एवं चम्पूओं का मूलस्रोत रही, साथ ही बृहत्कथा के अनेक संस्कृत रूपान्तर पुरातनकाल में किये जा चुके थे। मूल प्राकृत बृहत्कथा इस समय लुप्त है। इस समय बृहत्कथा के तीन संस्कृत रूपान्तर मिलते हैं—(1) नेपालनिवासी बुधस्वामीकृत बृहत्कथाश्लोकसंग्रह (8 वीं शती), (2) क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथा मंजरी (1063 ई०) और सोमदेवकृत (1081 ई०) कथासरित्सागर, इनका परिचय आगे लिखा जायेगा।

गुणाढ्य किसी सातवाहन आन्ध्रनृपति के मन्त्री थे। अनेक आधुनिक इतिहासकार आन्ध्र सातवाहनों का सम्बन्ध शकादि से जोड़ते हैं और इन्हें ई० सन् के प्रारम्भ में रखते हैं। विभिन्न मतों के अनुसार सातवाहनों का राज्यकाल 300 ई० पू० से 200 ई० तक माना जाता है, परन्तु पुराणगणना के अनुसार सातवाहन आन्ध्रवंश का राज्यकाल प्रतीप (शन्तनुपिता) के 2700 वर्ष या परीक्षित् से 2400 वर्ष पश्चात् प्रारम्भ हुआ—

सप्तर्षयस्ते प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम्।
सप्तविंशैः शतैर्भाव्या अन्ध्राणान्तेऽन्वयाः पुनः॥ (वायुपुराण—99।418)

सप्तर्षयो मघायुक्ताःकाले परीक्षिते शतम्।
अन्ध्राणां चतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः॥ (मत्स्य०पु० 273।44।45)

आंध्रसातवाहनवंश का प्रारम्भ 2400 कलिसंवत् या 644 वि०पू० और अन्त 224 वि०पू० हुआ। इनके पश्चात् शकराज्य प्रारम्भ हुआ। अतः यदि गुणाढ्य का समय सातवाहन सम्राट् हाल (गाथासप्तशतीकार—प्राकृत में) के समय माना जाय तो वह समय 300 वि०पू० के निकट था और—आढ्यराज सातवाहन के राज्य में प्राकृतभाषा ही राजभाषा थी—

केऽभूवन्नाढ्यराजस्य राज्ये प्राकृतभाषिणः।(सरस्वतीकण्ठाभरण 215, भोज)

गुणाढ्य के सम्बन्ध में बृहत्कथा के संस्कृतरूपान्तरों में यह इतिवृत्त मिलता है कि दक्षिण में गोदावरी तट में उपनिविष्ट प्रतिष्ठान नामक नगर में सोमशर्मा नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। उनकी कन्या श्रुतार्था का विवाह वासुकि नाग के भतीजे कीर्तिसेन के साथ हुआ। कीर्तिसेन और श्रुतार्था के पुत्र हुये गुणाढ्य। यथासमय श्रेष्ठ विद्वान् होकर गुणाढ्य सातवाहन नृपति के मन्त्री हुये। एक दिन राजोद्यान के सरोवर में संस्कृतानभिज्ञ राजा सातवाहन अपनी रानी के साथ जलविहार कर रहा था। रानी ने जलविहार के समय संस्कृत बोलते हुये राजा से कहा—मोदकै:—'मा उदकै:' (जलों से नहीं) राजा शब्दार्थ न समझने के कारण अत्यन्त लज्जित हुआ और भवन लौटकर उसने संस्कृत सीखने की इच्छा प्रकट की। मन्त्रियों में गुणाढ्य ने राजा से कहा कि मैं आपको छः वर्षों में संस्कृत का विद्वान् बना सकता हूँ जबकि दूसरे लोग इसमें 12 वर्ष लगा देते हैं। इसी समय अन्य मन्त्री शर्ववर्मा बोल पड़ा—'मैं केवल छः मास में आपको संस्कृतज्ञ बना सकता हूँ।' तब गुणाढ्य ने क्रुद्ध होकर कहा—यदि शर्ववर्मा ऐसा कर सकें तो मैं संस्कृत, प्राकृत और देशी भाषाओं में बोलना छोड़ दूंगा।

शर्ववर्मा ने कातन्त्र व्याकरण के माध्यम से षण्मासकाल में सातवाहन को संस्कृतज्ञ बना दिया। तब अपनी प्रतिज्ञानुसार गुणाढ्य ने संस्कृतादि बोलना छोड़कर विन्ध्याटवी की ओर प्रस्थान कर दिया। वहाँ काणभूति नाम के पिशाच ने गुणाढ्य को अनेक कथा में सुनाई। तदनन्तर गुणाढ्य ने सात वर्षों में सातलाख श्लोकों में उन कथाओं को पैशाची भाषा में लिपिबद्ध किया। इन्होंने इस बृहत्कथा का अपने शिष्यों के माध्यम से राजा सातवाहन को दिखाने के लिये भेजा और प्रार्थना की कि आप इस ग्रन्थ के प्रचार का प्रबन्ध करें। राजा ने अनादर करते हुये ग्रन्थ को लौटा दिया। इससे गुणाढ्य को हार्दिक क्लेश हुआ, अतः उन्होंने वह कथा पशु-पक्षियों या उपस्थित जनों को सुनाते हुये प्रतिपत्र अग्नि में स्वाहा करना प्रारम्भ कर दिया। इसी मध्य ग्रन्थ की कीर्ति किसी कारणवश राजा के पास पहुँची, उसने शीघ्र गुणाढ्य के पास आकर शेष ग्रन्थ को जलने से बचाया। इसमें केवल एक लाख श्लोक एवं उदयन तथा नरवाहनदत्त की कथा थी। इसी के रूपान्तर आज मिलते हैं।

---

(1) यही शर्ववर्मा हैं, जिसने प्रसिद्ध कातन्त्रव्याकरण बनाया, यही व्याकरण उसने राजा को पढ़ाया। कातन्त्र का टीकाकार प्रथमशती से पूर्व हो चुका था (लक्ष्मणस्वरूप—स्कन्द एण्ड महेश्वर आन निरुक्त, वो० III, पृ० 101), अतः शर्ववर्मा का समय समझा जा सकता है।

गुणाढ्य की बृहत्कथा का संस्कृत साहित्य पर विपुल प्रभाव पड़ा। कादम्बरी, तिलकमंजरी जैसे गद्यकाव्यों, मृच्छकटिक, मुद्राराक्षस, रत्नावली, नागानन्द, मालतीमाधव, जैसे नाटकों एवं पंचतन्त्र जैसे नीतिग्रन्थ इसी के आधार पर रचे गये। बृहत्कथा का प्रचार न केवल भारत बल्कि नेपाल, तिब्बत, कम्बोज एवं अन्य सूदूर पूर्वी द्वीपसमूहों में भी था। प्राचीन संस्कृत कवियों सुबन्धु बाण, दण्डी आदि ने बृहत्कथा की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

पैशाची भारत के किस प्रदेश की भाषा थी, यह निश्चित नही हो पाया है, संभवतः वह कच्चे मांसभक्षी वनवासियों (विन्ध्यादिवासियों) की भाषा थी। विद्वानों में इस बात पर भी मतभेद है कि मूल बृहत्कथा गद्य में थी या पद्य में। उपर्युक्त गुणाढ्यइतिवृत्त में सातलाख श्लोकों की चर्चा है, अत वह पद्य में ही थी, अन्य कल्पना व्यर्थ है, इसके रूपान्तर भी पद्य में ही मिलते हैं।

बुद्धस्वामीकृत बृहत्कथाश्लोकसंग्रह—यह बृहत्कथा का उपलभ्यमान प्राचीनतम रूपपान्तर है जो अपूर्ण ही प्राप्त हुआ है। ये नेपाली विद्वान् थे, जिनका समय 8वीं शती माना जाता है। ग्रन्थ में 4539 श्लोक और 28 सर्ग हैं। ग्रन्थ की भाषा अत्यन्त बोधगम्य और स्पष्ट है। परन्तु भारत में इसका कम ही प्रचार है।

क्षेमेन्द्रकृत बृहत्कथामंञ्जरी— इनका समय अन्यत्र लिखा जा चुका है। ये प्रसिद्ध कश्मीरी विद्वान् क्षेमेन्द्र, सोमदेव आदि समकालीन विद्वान् थे। मंजरी में केवल 7500 श्लोक हैं। कवि ने विस्तृत कथाओं को संक्षेप में ही लिखा है, यह लम्बकों में विभक्त हैं। यह क्षेमेन्द्र का प्रारम्भिक काव्य प्रतीत होता है, फिर भी पर्याप्त अलंकृत भाषा का प्रयोग किया गया है। लेखक पर इतिहासपुराणों और बौद्ध एवं जैनकथाओं का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इन्हीं के प्रायः समकालीन सोमदेव ने कथासरित्सागर लिखा।

सोमदेवकृत कथासरित्सागर—इनका समय क्षेमेन्द्र के कुछ ही पश्चात् था—1081 ई० के आसपास। यह ग्रन्थ कश्मीरराज की रानी सूर्यमती को सुनाया गया था। इसमें 18 तरंग और 21388 श्लोक हैं। ग्रन्थ आकार में रामायण के तुल्य है और निश्चय ही कथाओं का बड़ा सागर है। ग्रन्थ में काव्यरूप में अनेक ऐतिहासिक इतिवृत्त विस्तार से लिपिबद्ध किये गये हैं।

आर्यशूरकृत जातकमाला—जातक कथायें वास्तव में प्राचीनतम भारतीय लोककथायें थीं। इनका मूल महाभारत से पूर्व और महाभारतकाल में था, क्योंकि जातकों में उल्लिखित प्रमुख काशिराज ब्रह्मदत्त महाभारत युद्ध से तीन शती पूर्व और प्रतीप के समकालीन राजा था। महाभारतोत्तरकाल के

अनेक आख्यान भी जातकों में मिलते हैं। मूल जातककथाओं में बौद्धत्व नहीं था, उत्तरकाल में बौद्धों ने ये कथायें अपनाकर इन्हें बौद्धरूप दिया। बौद्ध-जातक पर्याप्त प्राचीन थी। स्वयं बुद्ध उनको सुनाते हैं अतः उनके निर्वाण के शीघ्र पश्चात् ही वे लिपिबद्ध हुईं।

आर्यशूर का समय आधुनिक विद्वान् निश्चित नहीं मानते और प्राचीन इतिहासकार लामा तारानाथ की बात पर अविश्वास करते हैं कि अश्वघोष और आर्यशूर एक नहीं थे। तारानाथ के मत की पुष्टि स्वयं अश्वघोष के कथन से होती है कि वह अपने को आर्य कहते हैं, सौन्दरानन्दकाव्य के अन्त में वह लिखते हैं—'आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्त अश्वघोषस्य।"

अश्वघोष के 'शूर' नाम की पुष्टि समुद्रगुप्त के कृष्णचरित से भी होती है—

तस्य शूरकवेर्घोष इति नामाभवत्ततः।
धर्मव्याख्यानभूतान्स नवग्रन्थानरीरचत्॥ (श्लोक 18)

इन नौ ग्रन्थों में जातकमाला भी धर्मव्याख्यानभूत एक ग्रन्थ था। अश्वघोष कनिष्क का समकालीन था, समयादिपूर्व लिखा जा चुका है—

यह प्रसिद्ध ही है कि जातकों के समान जातकमाला में बोधिसत्त्वों (बुद्ध के पूर्वजन्मों) की कथायें हैं। आर्यशूर का काव्य पर्याप्त अलंकृत है। इस सम्बन्ध में शिविजातक के ये श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

'यदेव याच्येत तदेव दद्यान्नानीप्सितम् प्रीणयतीह दत्तम्।"

'ततश्चकम्पे सधराधराधरा व्यतीत्य वेलां प्रससार सागरः।

ग्रन्थ गद्य-पद्य दोनों में ही है।

(पञ्चतन्त्र)

पशुपक्षी सम्बन्धी नीतिकथाओं की प्राचीनता—पञ्चतन्त्र संस्कृतसाहित्य की एक अमरकृति है जिसने विश्व के कथासाहित्य को अति प्राचीनकाल से ही प्रभावित किया। इसमें पशुपक्षियों के कथाओं के आधार पर नीति और राजनीति का उपदेश दिया गया है। पशुपक्षियों के आख्यान इतिहासपुराणों में विशेषतः महाभारत और हरिवंशपुराण में मिलते हैं। उदाहरणार्थ महाभारत में कणिक भारद्वाज (आदिपर्व पु० 129 में) नीतिशास्त्रविशारद जम्बुक[1] (गीदड़) की कथा सुनाता है, जिसमें वह अपने

(1) अथ कश्चित् कृतप्रज्ञः शृगालः स्वार्थपण्डितः।
सखिभिर्न्यवसत् सार्धं व्याघ्राखुवृकबभ्रुभिः॥

बुद्धिबल (नीति) से व्याघ्र, मूषक, वृक और नकुल को परास्त करके मृगमांस को खाता है। इसी प्रकार जम्बुकविडालादि की अन्य अनेक कथायें महाभारत में मिलती हैं। इसी प्रकार महाभारत में पूजिनी चटका और ब्रह्मदत्त की कथा है। हरिवंश में कौशिकपुत्रों की सातहंसों के रूप में उत्पत्ति की कथा है जो अगले जन्म में ब्रह्मदत्त आदि के रूप में उत्पन्न हुये।[1] इन्हीं कथाओं के अनुकरण पर बौद्धजातक कथायें लिखी गई। जातकों में पशुपक्षिकथाओं का प्राचुर्य है।

पंचतन्त्र इन पशुपक्षिसम्बन्धीनीति कथाओं का प्रतिनिधीभूत प्राचीन ग्रन्थ है।

प्राचीनता और रचयिता—पंचतन्त्र के प्रारम्भ में ही इसके रचयिता का नाम विष्णुशर्मा लिखा है। कुछ विद्वान् इसको विष्णुगुप्त कौटिल्य चाणक्य से ऐक्य मानकर पंचतन्त्र का रचयिता चाणक्य को ही मानते हैं। परन्तु यह पंचतन्त्र के कथानक से ही सत्य नहीं प्रतीत होता। क्योंकि यह विष्णुशर्मा दक्षिणभारत के मिहिलारोप्य नगर के राजा अमरशक्ति के तीन पुत्रों को छः महीने के मध्य में राजनीति में पारंगत करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। विष्णुगुप्त का विष्णुशर्मा नाम कहीं भी नहीं मिलता, दूसरे चाणक्य का दक्षिण के किसी राजा से सम्बन्ध ज्ञात नहीं। अतः पंचतन्त्र का रचियता विष्णुशर्मा निश्चय ही चाणक्य से भिन्न और उत्तरकालीन आचार्य था। स्वयं विष्णुशर्मा पंचतन्त्र में चाणक्य को नमस्कार करता है—

मनवे वाचस्पतये शुक्राय पराशराय ससुताय।
चाणक्याय च विदुषे नमोऽस्तु नयशास्त्रकर्तृभ्यः॥

अतः विष्णुशर्मा चाणक्य नहीं था, कोई दाक्षिणात्य आचार्य था। यह आचार्य सातवाहन राजाओं के समय में हुआ प्रतीत होता है, अतः इसका समय विक्रम से कम से कम दो-तीन शती पूर्व अवश्य था। दीनार शब्द के आधार पर कीथ आदि इसे ईस्वी सम्वत् के पश्चात् की रचना मानते हैं। यह अयुक्त मत है। इसकी रचना विक्रम और ईसा से अनेक शती पूर्व हो चुकी थी। हर्टेल भी पंचतन्त्र की मूलरचना 200 ई० पू० मानता था, यह मत सत्य के निकट है। जो लोग इसे आठवीं शती की रचना मानते हैं, उन्होंने अपनी

(1) पद्मगर्भोऽरविन्दाक्षः क्षीरगर्भः सुलोचनः।
उरुबिन्दुः सुबिन्दुश्च हैमगर्भस्तु सप्तमः॥
अतस्ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिणः (हरिवंश पु० 1।21)

आँखों पर अज्ञान की पट्टी बाँध रखी है, क्योंकि पह्लवी और सीरियन भाषा में पंचतन्त्र के अनुवाद 550 ई० में या इससे पूर्व हो चुके थे।

विभिन्न पाठभेद—इस समय पंचतन्त्र का कौन-सा पाठ मूल है यह कहना कठिन है, क्योंकि इसके अनेक विभिन्न पाठ और संस्करण मिलते हैं। जो लोग यह मानते हैं कि मूलग्रन्थ प्राकृत भाषा में लिखा गया था, वह अति भ्रम में में हैं। मूलग्रन्थ संस्कृत में ही लिखा गया था। इस समय इसके निम्न संस्करण मिलते हैं—

(1) तन्त्राख्यायिका (2) दक्षिणी पंचतन्त्र (3) नेपाली पंचतन्त्र (4) सरलपंचतन्त्र (5) पह्लवी पंचतन्त्र (अनुवाद) (6) सीरियन पंचतन्त्र (7) बृहत्कथा—(सोमदेव और क्षेमेन्द्र का) पंचतन्त्र (8) हितोपदेश।

कुछ विद्वानों (यथा हर्टल) तन्त्राख्यायिका को पंचतन्त्र का मौलिक और प्राचीनतम रूप मानता था। इसमें अनेक कथायें अधिक मिलती हैं। दक्षिणीय पंचतन्त्र के विभिन्न पांच पाठ मिलते हैं कुछ विद्वान् (यथा एजटन) इसमें अधिक मौलिक अंश मानते हैं। इसमें तीन पाद गद्य और एक पाद पद्य है। इसमें कुल 96 कथायें हैं। पूर्णभद्र नामक विद्वान् ने पञ्चाख्यानक या सरल पंचतन्त्र बनाया। इसे ग्यारहवीं या बारहवीं शती में रचित माना जाता है। सरलतन्त्र में विभिन्न तन्त्रों में परिवर्तन कर दिया गया है। इसका पाठ तन्त्राख्यायिका के निकट है। नेपाली पंचतन्त्र के भी कई पाठ हैं। इसमें कालिदास का एक पद्य पाया जाता है, यह भी सम्भव है कि यह श्लोक कालिदास ने ही पंचतन्त्र या अन्यत्र से लिया हो। अतः इस आधार पर कोई निर्णय असंगत होगा।

पंचतन्त्र के पह्लवी और सीरियन (550 ई०) के आजतक सैकड़ों अनुवाद और संस्करण हो चुके हैं। और प्रायः विश्व की प्रत्येक भाषा में इसके अनेक रूपान्तर हो चुके हैं। इसकी लोककथायें अति प्राचीनकाल से ही लोकप्रिय रही। पाश्चात्य जगत् में ईसप की नीतिकथायें पंचतन्त्र का ही अनुवाद है।

सामान्य परिचय—सर्वाधिक प्रचलित पंचतन्त्र में ये निम्नसंज्ञक पांच भाग हैं—

(1) मित्रभेदः (2) मित्रसंप्राप्तिः (3) काकोलूकीयम् (4) लब्धप्रणाशः (5) अपरीक्षितकारिता। ग्रन्थ में गद्यभाग अधिक है, परन्तु मध्य में अनेक पद्य मिलते हैं। किसी कथा का प्रारम्भ नीतिमय श्लोक से होता है, यथा—

'उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।'
'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
वने सिंहः मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान् । ग्रन्थ में उपमा, यमक, अनुप्रास, श्लेषादि आदि का प्रयोग है । भाषा प्रायेण सरल परन्तु अलंकृत एवं साहित्यिक है । प्रसिद्ध व प्रचलित पंचतन्त्र में 69 कथायें मिलती हैं । विभिन्न पाठों की कथासंख्याओं में अन्तर है । किसी-किसी पाठ में 96 तक कथायें हैं ।

हितोपदेश—यह पंचतन्त्र का एक सरल और अर्वाचीन रूप है । इसके रचियता 'नारायण' नाम के विद्वान् थे, जो किसी वंगीय शासक धवलचन्द्र के आश्रित थे । कीथ के अनुमान के अनुसार हितोपदेश की रचना 900 ई० से 1373 ई० के मध्य में हुई । अतः इसके रचनाकाल की निश्चित तिथि ज्ञात नहीं, केवल अनुमान मात्र किये गये हैं ।

नारायण पण्डित ने पंचतन्त्र के अतिरिक्त अन्य किसी स्रोत से कथायें ली हैं । इसके पाँच तन्त्रों के नाम हैं—मित्रलाभ, सुहृद्भेद विग्रह और सन्धि । यह पुस्तक मुख्यतः अल्पमति एवं अल्पायु बालकों की शिक्षार्थ लिखी गई थी, जिसका महत्त्व आज भी पूर्ववत् है । इसमें प्रधानतः उपदेश, लोकोक्ति, और नीतिमय वाक्यों का बाहुल्येन प्रयोग है । अधिकांश कथाएं पशुपक्षियों से सम्बन्धित हैं ।

शुकसप्तति—ग्रन्थ में कुल सत्तर (सप्तति) कथायें होने से इसका यह नाम पड़ा, एक तोता (शुक) मैना को ये कथायें सुनाता है । मदनसेन नाम का राजा अपनी पत्नी की रक्षार्थ एक शुक और काक को रख गया था। अन्तिम कहानी सुनाते समय ही पति परदेश से घर आ जाता है । यह पुस्तक स्त्रियों की शिक्षार्थ लिखी गई है । इसकी भाषा सरल है । परन्तु बीच-बीच में पद्य और प्राकृत भी मिलती है । ग्रन्थरचना काल अज्ञात है । इसके दो संस्करण प्राप्य हैं, जिनमें एक का रचयिता चिन्तामणि और दूसरे का लेखक कोई जैन साधु था ।

वेतालपंचविंशतिका—इसमें 25 कथायें हैं । इन कथाओं को एक बेताल त्रिविक्रमसेन या विक्रमादित्य को सुनाता है । इस समय यह कथासरित्सागर और बृहत्कथा मंजरी का भाग है। स्वतन्त्ररूप भी मिलता है, एक संस्करण द्वादशीशती में शिवदास की रचना मानी जाती है ।

सिंहासनद्वात्रिंशिका—इसमें 32 कथायें हैं । विक्रमादित्य के सिंहासन के लिप्सु राजा भोज को 32 पुत्तलिकायें विक्रमपराक्रम की कथायें सुनाती हैं । इसके तीन संस्करण हैं—औदीच्य, दाक्षिणात्य और बंगीय । दाक्षिणात्य संस्करण को विक्रमचरित भी कहते हैं और यह पद्य और गद्य दोनों में पृथक्-पृथक् मिलता है ।

भारतीय इतिहास में राजाओं को विक्रम और साहसांक बनने की कितनी लालसा थी, यह इससे भी सिद्ध होता है। भोज के पिता सिन्धुराज ने यह (साहसांक) उपाधि धारण की थी और पद्मगुप्त (कालिदास) ने नवसांहसांक रचा, यह ज्ञात तथ्य ही है।

उपमितिभवप्रपंचकथा—इसके रचयिता का नाम सिद्धर्षि था। यह यह ग्रन्थ संसार के मोहमाया को त्यागने का उपदेश देता है। रचयिता का समय 906 ई० माना जाता है। ग्रन्थ गद्यपद्य दोनों है।

परिशिष्टपर्वन्—इसको प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र (1088-1172 ई०) ने लिखा था, जिसमें जैन साधुओं के चरित वर्णित हैं। इसमें इतिहास की भी पर्याप्त सामग्री है, जिसका इतिहासकारों ने उपयोग किया है।

भोजप्रबन्ध—यह संस्कृत की एक प्रसिद्ध एवं रोचक पुस्तक है जिसको बल्लालसेन (16वीं शती) ने लिखा। इसमें धाराधीश भोज के सम्बन्ध में अनेक कथायें कथित हैं, परन्तु इनमें ऐतिहासिकता न्यून है।

ललितगद्यकाव्य

गद्यकाव्य का विकास—विश्व का प्राचीनतम श्रेष्ठ काव्य पद्य में ही रचा गया। यद्यपि उत्तरकाल में यह माना गया 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' 'गद्य कवियों की प्रतिभा की कसौटी है, तथापि पद्यरचना श्रवण में जो आनन्द आज भी आता है, वैसा गद्यश्रवण में नहीं। प्रायः पद्य को ही आज काव्य माना जाता है, परन्तु प्राचीन दृष्टि से गद्य भी काव्य है। ललितसंस्कृतगद्य के विकास का इतिहास वेद, ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद् महाभारत, पुराणादि में देखा जा सकता है, यद्यपि उनमें अलंकारादि का तथादृश प्रयोग उपलब्ध नहीं होता जैसा कि ऋचादि में मिलता है, तथापि वे भी परिष्कृत गद्यकाव्य के उच्चतम निदर्शन हैं। सर्वप्रथम गद्यकाव्य अथर्ववेद में ही उपलब्ध होता है, यथा—'जितमस्माकमुद्भिन्नमस्माकमृतमस्माकं तेजोऽस्माकं ब्रह्मास्माकं स्वरस्माकं यज्ञोऽस्माकं पशवोऽस्माकं प्रजा अस्माकं वीरा अस्माकम् (अथर्व० 16।8।1)। तदनन्तर ब्राह्मणग्रन्थों में अलंकृत गद्य मिलता है—यथा—यद्यज्ञेऽभिरूपं तत्समृद्धं यज्ञस्यैव समृद्धयै ता वै नवान्वाह तासामुक्तं ब्राह्मणं त्रिः प्रथमया, त्रिरुत्तमया—(शांखायन ब्रा० 7।10) इसमें अनुप्राप्त, यथा-संख्यादि अलंकारों का बीज ढूढ़ा जा सकता है। और भी द्रष्टव्य है—'पाणी पादौ च सर्वाणि चाङ्गानि सर्वांश्च संश्लेखानुत्सादयन्नलक्ष्मीं नुदते' (सामविधान ब्रा० 3।1।3) ब्राह्मणों और उपनिषदों का गद्य अत्यन्त क्लिष्ट एवं संश्लिष्ट

है—'यद्विजृम्भते तद्विद्योतते यद्विधूनुते तत्स्तनयति यन्मेहति तद्वर्षति वागेवास्य वाक्', (बृहदारण्यक० 1।1।1)

महाभारत और पुराणों के गद्यनिर्दशन भी द्रष्टव्य हैं—'तमुत्तङ्कोऽनुविवेश तेनैव बिलेन प्रविश्य च तं नागलोकमपर्यन्तमनेकविचप्रासादहर्म्यवलभीनिर्यूह-शतसंकुलमुच्चावचक्रीडाश्चर्यस्थाना वकीर्णमपश्यत्' (आदिपर्व 3।133) यह गद्य-खण्ड किसी उत्तरकालीन गद्यकाव्य से न्यून नहीं है। महाभारत में से गद्य के और भी अलंकृत उदाहरण दिये जा सकते हैं। पुराणों का गद्य और भी मनोरम व सरस हैं—'एवं दशाननत्वेऽप्यनङ्गपराधीनतया जानकीसमासक्त-चेतसा भगवता दाशरथिरूपधारिणा हतस्य तद्रूपदर्शनमेवासीत्' (विष्णुपु० 4।15।9)। स्पष्टतः ही यह अलंकृत गद्य है। भागवत में इससे भी अधिक अलंकृतगद्य मिलता है—'विविधनिविडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरट लतारूढस्थलाविहंगममिथुनैः प्रोच्यमानः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डव कलहंसादिः···।" (भागवत० 5।2।4)

प्राचीन भाष्य टीकाओं में अत्युच्चकोटि का गद्य मिलता है। प्राचीन वेदांग और कल्पसूत्र साहित्य का गद्य ब्राह्मणसदृश और अत्यन्त दुर्बोध्य है।[1] कौटिलीयअर्थशास्त्र पातंजलव्याकरण महाभाष्य, वात्स्यायन, शबर शंकरा-चार्यादि के शारीरकभाष्यादि एवं तादृश शतशः टीका एवं भाष्यों में संस्कृत गद्य के विकास की लम्बी कहानी समाहित है। प्राचीनकाल में अनेक कथायें, आख्यायिका एवं अन्य गद्यकाव्य के मौलिक ग्रन्थ रचे गये थे, जो आज अप्राप्य हैं परन्तु इन गद्यकाव्यों के नाम यत्र तत्र मिलते हैं, यथा पातंजल महाभाष्य में वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी—ये गद्यकाव्य के उदाहरण हैं। पाणिनि से पूर्व भी ऐसे अनेक गद्यकाव्य रचे जा चुके थे, तभी तो आचार्य ने अष्टाध्यायी में उनके लक्षण लिखे। कुछ अन्य प्राचीन गद्यकाव्यों के और नाम उल्लेखनीय हैं—बृहत्कथा, विनयवतीशूद्रक, शूद्रककथा, रुद्रकृत त्रैलोक्य-सुन्दरी वररुचिकृत चारुमती, धवलकविकृत मनोवती, विलासवती, नर्मदावती, विन्दुमती आदि संभवत पतंजलि पूर्व के गद्यकाव्य थे।

अनेक प्राचीन शिलालेखीय अभिलेखों प्रौढ़ एवं अलंकृत गद्यकाव्य सुप्रथित है ही। इनमें हरिषेण (कालिदास द्वितीय-रघुकार) की प्रयागप्रशस्ति गद्यकाव्य उसके पद्यकाव्य के सदृश ही उच्चकोटि का है। इससे पूर्व रुद्रदामा का गिर-नार शिलालेख पर्याप्त अलंकृत भाषा में मिला है। शिलालेखकाव्यों का अन्यत्र

---

(1) अथ ये हिंसामुत्सृज्य विद्यामाश्रित्य महत्तपस्तेपिरे ज्ञानोक्तानि वा कर्माणि कुर्वन्ति तेऽर्चिरभिसंभवन्ति···।' (निरुक्त 14।2।9)

वर्णन हो चुका है। गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त साहसांक के भ्राता हरिश्चन्द्र के गद्यकाव्य की प्रशंसा करते हुये बाणभट्ट ने लिखा है—'भट्टारहरिश्चन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते'—भट्टार हरिश्चन्द्र का गद्य राजा के तुल्य ही शिरोमणि है। अतः इससे सिद्ध होता है कि भट्टार हरिश्चन्द्र भी राजा थे, और उनका गद्यकाव्य श्रेष्ठतम था। अतः गुप्तकाल में गद्यकाव्य कोई नई रचना नहीं थी।

अतः गद्यकाव्य भी प्रायः उतना ही प्राचीन है, जितना पद्यकाव्य। वह इतने विशालरूप में नहीं रचा गया जितना की पद्य। फिर भी वह विपुल था, अनुपलब्ध होने के कारण उसका यथार्थ इतिहास ज्ञात नहीं होता। भास, कालिदास कृत नाटकों में भी गद्यकाव्य है ही। सुबन्धु का गद्यकाव्य वासवदत्ता प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है।

(सुबन्धु)

समय—ललितसंस्कृतगद्यकाव्य का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ वासवदत्ता है, जो सुबन्धु की रचना है। बाणभट्ट ने सुबन्धु के काव्य की प्रशंसा करते हुये लिखा है—

कवीनामगलद् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम्॥ (हृ० च० 11)

"वासवदत्ता (कृति) के द्वारा कवियों का गर्व इसी प्रकर खण्डित हो गया जिस प्रकार इन्द्र द्वारा कर्ण को शक्ति दिये जाने पर पाण्डवों का घमण्ड चूर हो गया।" इससे प्रकट होता है कि सुबन्धु से पूर्व अनेक कवियों ने गद्यकाव्य लिखे थे। एक अन्य सङ्केत से भी बाण ने वासवदत्ता का सङ्केत किया है—

अलब्धवैदग्ध्यविलासमुग्धया धिया निबद्धेयमतिद्वयीकथा (कादम्बरी, पद्य 20), इसमें गुणाढ्य कृत बृहत्कथा और सुबन्धुकृत वासवदत्ता का सङ्केत है ऐसा टीकाकार भानुचन्द्र सिद्धचन्द्र का अभिमत है। भवभूति के समकालीन कवि वाक्पतिराज ने गउडवहो काव्य में सुबन्धु का उल्लेख किया है।

सुबन्धु बाण से लगभग पाँच शताब्दी पूर्व हुये थे, क्योंकि बाण हर्षवर्द्धन समकालीन (606 से 647 ई०) थे और सुबन्धु चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य साहसांक[1] (द्वितीय) के समकालीन थे, इसी चन्द्रगुप्त ने 78 ई० या 135 वि० स० में भारत में शक साम्राज्य का अन्त करके शकसम्वत् चलाया, यह प्राचीन

---

(1) सा रसवत्ता विहता न वका विलसन्ति चरति नो कङ्कः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये॥

भारतीय इतिहास का सुप्रमाणित तथ्य, जिसका कालिदास (द्वितीय) के प्रसङ्ग में वर्णन किया जा चुका है, क्योंकि सुबन्धु ने जब अपना ग्रन्थ लिखा, उस समय विक्रमाङ्क का स्वर्गवास हो चुका था, जैसा कि टीकाकार नृसिंह वैद्य ने लिखा है कि सुबन्धु विक्रमादित्य का समकालीन था और वासवदत्ता की रचना उसने राजा के लोकान्तरगमन के शीघ्र पश्चात् की[1]। वासवदत्ता की एक हस्तलिखित प्रतिलिपि में सुबन्धु को वररुचि का भान्जा बताया है, यह वररुचि विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक था। बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग[2] धर्मकीर्ति और न्यायतर्किकार उद्योतकर—ये सभी कालिदास, और चन्द्रगुप्त विक्रम के समकालीन थे, जो 135 वि० सं० के आसपास हुये। सुबन्धु ने वासवदत्ता में उद्योतकर का श्लेष प्रयोग में उल्लेख किया है—'न्यायस्थितमिवोद्योतकरस्वरूपाम्' और बौद्ध विद्वान् धर्मकीर्तिकृत बौद्ध-संगत्यलंकार ग्रंथ का सङ्केत इस प्रकार किया है—'बौद्धसंगतिमिवालंकार-भूषिताम्। तात्पर्य यह है कि प्राचीन इतिहास में आधुनिक विद्वान् भ्रामक तिथियों को मान रहे हैं वे उन्हें त्यागकर सत्य को स्वीकार करें।

वासवदत्ता—सुबन्धु ने लिखा है कि उसने सरस्वती के प्रसाद से प्रत्यक्षर में श्लेषमय प्रबन्ध की रचना की जो वैदग्ध्य (लालित्य) का निधि है।[3] श्लेष के एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

विद्याधरोऽपि सुमनाः,, धृतराष्ट्रोऽपि गुणप्रियः

विद्याधर (देव भिन्न या विद्वान्) होते हुये भी सुमनाः (सुन्दर, मनवाला उच्चदेव), धृतराष्ट्र (राष्ट्रधारक राजा) होते हुये भी गुणप्रिय है।

यस्य च रिपुवर्गः सदा पार्थोऽपि न महाभारतरणायोग्यः, भीष्मोऽप्यशान्तनवे हितः' 'उसके शत्रु सदा पार्थ,' (धनञ्जय) होते हुये भी धनशून्य

---

(1) कविरयं विक्रमादित्यसभ्यः। तस्मिन् राज्ञि लोकान्तरं प्राप्ते एनम् निबन्धं कृतवान्। (वासवदत्ता टीका)

(2) दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्यासपूर्वकाणि दूषणानि परिहरन् (मल्लिनाथ, मेघदूत टीका)

(3) सरस्वतीदत्तकरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम्॥ (वासवदत्ता, पद्य 13)।

थे और महा भारतयुद्ध के अयोग्य थे और भीष्म (भयंकर) होते हुये भी शान्तनु (या शान्ति) के शुभ चिन्तक नहीं थे।"

इस वासवदत्ता कथा का उदयनकथा से कोई सम्बन्ध नहीं। इसमें नृपति चिन्तामणि का पुत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न में एक अष्टावर्षदेशीया 'राजकुमारी को देखकर प्रातः अपने मित्र मकरन्द के साथ उसकी खोज में निकल पड़ता है। मार्ग में रात्रि को वे विन्ध्य पर्वत की उपत्यका में सोते हुये शुकसारिका वार्तालाप सुनते हैं। वे पाटलिपुत्र की कन्या वासवदत्ता की चर्चा करते हैं। वासवदत्ता भी किसी दिन स्वप्न में कन्दर्पकेतु का दर्शन करती है।' इन्हीं दोनों की प्रेमकथा विस्तार से कृति में सानुप्रास एवं श्लेष के साथ वर्णित है। सुबन्धु का सर्वाधिक प्रभाव बाण की कादम्बरी में स्पष्ट देखा जा सकता है।

(दण्डी)

संस्कृत के प्रसिद्धतम तीन गद्यकवियों में महाकवि दण्डी का उच्च स्थान है। कुछ विद्वान् दण्डी को सुबन्धु और बाणभट्ट से पूर्व रखते हैं। परन्तु यह मत इतिहास विरुद्ध है और विलसन, अगाशे[1] इत्यादि के मत तो अब उल्लेखनीय भी नहीं है जो दण्डी को ईसा की 11 या 12वीं शती में हुआ मानते हैं। यह माना जाता है कि दण्डी ने शूद्रककृत मृच्छकटिक नाटक का पुनः संस्करण किया और उसमें भूमिकादि एव दशम अंक जोड़ा, यह सत्य हो सकता है, परन्तु मृच्छकटिक को दण्डी की मूल रचना मानकर उसमें वर्णित सामाजिक स्थिति को दशकुमारचरित में वर्णित सामाजिक स्थिति के समान बताना, सरासर अन्याय और इतिहासविरुद्ध है। शूद्रक विक्रम का समय पूर्व निर्णीत किया जा चुका है।

दण्डी के तीन काव्य प्रसिद्ध रहे हैं—
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषुलोकेषु विश्रुताः

इसमें काव्यादर्श, छन्दोविचिति या मृच्छकटिक सम्मिलित नहीं है। दण्डी के उक्त तीन प्रबन्ध काव्य ही हैं, जिनमें दशकुमारचरित प्रसिद्ध है और द्वितीय ग्रन्थ अवन्तिसुन्दरीकथा प्रकाशित हो चुका है। तृतीय प्रबन्ध था—'द्विसन्धानकाव्य'।

---

(1) यथा, कीथ इत्यादि। द्र० संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ० 254 डा० जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल।

यह सम्भव है कि दण्डी एक उपाधि हो,[1] वैसे भी दण्डी शब्द परिव्राजक या मस्करी का पर्यायवाची है, काव्यादर्श जैसे लक्षणग्रन्थ का रचयिता कोई अन्य दण्डी हो, अभी इस सम्बन्ध में अन्तिम निष्कर्ष, प्रमाणाभाव में नहीं निकाला जा सकता। अवन्तिसुन्दरीकथा का एक संक्षिप्त पद्यरूप अवन्तिसुन्दरी कथासार भी मिला है और प्रकाशित हो चुका है। तदनुसार दण्डी का परिचय इस प्रकार है।[2] दण्डी के पूर्वज गुजरात में आनन्दपुर में रहते थे, फिर वे अचलपुर (आधुनिक एलिचपुर-बरार) में उपनिविष्ट हुये। वे कौशिकगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके एक पूर्वज नारायण स्वामी के पुत्र दामोदर थे। इनको कोई भारवि बताता है, कोई भारवि का मित्र, कुछ भी हो दामोदर या भारवि दण्डी से न्यूनतम एक शती पूर्व और चार पीढ़ी पूर्व हुये। भारवि और दण्डी जैसे श्रेष्ठ कवियों की आयु साठ वर्ष से कम नहीं हो सकती, अतः इनमें डेढ़ सौ वर्ष का अन्तर भी हो सकता है। सौ वर्ष से अधिक अन्तर तो निश्चित रूप से था। दामोदर और भारवि—दोनों ही कांचीनरेश विष्णुवर्धन के सभा-रत्न था परम्परा से दण्डी भी किसी काञ्चीनरेश के आश्रित कवि थे, परन्तु कांची पर चालुक्यों का आक्रमण होने से दण्डी को वहाँ पर पलायन करना पड़ा। पल्लव शासन के पुनः राज्यारूढ़ होने पर पुनः वे कांची लौट आये। अतः इस वृतान्त से एवं अपनी कृतियों के अन्तरंग प्रमाण से दण्डी दाक्षिणात्य सिद्ध होते हैं। इस प्रमाण को छोड़कर अन्य कल्पनालोक में विचरण करना निरर्थक है अतः दण्डी के परिचय के लिये इंगलैण्ड से अब कोई प्रमाण नहीं आयेगा।[3] अत दण्डी का समय 500 ई० या 550 ई० के निकट था। एक अन्य प्रमाण से भी इसकी पुष्टि होती है। दक्षिणभारत के शासक पुलकेशी द्वितीय, जिसका समय 640 ई० से पूर्व माना जाता है इसके ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रादित्य की रानी विजयभट्टारिका या विज्जिका ने दण्डी का इस प्रकार उल्लेख किया है—'वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुल्का सरस्वती'। अतः दण्डी का समय 550 ई० के आस-पास था और भारवि का समय 400 से 450 ई० के निकट था। अतः दण्डी बाण से निश्चितपूर्वक पूर्ववर्ती थे और सुबन्धु

---

(1) कुछ विद्वान् तीन दण्डी कवियों को मानते हैं।

(2) बाण और दण्डी डा० सुधीरकुमारगुप्त पृ० 27।

(3) कुछ लोगों को अवन्तिसुन्दरीकथा के उक्त वृत्तान्त में अकारण ही विश्वास नहीं है, यह स्थिति स्वस्थ बुद्धि व्यक्ति को बोधगम्य नहीं है, यथा—द्र० संस्कृतकविदर्शन (पृ० 458)।

के उत्तरवर्ती, क्योंकि वे (सुबन्धु) चन्द्रगुप्तविक्रम (द्वितीयशती) के समकालीन थे।

दण्डी के काव्य की प्रशंसा में ये कथन प्रसिद्ध हैं—

'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः'

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्तित्रयो गुणाः॥

संस्कृतललितसाहित्य में दण्डी का पदलालित्य प्रयोग सर्वाधिक विख्यात और समादृत रहा है। दण्डी के तीन काव्यों की तुलना में अग्नित्रयी, वेदत्रयी और त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) से की गयी है—

त्रयोऽग्नयस्त्रयो वेदास्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषुलोकेषु विश्रुताः॥

एक अन्य कवि ने इन्हें वाल्मीकि और व्यास के श्रेणी में रखा है—

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

"वाल्मीकि के कवि (आदिकवि) होने पर कवि आख्या (एकवचन में) प्रसिद्ध हुई, व्यास के होने पर दो कवि हुये और दण्डी के होने पर 'कवयः' यह बहुवचन प्रसिद्ध हुआ।"

कवियित्री गङ्गादेवी ने माधुर्यविजय में लिखा है—

आचार्यदण्डिनो वाचामाचान्तामृतसम्पदाम्।
विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणम्॥

'आचार्य दण्डी की वाणी में आदि से अन्त तक वाणी की अमृतसम्पदा मिलती है और उनका कृतित्व सरस्वती का विलासमणिदर्पणतुल्य है।

कृतियाँ—लोक में दण्डी के तीन काव्य प्रसिद्ध थे, जिनमें दो निर्भ्रान्ति रूप से प्राप्त हो गये हैं। इनमें प्रथम कृति दशकुमारचरित साहित्यजगत् में विश्रुत है, इसका संक्षिप्त परिचय और कथासार आगे लिखा जायेगा। द्वितीय ग्रन्थ अवन्तिसुन्दरीकथा अधिक विस्तृत, अलंकृत और सुसंस्कृत है, यह दशकुमारचरित से श्रेष्ठतर एवं प्रौढ़तर रचना है परन्तु अभी इसकी ख्याति केवल कुछ विद्वानों तक ही सीमित है। संस्कृत के सामान्य पाठकों में दशकुमार चरित ही अधिक प्रचलित है। दण्डी के तृतीय काव्य 'द्विसन्धान' से एक पद्य भोजराज ने शृंगारप्रकाशिका में उद्धृत किया है—

उदारमहिमा रामः प्रजानां हर्षवर्द्धनः ।
धर्मप्रभव इत्यासीत् ख्यातो भरतपूर्वजः ॥

भोजराज के उक्त कथन पर अश्रद्धा और अविश्वास का कोई कारण नहीं है । इस प्रकार के द्व्यर्थक काव्य लिखने की परिपाटी पर्याप्त पुरातन थी । उत्तरकालीन धनंजय कवि ने भी एक 'द्विसन्धान' काव्य लिखा था । एक ही नाम के कवि और अनेक काव्य हो सकते हैं, इसमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है।

उक्त द्विसन्धानकाव्य में महाकवि दण्डी ने श्लेष या द्विर्थकरूप में किसी अपने आश्रयदाता कांचीनरेश का गुणकीर्त्तन किया था। दण्डी के पूर्वज भारवि कांचीनरेश विष्णुवर्धन के सभापण्डित थे और राजा धर्मप्रभव इनका वंशज होगा ।

दशकुमारचरितः परिचय— विद्वानों ने दशकुमारचरित की कथा और आख्यायिका दोनों ही माना है । यह एक उत्तम कोटि का गद्यकाव्य है। इस ग्रन्थ के अनेकविध पाठ मिलते हैं, ऐसी स्थिति में यह नहीं कहा जा सकता कि दण्डी की मूल रचना कितनी है और कितना भाग प्रक्षेप है । इसके तीन मुख्य भाग हैं—(1) पूर्वपीठिका (पाँच उच्छ्वास) (2) दशकुमारचरित (आठ उच्छ्वास) और (3) उत्तर पीठिका (निर्विभाग) । कुछ लोग केवल मध्यभाग (आठ उच्छ्वासों) को दण्डी की रचना मानते है, परन्तु यह मत अलीक एवं अश्रद्धेय है। दण्डी ने पूर्णकथा की ही रचना की थी, भले ही उत्तरकाल में अन्य लोगों ने इसमें हस्तक्षेप किया हो, किसी समय ग्रन्थ के नष्ट होने पर उसके लुप्त अंशों को दण्डी के शिष्यों या अनुयायियों द्वारा पूर्ण किया गया होगा । इस समय ग्रन्थ के तीनों भागों की विभिन्न शैली के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि वर्तमान तीनों भाग विभिन्न लेखकों की कृतियाँ हैं, यद्यपि मूल दशकुमारचरित दण्डी की रचना थी ।

दण्डिकृत यह दशकुमारचरित किसी प्राचीन ऐतिहासिक आख्यायिका या कथा के आधार पर रचा गया होगा, जो इस समय अपने मूलरूप में लुप्त है, यथा गुणाढ्य की वृहत्कथा लुप्त है, परन्तु उसके रूपान्तर मिलते हैं। क्योंकि दण्डी द्वारा उल्लेखित भौगोलिक स्थान ऐतिहासिक हैं, अतः उनके शासक, राजा आदि एवं अन्य पात्र भी ऐतिहासिक होंगे, परन्तु सामग्री के अभाव में उनकी ऐतिहासिकता इस समय प्रमाणित नहीं की जा सकती।

दशकुमारचरित में मुख्यकथायें इस प्रकार हैं—मगध के नगर पुष्पपुर का राजा राजहंस और रानी वसुमती थी। उसके तीन बहुश्रुत एवं वृद्धमन्त्री

थे—धर्मपाल, पद्मोभव, और सितवर्मा। राजहंस के मित्र मिथिलानरेश प्रहार वर्मा का पुत्र हुआ उपहारवर्मा। एक शबरी द्वारा पालित कुमार उपहारवर्मा था। मन्त्री धर्मपाल के तीन पुत्र हुये—सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल, मन्त्री पद्मोभव के दो पुत्र थे—सुश्रुत और रत्नोद्भव और सितवर्मा के पुत्र थे—सुमति और सत्यवर्मा, रत्नोद्भव का पुत्र हुआ पुष्पोद्भव, कामपाल का पुत्र था—अर्थपाल, सत्यवर्मा का पुत्र था सोमदत्त। और उपयुक्त मगधेश्वर राजहंस का पुत्र हुआ राजवाहन। अतः प्रथम उच्छ्वास में उपर्युक्त दश राजकुमारों की जन्मकथायें हैं।

द्वितीय उच्छ्वास में कुमारों की शिक्षा-दीक्षादि का वर्णन है। तृतीय उच्छ्वास में सोमदत्तचरित है, चतुर्थ उच्छ्वास में पुष्पोद्भवचरित और पञ्चम उच्छ्वास में राजवाहन का अवन्तिसुन्दरी से विवाह होता है।

दशकुमारचरित के मुख्य भाग के आठ उच्छ्वासों में क्रमशः राजवाहन चरित, अपहारवर्माचरित, उपहारवर्माचरित, अर्थपालचरित, प्रमतिचरित, मित्रगुप्तचरित, मन्त्रगुप्तचरित और विश्रुतचरित वर्णित हैं। ये सभी राजकुमार अपने श्रीमुख से स्व स्व चरित सुनाते हैं। उत्तर पीठिका में विश्रुत चरित का शेषभाग एवं राजवाहन द्वारा मालवराज मानसर की पराजय एवं पुनः मगधराज्यप्राप्ति का वर्णन है।

दण्डी के काव्य गुण: पदलालित्य—दण्डी ने पहिला चमत्कार अपने प्रथम पद्य में ही दिखाया है, क्योंकि दण्डवान् ही दण्डी (कवि) है, अतः निम्न पद्य में आठ बार दण्ड पद का प्रयोग करके दण्डी ने दण्डपद का चमत्कार और पदलालित्य प्रदर्शित किया है—

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः।
क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः।
ज्योतिश्चक्राक्षदण्डास्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः।
श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः।

(1|1)

इस पद्य में कवि ने प्रमुखतः त्रिविक्रम वामन विष्णु की स्तुति की है। अतः दण्डी वैष्णव धर्मपरायण प्रतीत होते हैं।

पूर्वपीठिका के प्रारम्भ में ही दण्डी की लालित्यमयी शैली एवं वैदर्भी रीति का परिचय मिल जाता है। अनुप्रास, यमक एवं श्लेष का प्रयोग साथ

चलता है—"राजहंसो नाम घनदर्पकंदर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव। तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावती कुलशेखररमणी रमणी बभूव" —"राजहंस राजा अत्यन्त रूप के घमण्डी कामदेव के रूप वाले थे, उनका रूप प्रिय (हृद्य) एवं अनिन्दित था। वैसे ही उनकी रानी वसुमती श्रेष्ठबुद्धि वाली तथा लीलायुक्त एवं कुलरमणियों में मणितुल्य (सर्वश्रेष्ठ)थी।" दण्डी के गद्यकाव्य में माधुर्य, प्रसाद, श्रोज और सरित्वत् सतत प्रवाह मिलता है— मणिमयमण्डनमण्डलमण्डिता सकललोकललना कुलललामभूता'—'मणिमय-कुण्ड़लाकारमणियों से मण्डित वह सकललोक की ललनाओं में शिरोमणि थी।'

यमक और अनुप्रास तो ग्रन्थ में सर्वत्र मिलते हैं—'क्रुरामाभिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृत रयो रयोपहसित समीरण :'

प्रवाह द्रष्टव्य है—

> 'इह जगति हि न निरीहं देहिनं श्रियः संश्रयन्ते।'
> 'यद्यप्सरोभिः संगच्छसे, संगच्छस्व कामम्।'
> आगमदीपदृष्टेन खल्वध्वना सुखेन वर्तते लोकयात्रा,
> अतो विहाय बाह्यविद्यास्वभिषङ्गमागमय दण्डनीतिं कुल विद्याम्।

अन्य अलंकारों उपमादि का तो पद-पद पर प्रत्येक वाक्य में श्रेष्ठ और अद्भुत विन्यास मिलता है—

> घनशब्दोन्मुखी चातकी वर्षागमनामिव,
> तवालोकनकांक्षिणी चिरमतिष्ठम्।

(द०च०)

'प्रावृडिव घनगम्भीरस्तननाभिरमणी शरदिव सारसां कान्तिमुद्वन्ती।'
(अवन्तिसुन्दरीकथा)

अतः उपमा, अनुप्रास, यमक, श्लेष, रूपक,दीपक, तुल्योयागिता, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का दण्डी ने प्रचुरता का प्रयोग किया है और समस्त प्रयोग में माधुर्य और पदलालित्य मिलता है। पदलालित्य का एक और उदाहरण द्रष्टव्य है—'सखि पुरा शाम्बो नाम कश्चिन्महीवल्लभो मनोवल्लभया सह विहारवाञ्छया कमलाकरमवाप्य कोकनदकदम्बसमीपे निद्राधीनमानसं राजहंसं शनैर्गृहीत्वा !" "हे सखि प्राचीनकाल में शाम्ब नाम का कोई राजा अपनी मनोवल्लभा रानी के साथ विहार की इच्छा से कम-

लाकर तडाग पर गया और उसने कोकनद कदम्ब के निकर सुप्त राजहंस को धीरे से पकड़ लिया।" दण्डी के काव्य में प्रौढ़ कल्पना का उदात्तरूप मिलता है—यथा—

'समुद्रगर्भवासजडीकृत इव मन्दप्रतापो दिवसकरः प्रादुरासीत्';
'अमृतमयी वचसि प्रसादमयी मनसि चक्रवाकमयी पयोधरयोः,
आर्वतमयी नाभिरन्ध्रे, पुलिनमयी नितम्बतटेषु...।"

अतः लोक में यह प्रसिद्ध हो गया कि एकमात्र कवि दण्डी ही है और उनका पदलालित्य सर्वश्रेष्ठ है—

'दण्डिनः पदलालित्यम्'

(बाणभट्ट)

जीवन परिचय— सम्भवतः बाणभट्ट ही ऐसे संस्कृत महाकवि थे, जिन्होंने अपना जीवन परिचय कुछ विस्तार से हर्षचरित में लिखा है तदनुसार उसका यहाँ संक्षेप में वर्णन करते हैं—

बाणभट्ट सारस्वत वंश में उत्पन्न हुये थे। सारस्वत ऋषि दध्यङ् (दधीचि) आथर्वण के पुत्र थे, इनकी माता का नाम सरस्वती या अम्भिणी वाक् था, जिनका शतपथब्राह्मण में विवस्वान् की शिष्या के रूप में वर्णन हुआ है। सारस्वत अपान्तरतमा, शिशु आङ्गिरस नाम से प्रसिद्ध नवम परिवर्त(त्रेतायुग) के व्यास थे, जिनका वृतान्त हमने अन्यत्र विस्तार से लिखा है।[1] ऐसे विद्या-विशारद कुल में वत्स नाम के ऋषि हुये। बाण के पूर्वज वत्स ऋषि सारस्वत के चचेरे भाई थे। वत्स से ही वात्स्यायन गोत्र चला। इस वात्स्यायन कुल में अनेक दार्शनिक प्रवर आचार्य हुये। अर्थशास्त्रकार चाणक्य और कामसूत्रकार आचार्य वात्स्यायन भी इसी कुल में हुये। इसी सोमपायी वेदवेदाङ्गपारंगत कुल में कुबेर नाम के एक विद्वान् हुये, इनके विषय में बाण ने लिखा है—

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्तवाङ्मयैः ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः ॥
निगृह्यमाणा बटवः पदे पदे यजूंषि सामानि च यत्र शङ्किताः ॥[2]

"पञ्जरवर्ती समस्त वाङ्मय में अभ्यस्त सारिका और शुकों(तोतों) द्वारा

(1) द्रष्टव्य मद्ररचित वैदिकसाहित्य का इतिहास, पृ० 6-7। तथा इतिहासपुराणसाहित्य का इतिहास, पृ० 40-43।
(2) कादम्बरी (पद्य 12)।

कुबेर आचार्य के ब्रह्मचारी शिष्य यजुः और सामों का अशुद्ध पाठ करते हुये पकड़े (टोके) जाते थे ।"

कुबेर के चार पुत्र हुए—अच्युत, ईशान, हर और पशुपति । पशुपति के एकमात्र पुत्र हुए अर्थपति । इनके ग्यारह पुत्रों में एक थे चित्रभानु । इनकी पत्नी का नाम था राजदेवी । इन्हीं के पुत्र थे बाण । जब बाण शिशु थे, तभी उनकी माता स्वर्ग सिधार गई और 14 वर्ष तक पिता ने इनका पालन किया । पिता की मृत्यु के साथ ही बाण उच्छृंखल, स्वतन्त्र और निर्विघ्नतुल्य हो गये और यायावर (घुक्कड़) बनकर सम्पूर्ण देश की यात्रा या परिभ्रमण करने निकल पड़े । यात्रा में उनके सभी प्रकार के—दुष्ट एवं सज्जन साथी थे यथा नट, विट, नर्तक, कवि, वञ्चक (ठग), ऐन्द्रजालिक इत्यादि । पर्यटन में बाण ने जीवन के पर्याप्त आनन्द और अनुभव प्राप्त किये । विद्वद्गोष्ठियों, नर्तक मण्डलियों, कवियों आदि का उन्होंने पर्याप्त अनुभव प्राप्त किया और स्वयं विट (धूर्त) रूप में प्रसिद्ध हो गये, वास्तव में तो वह एक उदीयमान कवि और विद्वान् थे । पर्यटन से लौटकर पुनः अपने ग्राम प्रीतिकूट में आकर विद्या का गहन अभ्यास किया । और वे अब एक श्रेष्ठ विद्वान् थे । समाप्तविद्य युवक बाण को इसी समय हर्षवर्धन के भ्राता कृष्ण का एक निमन्त्रणपत्र मिला । वे हर्ष की सभा में आए । दुष्ट पण्डितों या धूर्तों ने हर्ष के कान भर रखे थे अतः राजा के मन में बाण का चित्र एक दुष्ट के रूप में था । अतः आते ही हर्ष ने बाण के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया—'भुजंग आ गया, यह बड़ा धूर्त विट है ।' बाण ने अपने को निर्दोष बताया और कहा कि आप मुझे स्वयं परख कर निर्णय करें । शनैः शनैः बाण हर्ष के प्रीतिभाजन और अनन्य मित्र बन गये और एक समय राजा ने करोड़ों स्वर्ण मुद्रायें पुरस्कार या दान में दी ।[1] बाण ने हर्ष के अपार गुणों का वर्णन हर्षचरित में किया है और कनक-कोटि शतमुद्रा सम्भवतः इसी ग्रन्थरत्न का पुरस्कार हो । इसीलिए बाण ने हर्ष को आढ्यराज (धनाढ्य) कहा है, जिसके गुणों का स्मरण करते हुए उनकी जिह्वा रुक जाती थी और कवित्व में प्रवर्तित नहीं होने देती थी ।[2]

(1) श्रीहर्ष एव निजसंसदि येन राज्ञा संपूजितः कनककोटिशतेन बाणः । (काव्यमीमांसा, भूमिका, पृ० 10)

(2) आढ्यराजकृतोत्साहैर्हृदयस्थैः स्मृतैरपि ।
जिह्वान्तः कृष्यमाणेव न कवित्वे प्रवर्तते ।।
(ह० च० 1।19)

समय—हर्षवर्धन का राज्यकाल (606 ई० से 647 ई० तक) निश्चित होने के कारण बाणभट्ट का समय भी निश्चित हो जाता है। बाण ने हर्षचरित में हर्ष के द्वारा गौडराजवध और बौद्धधर्म में दीक्षित होने तक का वर्णन किया है। अतः बाण हर्ष की राजसभा में कम से कम 630 ई० के आसपास, बीस-पच्चीस वर्ष रहे। हर्ष बौद्धधर्म में दीक्षित होने पर सम्भवत: बाण ने राजा को छोड़ दिया या बाण की मृत्यु हो गई, जिससे उनकी कृतियाँ अधूरी ही रह गईं।

कृतियाँ—हर्षचरित और कादम्बरी बाण की निर्विवाद रचनायें हैं, इन्हीं दो ग्रन्थरत्नों के आधार पर इनकी कीर्ति दिग्दिगन्तव्यापिनी हो गई। तीन ग्रन्थ और इनकी रचनायें मानी जाती हैं—(1) चण्डीशतक (2) पार्वती-परिणय और (3) मुकुटताडितक नाटक।

चण्डीशतक के अतिरिक्त इन दो नाटकों के सम्बन्ध में विद्वानों में उनके रचयिता के सम्बन्ध में विवाद है।

हर्षचरित एक उच्चकोटि का ऐतिहासिक गद्यकाव्य है, जिसमें बाण ने अपने आश्रयदाता हर्षवर्धन का अधूरा काव्यमय जीवनचरित लिखा है। हर्ष-चरित में आठ उच्छ्वास हैं, इसके प्रथम उच्छ्वास के प्रारम्भ में 23 पद्य हैं, जिनमें उसने अपने से पूर्व कवियों—व्यास, भास, हरिश्चन्द्र, कालिदास, प्रवर-सेन आदि की प्रशंसा की है। प्रथम दो उच्छ्वासों में वाण ने अपना ही जीवन-चरित लिखा है, जो कि इस प्रकरण के प्रारम्भ में ही लिखा जा चुका है। तृतीय उच्छ्वास में हर्ष के पूर्वजों का और स्थाणीश्वर का वर्णन है। चतुर्थ उच्छ्वास में प्रभाकरवर्धन, राजवर्धन, हर्ष और राजश्री के जन्मादि का वर्णन है। पञ्चम उच्छ्वास में हर्ष के माता-पिता के देहावसान का सविस्तार उल्लेख है। षष्ठ उच्छ्वास में राज्यवर्धन द्वारा मालवराज विजय एवं गौडराज द्वारा राज्यवर्धन की मृत्यु का वर्णन है। सप्तम उच्छ्वास में हर्ष की सेना के प्रयाण का वर्णन है जो गौड़ देश पर आक्रमण के लिये सन्नद्ध की गई थी। अष्टम उच्छ्वास में हर्ष की विन्ध्याटवी यात्रा और मुनि दिवाकर मित्र के आश्रम का चमत्कारिक वर्णन है। इसी में राज्यश्री के चिता से बचने की कथा है। यह अधूरा काव्य यहीं समाप्त हो जाता है।

कादम्बरी—बाण की सर्वश्रेष्ठ कृति कादम्बरी है। महाकवि बाण इसका पूर्वार्ध ही रच पाये थे कि उनका देहावसान हो गया।

तदनन्तर उनके पुत्र भूषणभट्ट ने इसके उत्तरार्ध की रचनार्थ की ।[1] पहिले ही सङ्केत किया जा चुका है कि बाण ने कादम्बरी को 'अतिद्वयीकथा' कहा है, अर्थात् यह कादम्बरी गुणाढ्य की बृहत्कथा और सुबन्धु की वासवदत्ता से श्रेष्ठतर है ।

कादम्बरी का कथानक पूर्णतः काल्पनिक (कविकल्पनाप्रसूत) या निजन्धरी नहीं है, जैसा कि अधिकांश विद्वान् मानते हैं । यदि यह पूर्णतः काल्पनिक कथा होती तो बाणतनय भूषण इसको कैसे पूरा कर पाते ? स्पष्ट है कि कादम्बरीकथा की रूपरेखा (इतिवृत्त) लोक या साहित्य में पहिले से ही थी । भले ही वह मूलसाहित्य इस समय लुप्त है । द्वितीय, कथा के प्रारम्भ में उल्लिखित विषमशील शूद्रक (विक्रमसम्वत्प्रवर्तक) ऐतिहासिक व्यक्ति था । बाण के पूर्ववर्ती दण्डी ने अश्मकजनपदनिवासी शूद्रक का एक नाम इन्द्राणिगुप्त बताया है—

आयुषोऽन्ते स एवासावश्मकेषु द्विजोत्तमः ।
इन्द्राणिगुप्त इत्यासीद्यं प्राहुः शूद्रकं बुधाः ॥
(अ० सु० क० सार 4।175)

इसी ग्रन्थ में शूद्रक की रानी विनयवती का उल्लेख भी है। प्राचीन साहित्य में 'विनयवतीशूद्रककथा' पर्याप्त विख्यात थी । कादम्बरी में बाण ने भी शूद्रक की एक रानी विनयवती का व्यञ्जना से उल्लेख किया है— 'विनयवत्यन्वयवति हृदयहारिणि चावरोधजने' उज्जयिनी के राजा तारापीड, चन्द्रापीड आदि भी शूद्रक के पूर्ववर्ती राजा थे । जब उज्जयिनी आदि स्थान ऐतिहासिक थे तो उनके ये शासक अनैतिहासिक कैसे हो सकते हैं ? भले ही आज इन राजाओं का शुद्ध इतिहास लुप्त एवं अज्ञातप्राय है, परन्तु कादम्बरी में इतिहास की रेखा अवश्य विद्यमान है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीनकवि कल्पना का आश्रय तो समसामयिक इतिहास में भी लेते थे यथा बाण ने ही हर्षचरित में पर्याप्त कल्पनाएं की हैं, फिर भी वह ऐतिहासिक ग्रन्थ है । अतः कादम्बरी के अधिकांश पात्र ऐतिहासिक हो सकते हैं । शूद्रक

---

(1) याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः ।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य प्रारब्ध एव स मया न कवित्वदर्पात् ॥
"पिताजी के स्वर्गमन के साथ यह कादम्बरी (कथाप्रबन्ध) अधूरा रह गया अतः सज्जनों को इसकी असमाप्ति का दुःख था, अतः मैंने इसे पूरा किया, न कवित्वदर्प से ।"

बाण से छः शताब्दी पूर्व हुआ था और चन्द्रापीड आदि तो और भी बहुत पूर्व हुये होंगे। अतः ये राजा बाण के लिये ही पर्याप्त प्राचीन थे।

कादम्बरी में चन्द्रापीड और पुण्डरीक के तीन-तीन जन्मों की कथा ग्रथित है। शूद्रक ही पूर्वजन्म में चन्दापीड, पुण्डरीक, वैशम्पायन और तृतीय (वर्तमान) जन्म में शुक (तोता) था। चाण्डाल कन्या पुन्डरीक की माता लक्ष्मी थी। कादम्बरी की सम्पूर्ण कथा अति विस्तृत है, यहाँ उसका संक्षिप्त कथा-सार भी अवांछनीय है।

बाण संस्कृत ललित गद्य के अनुपम कवि थे, उनकी बहुमुखी प्रतिभा अलौकिक थी, उनका प्रभाव उत्तरवर्ती गद्यकारों पर पड़ा, अतः यहाँ बाण की काव्यप्रतिभा का संक्षेप में दिग्दर्शन करते हैं।

प्राचीन कवियों ने बाण की प्रशंसा में जो कुछ कहा है, सर्वप्रथम वे उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—कविराज ने राघवपाण्डवीय में वक्रोक्तिमार्ग में सर्वश्रेष्ठ माना है—सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा॥

गोवर्धनाचार्य के मत में वाणी अधिक चातुर्य प्राप्त करने के कारण बाण हो गई—'प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति,' धर्मदास कवि के मत में बाण की मधुरवाणी जगत के मन को तरुणी से भी अधिक हरती है—

रुचिरस्वरवर्णा रसभाववती जगन्मनो हरति।
तत् किं तरुणी न हि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।

बाण को अर्थव्यञ्जना, रसव्यञ्जना अलंकारयोजना आदि में सर्वेश्वर माना है—'बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि।' बाण ही वाणी को बाँधने में समर्थ है—'बाणः सत्कविगीर्वाणमनुबन्धाति।' बाणकवि बाण के समान सब कवियों के भेदन करने वाला है—

'प्रतिकभेदनो बाणः' जयदेव ने बाण को हृदय में बसने वाला पञ्चबाण कामदेव कहा है—'हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।' सोड्ढल कवि ने बाण के हर्षचरित की प्रशंसा करते हुये लिखा है—

'बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्ज्वलवर्णशोभम्।
एकातपत्रं भुवि पुष्पभूतिवंशाश्रयं हर्षचरितमेव॥

" बाण कवियों में चक्रवर्ती सम्राट के रूप में चमकते हैं, जिसका उज्ज्वल वर्णों से सुशोभित, एकक्षत्र पुष्पविभूति से अलंकृत हर्षचरित पृथिवीरूपी साम्राज्य है।'

कादम्बरी की प्रशंसा में निम्न उक्तियाँ ध्यातव्य है—

कादम्बरीरसभरेण समस्त एवं मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम् ।

'कादम्बरी रूपी मधुरस (शराब) से समस्त जन मस्त हैं और बिल्कुल होश में ही नहीं आते ।'

कादम्बरीकथां श्रुत्वा कवयो मौनमागताः ।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति श्रुतिर्यतः ॥

"बाण की कादम्बरी कथा को सुनकर कविगण मौन हो गये, क्योंकि लोक में (धर्मशास्त्र के अनुसार) बाणध्वनि (तीर की आवाज) होने पर अनध्याय होता है।"

बाण का श्लेष, शब्दगुम्फन, रस, अलंकार, सदर्थविषय— सब कुछ अतिशय एवं अनुपम है। बाण काव्यजगत्रूपी विन्ध्याटवी के पञ्चानन या सिंह हैं। परन्तु बाण के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रसिद्ध उक्ति है—

'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'

'समस्त काव्य जगत् (या गद्य) बाण की झूठन है।'

पहिले तो गद्यकाव्य की रचना ही अत्यन्त कठिन है जैसा कि कहा गया है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति" 'गद्य कवियों की कसौटी है।' पुनः इसमें श्रेष्ठता प्राप्त करना और भी कठिन है। विश्वनाथ ने ओजः प्रसाद और माधुर्य गद्य के आवश्यक गुण माने हैं, और उसमें भी समास बहुल ओजः गद्य का प्राण ही है—'ओजः समासभूयस्त्वमेतद्, गद्यस्य जीवितम्।' ये सब वस्तुयें बाण के काव्य में अपनी पराकाष्ठा पर पहुँची हुई हैं, अन्य कवियों के लिये उनके प्रयोग के अवसर शेष ही नहीं रहे अतः ऐसा कहा गया कि समस्त जगत् बाण की झूठन है। बेवर जैसे पाश्चात् संस्कृतज्ञ के लिए कादम्बरी घोर जंगल के तुल्य थी, जिनमें उन जैसों का प्रवेश दुष्कर था।[1]

समस्त गद्यकाव्य का बाण को उच्छिष्ट बताने का प्रमुख कारण था कि महाकवि ने ध्वनि, गुण, अलंकार शब्द शक्तियों, रसों एवं वस्तुचित्रण इतना

---

(1) Bana's prose is an Indian wood, where all Progress is rendered imposible....

सजीव रूप में किया है, वैसा लालित्य और चमत्कार अन्यत्र दुर्लभ है। स्वयं बाण ने स्वभावोक्ति, सरल श्लेष एवं रस प्रवणता के साथ विकटाक्षाबन्ध (समास) का प्रवेश काव्य के लिए उत्तम बताया है। प्राचीन भारत में कुछ देशों के काव्य में कुछ विशिष्टता थी यथा उदीच्य में श्लेष का बाहुल्यप्रयोग था, परन्तु इन प्रदेशों की समस्त विशेषताओं का अपने काव्य में उन्होंनेसमुचित प्रयोग किया। इनकी रीति पाञ्चाली थी। इन समस्त प्रयोगों ने बाण के गद्य काव्य में एक अद्‌भुत रस और व्यञ्जना उत्पन्न की, जिससे विद्वज्जन अत्यन्त आनंदित हुए। गुणों से भरपूर या गुण (धनुष्कोटि) युक्त नम्र बाण से निःशेष जन आह्लादित हुए—

शश्वद्‌बाणद्वितीयेन नमदकारधारिणा ।

धनुषेव गुणाढ्‌येन निःशेषो रंजितो जनः ।।

बाण की भाषा शैली 'संस्कृत ललित गद्य में अद्वितीय हैं। वे भाषा के पूर्ण सम्राट थे, उन्होंने समासबहुला पदावली का प्रयोग किया है, लघु, मध्यम एवं दीर्घ समासों का पदे-पदे प्रयोग मिलता है। कुछ निदर्शन द्रष्टव्य हैं— एव प्रवाह करुणारसस्य, संतरणसेतुः संसारसिन्धोः, आधारः क्षमाम्भसाम्, परशुस्तृणालतागहनस्यः......।' यह लघु समासों का उदाहरण है। दीर्घ समास प्रयोग द्रष्टव्य है—अचिराच्च सिद्धकन्यकाविक्षिप्तसन्ध्यार्चनकुसुमशबल-मिव तारकितं वियदराजत।' (काद०पृ० 105), "शरदमिव विकसित पुण्डरीकलोचनाम्, प्रावृषमिव घनकेशजालाम् मलयमेखलामिवा चन्दनपल्ल-वावतंसाम, नक्षत्रमालामिव चित्रश्रवणाभरणभूषिताम्।"

कादम्बरी में शुकनासोपदेशप्रकरण अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस प्रकरण में बाण ने अद्‌भुत उपदेश के साथ विविध अलंकारों की छटा प्रदर्शित की है यथा उपमा, यमक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, रूपक, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास इत्यादि कुछ उदाहरण हैं—दुष्टापिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया' यह पूर्णोपमा का उदाहरण है। अनुप्रासों की तो काव्य में बहुलता ही है, यथा विविध विषय ग्रासलालसैः 'न निन्द्यसे साधुभिः न धिक्क्रियसे गुरुभिः' इत्यादि में यमक और उत्प्रेक्षा का उदाहरण है—अशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवापरः।"

अलंकारों के अतिरिक्त त्रिविधा शब्दशक्ति (अभिधा, लक्षणा और व्यंजना), रसयोजना, ध्वनि आदि का उत्तम काव्य गद्य बाण की विशेषता

है। बाण का प्रकृतिचित्रण संस्कृतगद्य में अपनी निराली शान रखता है, ऐसा प्रकृति चित्रण अन्यत्र तो क्या संस्कृत में भी दुर्लभ है, जाबाल्याश्रम का प्रकृति वर्णन कादम्बरी में अद्भुत है—'ऋषिकुमारका कृष्यमाणवनवराह दंष्ट्रान्तराललग्नशालूकम्', 'क्वापि विहृत्य दिवसावासने लोहिततारका तपोवनधेनुखी कपिला वर्तमान सन्ध्यातपोधनैरदृश्यत।"

इसके अतिरिक्त बाण का इतिहास (रामायण-महाभारत), पुराण, ज्योतिष आयुर्वेद, वनस्पतिविज्ञान, प्रकृतिज्ञान, राजनीति, नीतिशास्त्र, भूगोलज्ञान, व्यावहारिक बुद्धि एवं पाण्डित्य बहुत बढ़ा चढ़ा हुआ था। चरित्रचित्रण में शूद्रक, पुण्डरीक, चन्द्रापीड,कादम्बरी और महाश्वेता के अद्भुद् चरित्रों का वर्णन है, अतः बाण बहुमुखी प्रतिभा वाले महाकवि थे।

चम्पूकाव्य—'गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' यह चम्पू की परिभाषा आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में लिखी है। यों तो गद्यमिश्रित रचनायें वैदिकसाहित्य में भी मिलती है, परन्तु वे चम्पूकाव्य नहीं हैं, महाभारत एवं कुछ पुराणों के कुछ अंश भी गद्यपद्य मिश्रित है, परन्तु वे भी चम्पू नहीं हैं। यथार्थ चम्पूसंज्ञककाव्य बहुत प्राचीन नहीं हैं। दण्डी से पूर्व संभवतः इनका नाम भी नहीं मिलता।

सर्वप्रथम चम्पूग्रन्थ त्रिविक्रमभट्ट (915 ई०) के नलचम्पू और मदालसा चम्पू है। जैसा कि नामों से प्रकट है, इनमें क्रमशः राजा नल और मदालसा के चरित्र वर्णित है। इन ग्रन्थों में कवि ने श्लेषमय काव्य के उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—'भंगश्लेषकथाप्रबन्धदुष्करं कुर्वता मया।' इन चम्पूओं पर सुबन्धु एवं बाणादि का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।'

त्रिविक्रम के अनन्तर सोमदेवसूरिकृत 'यशस्तिलकचम्पू' अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है। इसकी रचना भी दक्षिणभारत में 959 ई० में हुई। इस चम्पू में यशोधरा और मारिदत्त नाम के दो राजाओं का वृतान्त है। इसमें लगभग 8000 श्लोकों के तुल्य गद्यपद्य हैं। सोमदेव सूरि की भाँति हरिश्चन्द्र भी जैन कवि थे, जिन्होंने 'जीवन्धरचम्पू' रचा। यह जैन पौराणिक कथा है। राजाभोज (1000 ई०—1050 ई०) ने प्रसिद्ध 'रामायणचम्पू' लिखा, जो वाल्मीकीय रामायण के आधार पर निर्मित है।

इनके अनन्तर कोंकण राज मुम्मुणि के राजकवि सोड्ढल कृत 'उदयसुन्दरीकथा' प्रख्यात है, यह भी एक उत्तम काव्य का निदर्शन है। इनके अति-

रिक्त ये चम्पूकाव्य और प्रसिद्ध हैं—यथा किसी कालिदाससंज्ञककविकृत भागवतचम्पू (दशमस्कन्ध पर आधृत), अनन्तभट्टकृत भारतचम्पू (11वीं शती) अर्हद्दासकृत 'पुरुदेवचम्पू', दिवाकरकृत 'अमोघराघवचम्पू', (13वीं शती), अहोवल सूरिकृत 'यतिराजविजयचम्पू' एवं 'वसन्तोत्सवचम्पू' (14वीं शती), अमलाचार्यकृत 'रुक्मिणीपरिणयचम्पू' (14वीं शती), कर्णपुरकृत 'आनन्दवृंदावनचम्पू' (16वीं शती), बल्लीसहायकृत 'शंकरी चम्पू' (16वीं शती), चिदम्बरकृत 'पञ्चकल्याणचम्पू' तथा कृष्णकृत 'पारिजातहरणचम्पू' इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

समाप्त
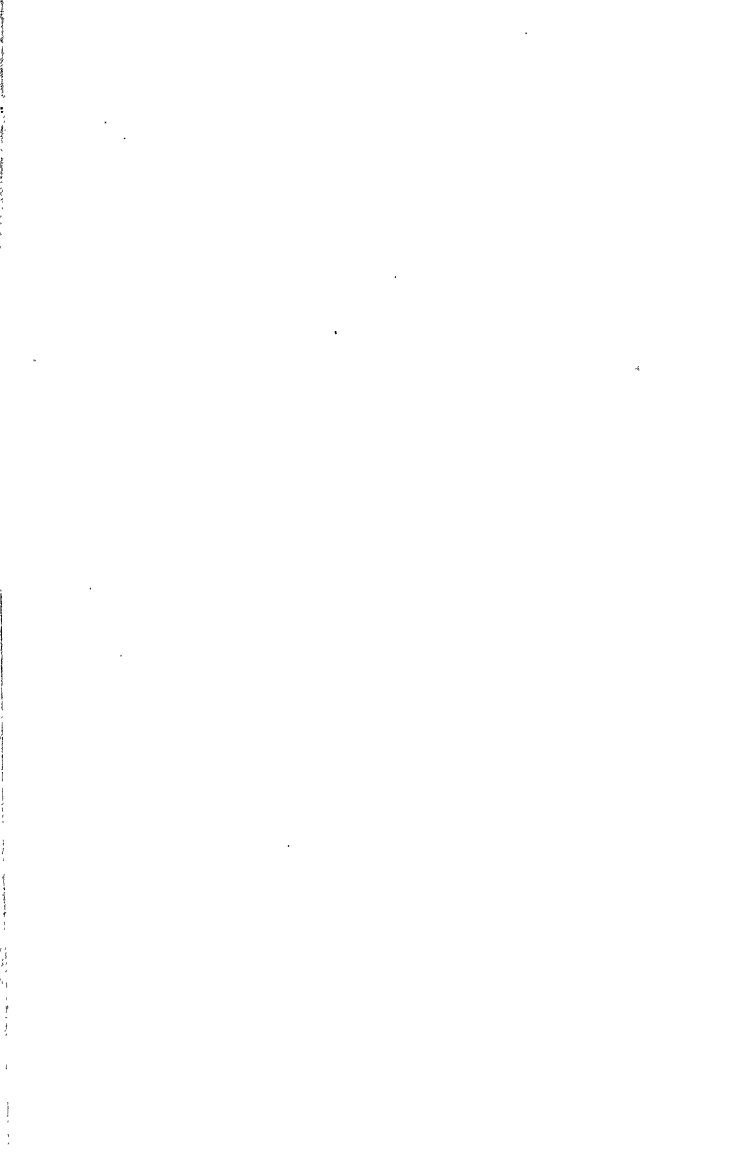
History — Sanskrit Literature

Sanskrit Literature — History